द्रव्य सहायकों के प्रति

सुबोध जैन पाठमाला भाग दूसरा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का प्रकाशन भी श्रद्धालु और धर्मप्रेमी सज्जनो की ज्ञान-तृषा की तृप्ति के लिये आपके हाथ मे है। समाज मे इस प्रकार के शिक्षणोपयोगी साहित्य प्रकाशन के लिये द्रव्य सहायक बनना समाज मे ज्ञान-प्रसार के पुण्य लाभ के साथ निर्जरा का भी कारण है। निम्न सहाय-दाता, धर्मप्रेमी, श्रद्धाशील और जालोर जैन समाज के अग्रगण्य उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। इनकी त्याग-वृत्ति और धर्म-प्रेम का परिचय समाज को सदा मिलता रहा है। आप लोगो ने निम्न रूप से पुस्तको के लिये अपनी-अपनी तरफ से द्रव्य सहायता प्रदान की, आपका यह कार्य अन्य-शिक्षा-प्रेमियो के लिये अनुकरणीय व आदर्श है।

शिक्षण शिविर समिति आपके इस शुभ सहयोग के लिये अपना आभार प्रकट करती है।

नामावली

१	शाह सकुनमलजी रूपचन्दजी साँखला,	जालोर	५००
२.	,, प्रकाशमलजी नेनमलजी काकरिया	,,	२००
३.	,, नेनमलजी केशरीमलजी बुटा व सुमेरमलजी बुटा	,,	२००
४.	,, साकलचन्दजी उदयचन्दजी मुथा	,,	१००

मन्त्री

स्था० जैन धार्मिक शिक्षण शिविर समिति

जोधपुर (राज०)

प्रस्तावना

स्था० जैन धार्मिक शिक्षण शिविर के पाठ्य-क्रम के रूप में सुबोध जैन पाठमाला द्वितीय भाग के सूत्र तथा तत्व-विभाग (पूर्वार्द्ध) और कथा-काव्य विभाग (उत्तरार्द्ध) का धार्मिक शिक्षण के क्षेत्र में स्वागत करते हुए अति हर्ष होता है। प्रथम भाग मे जिन-जिन विषयो का समावेश हुआ है, उसके आगे की शृङ्खला इस पाठमाला मे देखने को मिलती है।

प्रथम भाग की अपेक्षा इस भाग मे अपेक्षाकृत क्रमानुसार गभीर विषयों का समावेश हुआ है, फिर भी मुख्य विशेषता यह रही है कि विद्वान् लेखक ने भाषा का मूल रूप सरल, सहजबोधक और भावगम्य ही रखा है। वास्तव मे किसी विषय को प्रस्तुत करना इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना उसके मर्म और तथ्यों का उद्घाटन करने वाली अभिव्यक्ति का है। अभिव्यक्ति का यह प्रकार ही शैली है, जिससे लेखक लोक में श्रद्धा, सम्मान और कीर्ति का पात्र बनता है। परम तपस्वी लालचन्द्रजी म० सा० के आज्ञानुवर्ती प० रत्न पारस मुनिजी म० की ज्ञान-साधना और सयम-आराधना सराहनीय है। २४-२५ वर्ष की इस अल्पायु मे ही कठिन श्रम-साधन से आगम आराधना कर जो सार-सिद्धि आपने प्राप्त की, उसका आंशिक रूप हम शिविर साहित्य के रूप मे पाकर कृतार्थ हैं।

स्था० जैन समाज मे विशुद्ध धार्मिक शिक्षण साहित्य की कमी खटकने वाली बात है। दुःख तो उस समय अधिक होता है, जब

तथ्यो को विकृत कर अपनी बातों का समावेश जान-बूझ कर या विशुद्ध जानकारी के अभाव में आगम की दुहाई देकर लेखक गुड गोबर एक कर देते है। मेरे मन मे यह बात सदा उठती रही थी कि विद्वान मुनिराज यदि आगमानुकूल शिक्षणोपयोगी साहित्य की रचना करें, तो वह अधिक हितकर होगा। शिक्षण शिविर गंगाशहर की आयोजना के अवसर पर मुनि श्री की योग्यता देखकर उनसे इस कार्य को सम्पन्न करने का हमने निवेदन किया। मुनि श्री ने हमारे निवेदन को स्वीकार कर निरन्तर कठिन परिश्रम द्वारा अल्पावधि मे ही सुबोध जैन पाठमाला प्रथम व द्वितीय भाग का लेखन कार्य पूर्ण किया।

इस भाग के सूत्र-विभाग मे पं० मुनि श्री ने श्रावक आवश्यक, जो श्रावक की दैनिक क्रियाओ के नित्य चिन्तन, आलोचन और प्रत्याख्यान का विधान करता है विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। तत्व-विभाग मे २५ बोलो के शेष बोल, समिति गुप्ति का स्तोक व उत्कृष्ट पुण्य बध की प्रकृति (तीर्थङ्कर गोत्र) के २० बोल का सरल स्वरूप उपस्थित किया है। कथा-विभाग की सभी कथाएँ जहाँ सयमित और मर्यादित जीवन का पाठ पढाती हैं, वहाँ काव्य-विभाग के स्तवन वैराग्य की भाव लहरियाँ जगाते हुए आत्मविभोर कर देते हैं।

शास्त्रकारो ने "पढमं नाणं तओ दया" कहा है। पर समाज मे स्थिति कुछ विपरीत दिखती है। वर्षों से नित्य सामायिक आदि क्रियाओं के आराधन करने वाले ज्ञान के नाम पर छः काय नव तत्व आदि के स्वरूप से अनभिज्ञ पाये जाते हैं, इसका प्रभाव यह होता है कि धर्म करना धार्मिक क्रियाओ तक ही सीमित हो जाता है और व्यावहारिक जीवन मे उसका उपयोग नजर नहीं आता। फलस्वरूप ज्ञान और आचरण मे विभेद और विफलता मिलती है। समाज में विशुद्ध धर्म व श्रद्धा के प्रति रुचि जाग्रत करने का व सद् श्रावक

तैयार करने का यही दृढ़ उपाय है कि समाज मे तीव्र-गति से ज्ञान का प्रचार किया जाय। शिक्षण शिविर-योजना के शुभारंभ और पाठावलियो के प्रकाशन से उक्त ध्येय की पूर्ति का किंचित् आश्वासन मिलता है।

आशा है, मुनिश्री वर्षों से लगनपूर्वक चिन्तन व मनन किये हुए अपने ज्ञान तथा आदरणीय बहुश्रुत प० र० मुनि श्री समरथमलजी म०.सा० द्वारा प्राप्त गूढ धर्म रहस्य को जन-साधारण तक सुगमता से पहुँचा सकेंगे और अपने विशुद्ध निर्मल साहित्य रचना के द्वारा जैन जगत को इसी प्रकार भविष्य मे भी लाभान्वित करते रहेंगे।

सम्पतराज डोसी
मंत्री
साधु-मार्गी जैन धार्मिक पाठशाला
जोधपुर (राजस्थान)

— —

प्रकाशकीय

सुबोध जैन पाठमाला प्रथम भाग का प्रकाशन आप लोगो के हाथो मे पहुँच ही चुका है। यह हर्ष का विषय है कि शिक्षण प्रेमी सज्जनो ने इसकी सराहना व्यक्त की है।

अब आपकी सेवा मे द्वितीय भाग भी प्रस्तुत कर रहे हैं। इस भाग का मूल्यांकन विद्वत् सज्जनो एवं जिज्ञासु व्यक्तियो का विषय है फिर भी शिक्षण संस्थाएँ एवं धर्मप्रेमी पाठकगण इससे लाभान्वित हो सकें, तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

शिक्षण शिविर काल नजदीक होने से और समयाभाव से इसकी प्रतियां हम विद्वान मुनिराजो एव सुज्ञ श्रावको की सम्मति के लिये और समाचार-पत्रो के समालोचनार्थ नहीं भेज सके।

पुस्तक का कलेवर विस्तृत हो जाने से इसको सूत्र व तत्त्व विभाग (पूर्वार्द्ध) कथा व काव्य विभाग (उत्तरार्द्ध) के रूप मे पृथक-पृथक पुस्तकाकार मे प्रकाशित किया गया है।

१००८ तपस्वी श्री लालचन्दजी म० सा० के आज्ञानुवर्ती बाल-ब्रह्मचारी पं० र० मुनि श्री पारसमलजी म० सा० ने अथक परिश्रम कर अल्प समय मे जो यह आगमनाकूल साहित्य तैयार किया है, उसके लिये हम आभार प्रदर्शित करते हैं।

प्रेसादि कार्य मे तरुण सुज्ञ श्रावक श्री सपतराजजी डोसी की सेवाएं सराहनीय रही, उसके लिये वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

अत मे जालोर समाज के उन उदार हृदय सज्जनों के प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त किये विना नहीं रह सकते, जिनके सहयोग के कारण इस पुस्तक का प्रकाशन शीघ्र सभव हो सका।

हीराचन्द कटारिया, राणावास, अध्यक्ष,

धींगड़मल गिड़िया, जोधपुर, मत्री,

श्री स्थानकवासी जैन शिक्षण शिविर समिति, जोधपुर.

प्राक्कथन

तपस्वी श्री लालचन्दजो . म० आदि चार सन्तो का सम्वत २०१७ में राणावास में चतुर्मास हुआ। उस समय वहाँ छोटेलालजी अजमेरा प्रचारक अ० भा० साधुमार्गी जैन सस्कृति रक्षक सघ आये थे। उन्होने वहाँ श्री कानमुनिजो को उत्साहपूर्वक बालकों को धार्मिक शिक्षण देते हुए देख कर निवेदन किया कि हमारे स्था० सघ० मे आप जैसे धार्मिक शिक्षण मे रूचि लेने वाले सत कम हैं। परन्तु ग्रोष्मावकाश मे यदि हम शिक्षण शिविर लगायें और आप वहाँ एकत्रित बालकों को धार्मिक शिक्षण दें, तो अधिक बालको को लाभ मिले और उन बच्चो का जो अवकाश का समय प्रमाद में जाता है, वह भी सफल बन जाय।

काल परिपक्व हुआ और राणावास में हो राणावास सघ के आग्रह और अजमेराजो आदि के प्रयास से स० २०२० में धार्मिक शिक्षण शिविर लगा। उस समय बालको के प्राथमिक तात्कालिक शिक्षण के लिए श्री कानमुनिजी ने विषय सयोजना को और उन्होंने धार्मिक वाचना दो। शिविर समाप्ति पर गठित शिविर समिति के मन्त्री श्री धींगडमलजो गिडिया, जोधपुर व सदस्य श्री सम्पतराजजो डोसो ने मुझे समिति को ओर से यह अनुरोध किया कि आप श्री कानमुनिजो द्वारा तात्कालिक विषय को कुछ समय लगा कर सम्पादित कर दे तथा उत्तरोत्तर शिक्षण के लिए अन्य भी क्रमबद्ध चार पुस्तकें लिखकर एक पाठ्यक्रम निर्मित करावे, जिससे शिविरार्थी बालको को क्रमबद्ध शिक्षण मिल सके तथा अल्पकाल मे अधिक शिक्षण मिल सके।

इसके अतिरिक्त शिविर मे अधिक बालक उपस्थित हों, तो हम भी उस सम्पादित पाठ्य क्रम के आधार पर अध्यापकों द्वारा बालको को शिक्षण दे सके। यदि अन्यत्र कोई ऐसा शिविर लगाना चाहे, तो वहाँ भी उसका उपयोग हो सके। हमारी स्था० जैन कॉन्फ्रेन्स ने जो पाठावलियाँ प्रकाशित की हैं, वह हमारे संघ से विचार और आचार द्वारा बहिष्कृत श्री सन्तबालजी द्वारा लिखवानी पड़ी है। यद्यपि उनका हमारे विद्वान मुनिराजो द्वारा सशोधन अवश्य हुआ है, पर मूल से विकृत पुस्तको का सशोधन सम्भव नहीं है। उनके लिए तो नये लेखन की आवश्यकता है। अत· उनके स्थान पर यदि कोई आप द्वारा उन नवलिखित पुतको को पढाना चाहें, तो भी पढा सके।

उनके अत्यन्त आग्रह के कारण वर्त्तमान मे मेरी इस सम्बन्ध मे योग्यता, रुचि और समय की कमी होते हुए सुबोध जैन पाठमाला भाग १ के पश्चात् इस सुबोध जैन पाठमाला भाग २ को लिखा। फिर भी इनसे इच्छित उद्देश्य की पूर्ति हो सके, यह भावना रखते हुए तदनुकूल जितना मुझ से शक्य हो सका, उतना पुरुषार्थ किया।

इस ग्रन्थ मे जो कुछ अच्छाइयाँ हैं वे सब देवगुरु और धर्म की कृपा का फल है, जिन्होंने क्रमश निर्ग्रन्थ प्रवचन जैन धर्म प्रगट किया। मुझे धर्म का साहित्य और शिक्षण दिया और मेरी मति व बुद्धि कुछ निर्मल तथा विकसित की। प्रत्यक्ष मे विशेपतया श्री रतनलालजी डोसी, जिन्होंने इसका आद्योपान्त विहगावलोकन कर इसमे सशोधन दिये तथा श्री सम्पतराजजी डोसी, जिन्हो ने मुख्यतः इसमे सुझाव दिये, वे इस ग्रथ की अच्छाइयो के भागी हैं—एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

इसको जहाँ तक हो सका, जिन वचन के अनुकूल बनाने का उपयोग रखने का प्रयास किया है, तथापि इसमे जिन वचन के

विरूद्ध यदि कोई वचन लिखने में आया हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

विद्वान समालोचकों से प्रार्थना है कि वे इसमें रही त्रुटि और स्खलनाओं के प्रति मेरा व प्रकाशक का ध्यान आकर्षित करें, जिससे इसमें भविष्य में परिमार्जन हो सके। इति शुभम्।

शिक्षकों से :

इस पुस्तक में प्रतिक्रमण में **श्रमण-सूत्र** भी दिया है। जिनके माता-पिता, गुरुदेव आदि बालको को 'श्रमण-सूत्र' पढाना आवश्यक समझते हों या बालक स्वयं 'श्रमण सूत्र' को आवश्यक समझ कर पढना चाहते हों, उन बालको को 'श्रमण सूत्र' पढाया जाय। जिनके माता पिता गुरुदेव आदि बालको को 'श्रमण सूत्र' पढाना आवश्यक नहीं समझते हो या बालक पढ़ना नहीं चाहते हो, उनके लिए श्रमण सूत्र पढना **अनिवार्य नहीं** रक्खा जाय।

छोटे बालको को यह पुस्तक **दो वर्ष में** पढाना चाहिए। **प्रथम वर्ष में १. सूत्र विभाग में** 'आवश्यक (प्रतिक्रमण) सूत्र का मूल और अर्थ समझाना व कटस्थ कराना चाहिए। २. **तत्व विभाग में** 'पच्चीस बोल' के शेष बोल सार्थ और तीर्थंकर गोत्र उपार्जन के २० बोल समझाना व कंठस्थ कराना चाहिए। ३. **कथा-विभाग में** भगवान् महावीर के २७ भव. २ भगवान् अरिष्ट-नेमि ३ सती राजीमती और ४ अनाथी अणगार—ये चार कथाएँ पढानी चाहिए तथा ४. **काव्य-विभाग में** तीन मनोरथ, तीन तत्व, निर्माण मार्ग, पाक्षिक चौवीसी, क्षमापना और जैनिस्तान की झाँकी — ये छह काव्य समझाना व कठस्थ कराना चाहिए।

तथा **दूसरे वर्ष मे १. सूत्र विभाग मे** प्रतिक्रमण के प्रश्नोत्तर और निबध समझाना और धारण करना चाहिए।

२. तत्व विभाग में पाँच समिति तीन गुप्ति का स्तोक सार्थ कंठस्थ कराना व समझाना चाहिए। **३. कथा विभाग मे** धर्म रुचि अनगार आदि शेष छः कथाएँ पढानी चाहिए तथा **४. काव्य विभाग में** महावीर गुण कीर्तन, सम्यग्दृष्टि पाऊं, मानव भव का स्वागत फँसना मत देवाणुप्पिया! आवश्यक कीजिए और दश श्रावकों की स्तुति—ये छह काव्य समझाना व कंठस्थ कराना चाहिए।

स्व० शतावधानी श्री केवल मुनिजी म० का शिष्य
पारस मुनि

विषय-सूची

१. सूत्र-विभाग

श्री श्रावक आवश्यक सूत्र

तत्त्व-विभाग

१. सूत्र-विभाग

श्री श्रावक आवश्यक सूत्र

पाठ १ पहला

प्रवेश प्रश्नोत्तरी

प्र० : आवश्यक किसे कहते है ?

उ० सभी बातो मे जो बाते चतुर्विध सघ को सबसे पहले जाननी चाहिएँ और सबसे पहले करनी चाहिएं, उन्हे आवश्यक कहते है।

प्र० ऐसी आवश्यक बाते कितनी है ?

उ० जैसे लौकिक क्षेत्र मे १ लौकिक विद्या पढना, नीति से रहना, २ राष्ट्रदेवी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की पूजा करना, ३ माता-पिता गुरु आदि को प्रणाम करना, ४ नीति-रीति के अतिक्रमण पर पश्चात्ताप करना, ५ उल्लघन करने वाले को कारावास, ६. हथकडी बेडी आदि का दण्ड देना आदि आवश्यक माने जाते है। वैसे ही धार्मिक क्षेत्र मे चतुर्विध सघ को १. सामायिक, २ चतुर्विंशति-स्तव, ३ वन्दना,

४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान करना—ये छह बाते आवश्यक मानी गई हैं।

प्र० : सामायिक किसे कहते है ?

उ० : १ सम्यग्ज्ञान (तत्वज्ञान) सीखना, २ सम्यग्दर्शन (तत्वो पर श्रद्धा) रखना, ३. सम्यक्चारित्र स्वीकार करना (जिसमे या तो साधु-धर्म स्वीकार करना या श्रावक-धर्म (व्रत) स्वीकार करना या श्रावक धर्म के नववे व्रत मे एक मुहूर्त तक दो करण तीन योग से १८ पापो का त्याग करना) तथा ४. सम्यक्तप स्वीकार करना।

प्र० : हमने तो 'श्रावक के नववे व्रत को सामायिक कहते हैं'—यही सुना और सीखा है। आपने सामायिक के इतने अर्थ कैसे बताये ?

उ० : नाम की दृष्टि से श्रावक के नववे व्रत का नाम 'सामायिक' होने से वही सामायिक के रूप मे अति प्रसिद्ध है। पर गुण की दृष्टि से सम्यग्ज्ञान आदि सबसे समभाव की आय होती है, अत. ये सभी सामायिक ही समझने चाहिएँ।

प्र० : सामायिक अर्थात् सम्यग्ज्ञान दर्शन, चरित्र और तप आवश्यक क्यो हैं ?

उ० : जैसे वन से नगर मे पहुँचने वाले को १.-मार्ग आदि का सम्यग्ज्ञान आवश्यक है, २. मार्ग आदि के ज्ञान पर पूर्ण श्रद्धा होना आवश्यक है, ३. वन मे भटकना छोडना आवश्यक है और ४ मार्ग पर चलना आवश्यक है, वैसे ही हम संसार-वन मे परिभ्रमण कर रहे हैं। यदि हम मोक्ष-नगर मे पहुँचना चाहते हैं, तो हमे १. मोक्ष के मार्ग आदि-रूप नव तत्वो का

सम्यग्ज्ञान आवश्यक है, मार्ग-श्रद्धा-रूप नव तत्वो की सम्यक् श्रद्धा आवश्यक है, वन मे भटकना छोडना-रूप चारित्र आवश्यक है तथा मार्ग मे चलना-रूप सम्यक्तप आवश्यक है।

प्र० चतुर्विशति-स्तव किसे कहते हैं ?

उ० : जैन धर्म के प्रवर्त्तक भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर स्वामी तक चौबीस तीर्थंकरो का मन से नाम-स्मरण और गुण-स्मरण करना, वचन से नाम स्तुति और गुण-स्तुति करना, काया से नमस्कार करना, उनकी प्रार्थना करना आदि।

प्र० वन्दना किसे कहते है ?

उ० क्षमा आदि गुणो के धारक (महाव्रत समिति गुप्ति आदि के धारक) साधुओ को प्रदक्षिणावर्तन देना, पचाग वन्दना करना, उनके चरण स्पर्श करना, उनकी चारित्र सम्बन्धी समाधि तथा शरीर, इन्द्रिय, मन-सम्बन्धी सुख-शाता पूछना, उनकी की गई आशातना का पश्चात्ताप करना आदि।

प्र० चतुर्विशतिस्तव और वन्दना आवश्यक क्यो है ?

उ० . जैसे जो पुरुष पहले वन मे भटक रहा था, उसे आवश्यक है कि—'वह नगर का मार्ग बतलाने वाले पुरुष के उपकार को मानकर उसकी स्तुति आदि करे, वन्दना आदि करे।' इसी प्रकार जब हम ससार-वन मे भटक रहे थे, हमे मोक्ष-नगर के अस्तित्व का भी ज्ञान नही था, तब देव गुरु ने हमे शब्द सुना कर मोक्ष-नगर का मार्ग बताया और मोक्ष-मार्ग पर चढाया। अत: हमे भी आवश्यक है हम देव गुरु की स्तुति आदि करे तथा उनको वन्दना आदि करे।

प्र० प्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उ० . १. अब तक यदि ज्ञान-दर्शन-चारित्र को स्वीकार न किया हो, तो उसका पश्चात्ताप करना। २. स्वीकृत ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे लगे अतिचारो के प्रति हृदय से पश्चात्तापपूर्वक 'मिच्छा मि दुक्कड' देना (कहना)। ३ अतिचारो से लौटकर आचार मे आना। ४ कर्मो के अशुभ उदय-भाव से क्षयोपशम आदि शुभ भावो मे आना।

प्र० प्रतिक्रमण आवश्यक क्यो हैं ?

उ० १. सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन ग्रहण करते समय अर्थात् सम्यक्त्व ग्रहण करते समय यदि पहले किये हुए पापो का पश्चात्ताप-रूप प्रतिक्रमण नही किया जाता, तो पूर्व के पापो का अनुमोदन आता रहता है और ली हुई सम्यक्त्व दृढ नही बन पाती। इसी प्रकार चारित्र ग्रहण करते समय यदि पूर्व के पापो का पश्चात्ताप-रूप प्रतिक्रमण नही किया जाता, तो पूर्व के पापो का अनुमोदन आता रहता है और लिया हुआ चारित्र दृढ नही बन पाता। अत प्रतिक्रमण आवश्यक है। २. जैसे मार्ग मे चलते हुए अनाभोग, प्रमाद आदि से प्राय पैर मे काँटे लग जाते है, उन्हे निकालना आवश्यक होता है। यदि उन्हे न निकाला जाय, तो वे गति मे मन्दता उत्पन्न कर देते है। कभी-कभी पैरो मे विष फैलाते हुए वे पैरो मे चलने की शक्ति सर्वथा नष्ट कर देते हैं। वैसे ही सम्यग्ज्ञानादि ग्रहण करने के पश्चात् अनाभोग, प्रमाद आदि से अतिचार-रूप काँटे प्राय लग ही जाते है। उक्त अतिचारो को दूर न किया जाय, तो वे जीव को विराधक बनाकर मोक्ष पहुँचने की गति मे मन्दता उत्पन्न कर देते हैं। कभी-कभी तो वे अतिचार, सम्यक्त्व आदि

को पूर्ण नष्ट कर देते हैं। अतः विराधकता और सम्यक्त्वादि के विनाश से बचने के लिए भी प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्र० **कायोत्सर्ग** किसे कहते है ?

उ० १ अज्ञान, मिथ्यात्व, अव्रत आदि की सामान्य शुद्धि के लिए अथवा २. अनजान मे लगे हुए अतिचारो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त के रूप मे नियत कुछ समय तक देह की ममता छोडकर तीर्थंकरो का ध्यान लगाना।

प्र० : कायोत्सर्ग आवश्यक क्यो है ?

उ० मार्ग मे चलते हुए जो काँटे पैर मे लगकर घाव करके घाव के भीतर रहे रक्त को विषाक्त कर देते है, उन काँटो को निकालने के साथ उनके द्वारा किये हुए घाव मे रहे हुए विषाक्त रक्त को निकालने के लिए चमडो को इधर-उधर दबाने से होनेवाले दु ख के प्रति ध्यान न देते हुए जैसे चमडी को इधर-उधर दबाना आवश्यक होता है, जिससे वह विषाक्त रक्त निकल कर घाव शुद्ध हो जाय, उसी प्रकार अविवेक असावधानी आदि से लगे अतिचारो से जो ज्ञानादि मे घाव पडने के साथ रक्त विषाक्त बन जाता है, उसे निकालने के लिए देह-दु ख की ममता छोड़कर कायोत्सर्ग करना आवश्यक है जिससे वह विषाक्त रक्त निकल कर ज्ञानादि के घाव शुद्ध हो जायँ।

प्र० **प्रत्याख्यान** किसे-कहते है ?

उ० : १. अज्ञान, अव्रत, मिथ्यात्व आदि की कुछ विशेष शुद्धि के लिए अथवा २. जानते हुए लगे अतिचारो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त के रूप मे नमस्कार सहित (नवकारसी) आदि प्रत्याख्यान धारण करना अथवा ३. प्रायश्चित्त न लगने पर भी तप के लाभ के लिए प्रत्याख्यान करना।

प्र० . नित्य उभयकाल आवश्यक से क्या लाभ है ?

उ० . १. सामायिकादि आवश्यको का ज्ञान (स्मरण) रहता है। २. 'वे अवश्यकरणीय हैं'—यह श्रद्धा रहती है। ३. यदि व्रत ग्रहण किये हो, तो गृहित व्रतो की स्मृति रहती है, जिससे व्रतो का सम्यक्पालन होता रहता है। ४. यदि व्रत ग्रहण न किये हो, तो व्रत-ग्रहण की भावना होती है। ५. दिन-रात्रि मे कभी भी देव गुरु का स्मरण आदि न हुआ हो, तो कम-से-कम एक दिन-रात्रि मे दो वार स्मरण आदि हो जाता है। ६ सम्यक्त्वादि मे लगे अतिचारो की शुद्धि होती रहती है। ७. यदि व्रत ग्रहण न भी किया हो, तो भी पाप के प्रति पश्चात्ताप होता है। ८ स्वाध्याय होता है। इत्यादि नित्य आवश्यक करने मे हमे कई लाभ हैं। हम नित्य आवश्यक करे, तो १ दूसरो को भी आवश्यक का महत्व ध्यान मे आता है। २. वे भी आवश्यक का ज्ञान करते हैं। ३. इन्हे भी आवश्यक पर श्रद्धा होती है। ४ वे भी देव-स्तव और गुरु-वन्दना करते हैं। ५ वे भी पाप का पश्चात्ताप करते हैं और कदाचित् व्रत धारण भी करते हैं। इत्यादि हमारे नित्य आवश्यक से दूसरो को भी कई लाभ है।

प्र० जैसे 'दीपावली आदि को घर-दुकान आदि को विशेप साफ किया जाता है, धुलाई-पुताई की जाती है, गत वर्ष के आय-व्यय का मिलान किया जाता है, लक्ष्मी का विशेष पूजन किया जाता है, घर-दुकान मे नई-नई वस्तुएँ वसाई जाती है।' वैसे नित्य उभयकाल आवश्यक की अपेक्षा भी कभी **विशेष आवश्यक** भी किये जाते हैं क्या? जिससे आत्मा की विशेष शुद्धि हो, धार्मिक हानि-लाभ का ज्ञान हो, देव गुरु की विशेप स्तुति-वन्दना हो। आगामी वर्ष के लिए विशेप प्रत्याख्यान हो।

उ० : हाँ, कृष्ण और शुक्ल पक्ष के अन्त मे अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा (कभी-कभी चतुर्दशी) के दिन के अन्त मे, वर्षा, शीत और उष्णकाल के चातुर्मास के अन्त मे अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा और आषाढी पूर्णिमा (कभी-कभी चतुर्दशी) के दिन के अन्त मे तथा सवत्सर (वर्ष) के अन्त मे अर्थात् भाद्रपद शुक्ला पंचमी (कभी-कभी चतुर्थी) के दिन के अन्त मे, विशेष आवश्यक किये जाते हैं। कई इन दिनो मे दैवसिक प्रतिक्रमण के अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमण स्वतन्त्र रूप से करने की भी मान्यता रखते हैं और कई लोग चातुर्मास और सम्वत्सर के अन्त मे दो प्रतिक्रमण भी करते हैं।†

प्र० मास वृद्धि होने पर चातुर्मासिक और सांवत्सरिक (प्रतिक्रमण) कब करने चाहिएँ ?

उ० : जो अधिक मास हो, उसे गौण कर देना चाहिए (गिनना नही चाहिए) और गौण करके वर्षा आदि किसी भी चातुर्मास मे कोई भी मास क्यो न बढा हो, कार्तिक अथवा द्वितीय कार्तिक पूर्णिमा आदि के दिन के अंत में प्रतिक्रमण करना चाहिए। संवत्सरी के सम्बन्ध मे तीन मत हैं—१ श्रावण दो होने पर भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना और भाद्रपद दो होने पर दूसरे भाद्रपद मे प्रतिक्रमण करना, २ श्रावण दो होने पर भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना और भाद्रपद दो होने पर पहले भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना, ३. श्रावण दो होने पर दूसरे

---

†इस सम्बन्ध मे वर्धमान श्रमण संघ का नियम पालने वालों को एक प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्र० प्रत्याख्यान आवश्यक क्यों है ?

उ० : कुछ काँटे पैर में घाव करके भीतर के रक्त को इतना विषाक्त कर देते हैं कि उस रक्त को निकालने के साथ घाव पर कुछ लेप की पट्टी भी करना आवश्यक हो जाता है। वैसे ही जानते हुए लगे अतिचारों से ज्ञानादि मे घाव पडने के साथ रक्त अति विषाक्त बन जाता है। अत उस विषाक्त रक्त को कायोत्सर्ग से निकालने के साथ ज्ञानादि के घावो पर लेप-पट्टी के समान प्रत्याख्यान करना आवश्यक है, जिससे ज्ञानादि के कायोत्सर्ग से शुद्ध हुए घाव पूर जायँ (बन्द हो जायँ)।

प्र० **आवश्यकों का क्रम** इस प्रकार क्यों रक्खा गया है ?

उ० सामायिक अर्थात् सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, ही मोक्ष का मार्ग है, अत वह सबमे मुख्य है—यह बताने के लिए सामायिक को सबसे प्रथम रक्खा गया है।

१ 'मोक्षप्रदायी सामायिक धर्म' को अरिहन्त देव ने प्रकट किया और हमे 'गुरुदेव ने उसे सिखाया।' अतः कृतज्ञता की दृष्टि मे 'हम तीर्थकर-स्तव और गुरु-वन्दना करें'—यह बताने के लिए क्रमश दूसरे और तीसरे स्थान पर चतुर्विंशतिस्तव और वन्दना रक्खी गई है। २ 'हम अपनी सामायिक आराधना को तीर्थकर स्तव और गुरु-वन्दना करके निर्विघ्न मंगलमय बनावे।' इसलिए भी इन्हे दूसरा और तीसरा स्थान दिया है। ३ 'पापो का पश्चात्ताप और अतिचारो का प्रतिक्रमण हम अरिहंत-साक्षी से और गुरुदेव के चरणो मे करे।' इसलिए भी इन्हे दूसरा तीसरा स्थान दिया है। अरिहन्त-साक्षी से हम मे पाप-गोपन की भावना दूर होती है और गुरु के चरणो से हमे अपने अतिचारों की शुद्धि का मार्ग मिलता है।

१. 'जिसने सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन पाया, वही सम्यक्तया पाप और धर्म को समझकर अपने पापो का सच्चा पश्चात्ताप-रूप प्रतिक्रमण कर सकेगा'—यह बताने के लिए प्रतिक्रमण का चौथा स्थान रक्खा है। २ 'सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन पाने के बाद या चारो को पाने के बाद प्रायः उनमें अनाभोगादि से अतिचार लगते रहते है।' अत. उन अतिचारो के प्रतिक्रमण के लिए भी प्रतिक्रमण का स्थान चौथा रक्खा है।

अनाभोग आदि से लगने वाले अतिचारो की अपेक्षा अविवेक, असावधानी आदि से लगे बडे अतिचारो की कायोत्सर्ग शुद्धि करता है। इसीलिए कायोत्सर्ग को पाँचवाँ स्थान दिया है तथा अविवेकादि से लगने वाले अतिचारो की अपेक्षा जानते हुए दप आदि से लगे बडे अतिचारो की प्रत्याख्यान शुद्धि करता है। अत प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया है। अथवा प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग के द्वारा अतिचार की शुद्धि हो जाने पर प्रत्याख्यान द्वारा तप-रूप नया लाभ होता है। अत प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया है।

प्र० . ये आवश्यक कब किये जाते है ?

उ० जब भी अनुकूल अवसर (समय) मिले, तभी किये जा सकते हैं। पर १. दिन के अन्त मे अर्थात् सूर्यास्त के पश्चात् और मन्द तारे दिखने लग जायँ, लाली और प्रकाश मिट जायं—इसके बीच लगभग एक मुहूर्त मे, २ रात्रि के अन्त मे अर्थात् मन्द तारे दिखने बन्द हो जायें, लाली और प्रकाश आरम्भ हो जायँ, तब से लेकर सूर्योदय के पहले तक लगभग एक मुहूर्त मे, ये छहो आवश्यक अवश्य करने चाहिएँ।

प्र० नित्य उभयकाल आवश्यक से क्या लाभ है ?

उ० १ सामायिकादि आवश्यको का ज्ञान (स्मरण) रहता है। २ 'वे अवश्यकरणीय हैं'—यह श्रद्धा रहती है। ३. यदि व्रत ग्रहण किये हो, तो गृहित व्रतो की स्मृति रहती है, जिससे व्रतो का सम्यक्पालन होता रहता है। ४. यदि व्रत ग्रहण न किये हो, तो व्रत-ग्रहण की भावना होती है। ५. दिन-रात्रि मे कभी भी देव गुरु का स्मरण आदि न हुआ हो, तो कम-से-कम एक दिन-रात्रि मे दो बार स्मरण आदि हो जाता है। ६ सम्यक्त्वादि मे लगे अतिचारो की शुद्धि होती रहती है। ७ यदि व्रत ग्रहण न भी किया हो, तो भी पाप के प्रति पश्चात्ताप होता है। ८ स्वाध्याय होता है। इत्यादि नित्य आवश्यक करने मे हमे कई लाभ हैं। हम नित्य आवश्यक करें, तो १. दूसरो को भी आवश्यक का महत्व ध्यान मे आता है। २ वे भी आवश्यक का ज्ञान करते हैं। ३ इन्हें भी आवश्यक पर श्रद्धा होती है। ४ वे भी देव-स्तव और गुरु-वन्दना करते है। ५. वे भी पाप का पश्चात्ताप करते हैं और कदाचित् व्रत धारण भी करते हैं। इत्यादि हमारे नित्य आवश्यक से दूसरो को भी कई लाभ है।

प्र० जैसे 'दीपावली आदि को घर-दुकान आदि को विशेष साफ किया जाता है, धुलाई-पुताई की जाती है, गत वर्ष के आय-व्यय का मिलान किया जाता है, लक्ष्मी का विशेष पूजन किया जाता है, घर-दुकान मे नई-नई वस्तुएँ बसाई जाती है।' वैसे नित्य उभयकाल आवश्यक की अपेक्षा भी कभी विशेष आवश्यक भी किये जाते हैं क्या? जिससे आत्मा की विशेष शुद्धि हो, धार्मिक हानि-लाभ का ज्ञान हो, देव गुरु की विशेष स्तुति-वन्दना हो। आगामी वर्ष के लिए विशेष प्रत्याख्यान हो।

उ० : हाँ, कृष्ण और शुक्ल पक्ष के अन्त मे अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा (कभी-कभी चतुर्दशी) के दिन के अन्त मे, वर्षा, शीत और उष्णकाल के चातुर्मास के अन्त मे अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा और आषाढी पूर्णिमा (कभी-कभी चतुर्दशी) के दिन के अन्त मे तथा सवत्सर (वर्ष) के अन्त मे अर्थात् भाद्रपद शुक्ला पंचमी (कभी-कभी चतुर्थी) के दिन के अन्त में, विशेष आवश्यक किये जाते हैं। कई इन दिनो मे दैवसिक प्रतिक्रमण के अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमण स्वतन्त्र रूप से करने की भी मान्यता रखते हैं और कई लोग चातुर्मास और सम्वत्सर के अन्त मे दो प्रतिक्रमण भी करते हैं।†

प्र० मास वृद्धि होने पर चातुर्मासिक और सांवत्सरिक (प्रतिक्रमण) कब करने चाहिएँ ?

उ० : जो अधिक मास हो, उसे गौण कर देना चाहिए (गिनना नही चाहिए) और गौण करके वर्षा आदि किसी भी चातुर्मास मे कोई भी मास क्यो न बढा हो, कार्तिक अथवा द्वितीय कार्तिक पूर्णिमा आदि के दिन के अत में प्रतिक्रमण करना चाहिए। सवत्सरी के सम्बन्ध मे तीन मत हैं—१ श्रावण दो होने पर भाद्रपद मे प्रतिक्रमण करना और भाद्रपद दो होने पर दूसरे भाद्रपद मे प्रतिक्रमण करना, २ श्रावण दो होने पर भाद्रपद मे प्रतिक्रमण करना और भाद्रपद दो होने पर पहले भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना, ३. श्रावण दो होने पर दूसरे

---

†इस सम्बन्ध मे वर्धमान श्रमण संघ का नियम पालने वालों को एक प्रतिक्रमण करना चाहिए।

श्रावण मे प्रतिक्रमण करना और दो भाद्रपद होने पर पहले भाद्रपद मे प्रतिक्रमण करना।

इनमे से पहला मत 'चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे जैसे अधिक मास गौण किया जाता है', वैसे ही दूसरा मत 'सवत्सरी प्रतिक्रमण मे भी अधिक मास गौण करना, इस मान्यता को लेकर चलने वालो का है। और तीसरा मत 'वर्षावास आरम्भ होने के पश्चात् ४९-५०वे दिन संवत्सरी करना' इस मान्यता वालो का है।†

प्र० दूसरो की संध्याआदि में (संध्यापाठ आदि मे) और हमारे आवश्यक मे क्या अन्तर है ?

उ० दूसरे लोगो की सध्या आदि में केवल ईश्वर-स्मरण और प्रार्थना आदि की मुख्यता रहती है, अपने ज्ञानादि धर्मों की स्मृति तथा अपने पापो के प्रतिक्रमण की मुख्यता नही रहती, पर हमारे आवश्यक मे अपने ज्ञानादि धर्मों की स्मृति तथा अपने पापो की प्रतिक्रमण की मुख्यता है, जो अन्तरग दृष्टि से (उपादान दृष्टि से) अधिक आवश्यक है। इसलिए हमारा आवश्यक उपयुक्त और बढ़कर है।

प्र० : सूत्र किसे कहते हैं ?

उ० लोक मे सूत को सूत्र कहते हैं, जिसमें माली बाग के फूल पिरोता है या मणियार मणि-मोती पिरोता है। पर यहाँ धार्मिक क्षेत्र मे गणधरो की शब्द-रचना को 'सूत्र' कहते

---

†इस सम्बन्ध मे वर्धमान श्रमण संघ का नियम पालने वालों को पहले मत के अनुसार प्रतिक्रमण करना चाहिए।

हैं, जिसमे गणधर, भगवान् की आज्ञा, उपदेश, मत रूप-रत्नो को गूंथते है।

प्र० : श्रावक आवश्यक सूत्र किसे कहते है ?

उ० जिसमे श्रावक-श्राविकाओ को सर्वप्रथम अवश्य जानने योग्य और नित्य दोनो सध्याओ को अवश्य करने योग्य, तीर्थंकरो द्वारा बताए हुए सामायिकादि छह आवश्यक गणधरो ने गूंथे हो, उसे 'आवश्यक सूत्र' कहते हैं।

प्र० : आवश्यक सूत्र का प्रसिद्ध दूसरा नाम क्या है ?

उ० प्रतिक्रमण सूत्र।

प्र० आवश्यक सूत्र को प्रतिक्रमण सूत्र क्यो कहते हैं ?

उ० क्योकि आवश्यक सूत्र के छह आवश्यको में प्रतिक्रमण सूत्र अक्षर प्रमाण मे सबसे बडा हैं।

प्र० : वर्त्तमान मे आवश्यक सूत्र से कितने आवश्यक लिए जाते हैं ?

उ० वर्त्तमान में सामायिक सूत्र और प्रतिक्रमण सूत्र — यों प्राय आवश्यक दो भागो मे बाँटा जाता है। सामायिक सूत्र मे १. सामायिक और २. चतुर्विंशतिस्तव—ये दो आवश्यक दिये जाते हैं। शेष ३. वदना, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग और ६. प्रत्याख्यान—ये चार आवश्यक प्रतिक्रमण सूत्र मे दिये जाते है।

पहली पाठमाला के सूत्र-विभाग मे दो आवश्यक दिये जा चुके है, इसमे शेष चार आवश्यक दिये जायेंगे।

❖

पाठ २ दूसरा

पहला आवश्यक

विधि : मुनि-स्थान, पौषधशाला आदि निरवद्य स्थान मे पहले सामायिक करे। यात्रा आदि का आगार। फिर क्षेत्र विशुद्धि (चउवीसत्थव) करे, इसकी विधि—'तिक्खुत्तो से तीन बार वन्दना करे, फिर इच्छाकारेण तस्सउत्तरी बोलकर दो लोगस्स का ध्यान करे। नमस्कार मत्र से कायोत्सर्ग पार कर ध्यान पारने का पाठ कहे, फिर प्रकट एक लोगस्स कहकर दो 'नमोत्थुण दे।' यो क्षेत्र-विशुद्धि करके तिक्खुत्तो से तीन बार गुरुदेव को या पूर्व-उत्तर दिशा मे भगवान् को वदना करके 'प्रतिक्रमण आरम्भ करने (ठाने) की आज्ञा है।' कहकर प्रतिक्रमण आरभ की आज्ञा ले। 'सुनने वाले, सुनानेवाले के प्रति आपकी निश्रा है।' कहकर निश्रा ग्रहण करे। सुनाने वाला सुननेवालो के प्रति 'कीजिए।' कहकर निश्रा की स्वीकृति दे। फिर खडे रहकर हो यह पाठ कहे—

१. 'इच्छामि णं भन्ते' आज्ञा का पाठ

इच्छामि णं	: मै चाहता हूँ (ण वाक्य अलकार मे)
भते !	: हे भगवन् ! (हे पूज्य !)
तुब्भेहिं	: आपके द्वारा
अब्भणुण्णाए समाणे	: आज्ञा मिलने पर
देवसियं†	: दिन सबधी

†जहाँ-जहाँ 'देवसिय' शब्द आवे, वहाँ वहाँ रात्रिक (प्रात) प्रतिक्रमण मे 'राइयं', पाक्षिक प्रतिक्रमण मे 'देवसियंपक्खियं', चातुर्मासिक

पडिक्कमण	: प्रतिक्रमण (आवश्यक) को
ठाएमि।	: करता हूँ।

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा

देवसिय ।	: दिन सबधी
१-२. णाण-दंसण	ज्ञान-दर्शन (सम्यक्त्व)
३. चरित्ताचरित्त	चारित्राचारित्र (श्रावक का देश-चारित्र)
४ तव	: और तप के (सब ९९)
अइयार	: अतिचारो का
चिन्तवणत्थं	: चिन्तन करने के लिए
करेमि काउसग्ग।	: करता हूँ, कायोत्सर्ग को

प्रश्नोत्तर

प्र० **क्षेत्र-विशुद्धि** किसे कहते है ?

उ० किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पहले उसके लिए भूमिका का शुद्धि करना। जैसे धोबी वस्त्र धोने से पहले

प्रतिक्रमण मे 'देवसिय चाउम्मासियं' तथा सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे 'देवसिय-सवच्छरिय' बोलें। दो प्रतिक्रमण करने वाले चातुर्मासान्त के दिन पहले प्रतिक्रमण मे 'देवसिय' तथा दूसरे प्रतिक्रमण मे 'चाउम्मासियं' बोलें। इसी प्रकार सवत्सरान्त मे पहले मे 'देवसियं' तथा दूसरे मे 'संवत्सरिय' बोलें। इसी प्रकार 'देवसिय', देवसिओ और 'देवसियाए' के स्थान पर 'राइय' 'राइओ' और 'राइयाए' आदि बोलें।

शिला की शुद्धि करता है, वैसे ही प्रतिक्रमण करने से पहले चउवीसत्थव करके 'क्षेत्र-विशुद्धि' की जाती है।

प्र० निश्रा किसे कहते हैं ?

उ० जिन्हे प्रतिक्रमण कण्ठस्थ न हो, जो उसके भाव व विधि आदि को न जानते हो, वे, (जानते भी हों, तो भी) 'हमारे पाप निष्फल हो'—इस भावना को लेकर प्रतिक्रमण करने वाला 'जो कुछ शब्दोच्चारण करे, वह हमारे लिए भी हो।' इस आशय से प्रतिक्रमण करने वाले का आश्रय ग्रहण करे, उसे निश्रा कहते हैं।

प्र० श्रावक के देश-चारित्र को चारित्राचारित्र क्यो कहते हैं ?

उ० वह कुछ चारित्र ग्रहण करता है, और कुछ नही—इसलिए।

प्र० **आलोचना** किसे कहते है ?

उ० 'मेरे धर्म मे कोई अतिचार लगा या नही ? यदि लगा हो, तो उसे दूर करूँ।' इस विचार से १. अपने अतिचारो को, २. शुद्ध भाव से, ३ सम्यक्तया (धीरे-धीरे गहराई पूर्वक) देखने को यहाँ 'आलोचना' कहा है।

प्र० : **अतिचार** किसे कहते है ?

उ० : धर्म मे कुछ दोष लगाने को। १. **दर्प** (विना कारण जान-बूझकर व्रत तोडने की बुद्धि) से, २. **प्रमाद** (व्रत के प्रति अनादर, अविवेक, विषय-भोग मे रुचि आदि) से तथा ३. **प्रद्वेष** (कषाय की तीव्रता) से धर्म मे कुछ दोष लगाना तीव्र अतिचार है और पूरा दोष लगा देना अनाचार है।

१. **अनाभोग** (प्रत्याख्यान की स्मृति न रहना, 'ऐसा करने से व्रत मे दोष लगता है'—इसका ज्ञान न होना, मैंने जो प्रत्याख्यान लिया है, 'उसमें इसका भी त्याग सम्मिलित है'—इसका भान न होना आदि) से तथा २ **सहसाकार** (प्रत्याख्यान की रक्षा करने की भावना और प्रवृत्ति होते हुए भी अकस्मात् बलात्कार हो जाना आदि) से व्रत मे केवल मन्द अतिचार लगता है। इन दोनो से अनाचार नही होता।

शेष १ **आतुरता** (भूख-प्यास आदि से अत्यन्त पीडित हो जाने) से, २ **आपत्ति** (रोग आदि) से, ३. **शंका** (ऐसा करने से मेरे प्रत्याख्यान मे अतिचार लगेगा या नही—ऐसे सदेह) से, ४ **भय** (देवादि के भय) से तथा ५. **विमर्श** (किसी की परीक्षा के लिए अपने प्रत्याख्यान के प्रति गौणता आ जाने से) प्रत्याख्यान मे कुछ दोष लगाना मध्यम अतिचार है और पूरा दोष लगा देना कभी तीव्र अतिचार होता है, तो कभी अनाचार भी हो जाता है।

प्र० . अतिचारो का **प्रायश्चित्त** बताइये।

उ० मन्द अतिचार का प्रायश्चित्त 'हार्दिक पश्चात्ताप' 'मिच्छा मि दुक्कड' है। मध्यम और तीव्र अतिचारो का प्रायश्चित्त नवकारसी (नमस्कार सहित) आदि है। अनाचार के पश्चात् पुनः व्रत लेना पडता है।

❖

पाठ ३ तीसरा

'इच्छामि ठाएमि संक्षिप्त प्रतिक्रमण'

विधि : 'इच्छामि णं भंते' के पश्चात् वंदना करके—'पहले सामायिक आवश्यक की आज्ञा है'—कहकर पहले आवश्यक की आज्ञा ले। फिर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप संबंधी सभी प्रत्याख्यानो की स्मृति के रूप मे 'करेमि भंते' पढे। यहाँ पहला आवश्यक समाप्त हो जाता है, पर आगामी चौथे आवश्यक की भूमिका के लिए इसी आवश्यक मे निम्न 'इच्छामि ठामि' का पाठ पढें। फिर 'तस्सउत्तरी' कहकर कायोत्सर्ग करे। जैसे धोबी वस्त्र धोने से पहले 'वस्त्र मे कहाँ-कहाँ मैल लगा है'—यह ध्यानपूर्वक देखता है, जिससे वस्त्र-शुद्धि उत्तम होती है, वैसे ही आगामी प्रतिक्रमण के लिए 'दिन आदि मे क्या-क्या अतिचार लगे हैं'—यह जानने के लिए कायोत्सर्ग मे ९९ अतिचार और समुच्चय १८ पाप का चिन्तन करे। अतिचार-चिन्तन के लिए चौथे आवश्यक के 'आगमे तिविहे' से लेकर 'सलेखना' तक के १५ पाठो मे अतिचार अश वाले पाठ कहे। मिश्रित प्रतिक्रमण करने वाले कायोत्सर्ग मे अर्थ-प्रधान अतिचार मे पाठ पढते हैं और चौथे आवश्यक मे अन्तिम वार मूल-प्रधान अतिचार पाठ पढ़ते है। मूल-प्रधान प्रतिक्रमण वाले सर्वत्र मूल-प्रधान अतिचार पाठ पढते हैं और अर्थ-प्रधान प्रतिक्रमण वाले सर्वत्र अर्थ-प्रधान अतिचार पाठ पढते हैं। (१८ पाप के पश्चात् कई 'इच्छामि ठामि' भी 'ज विराहिय' तक पढते हैं) जिन्हे पाठ कठस्थ न हो, वे ८ लोगस्स या प्रति लोगस्स ४ नमस्कार मत्र के गणित से ३२ नमस्कार

मंत्र पढ़ें, उसके पश्चात् नमस्कार मत्र पढकर कायोत्सर्ग पारें और प्रकट एक नमस्कार मत्र और ध्यान पारने का पाठ कहे।

इति पहला आवश्यक समाप्त।

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा

इच्छामि : मैं चाहता हूँ
ठाएमि (ठाइउं) : करना
काउस्सग्गं। : कायोत्सर्ग।

अतिचार आलोचना

जो मे : (निम्न अतिचारों में से) मुझे जो कोई
देवसिओ : दिन संबधी
अइयारो कओ : अतिचार लगा हो (तो आलोउ)
१ काइओ : काया सबंधी अतिचार लगा हो
२ वाइओ : वचन सबधी अतिचार लगा हो
३. माणसिओ : मन सबंधी अतिचार लगा हो
२ उस्सुत्तो : वचन से उत्सूत्र (सूत्र-विरुद्ध) कहा हो
उम्मग्गो : उन्मार्ग (जैन-मार्ग-विरुद्ध) कहा हो
१ अकप्पो : (काया से) अकल्पनीय कार्य किया हो
अकरणिज्जो : अकरणीय (नही करने योग्य) किया हो
३. दुज्झाओ : (मन से सतत) आर्त्त रौद्र ध्यान ध्याया हो
दुव्विचिंतिओ : कभी-कभी दुष्ट चिन्तन किया हो, (यों
अणायारो : वचन काया से) अनाचार किया हो

अणिच्छियव्वो	: (मन से) अनिच्छनीय इच्छा की हो
असावग-पाउग्गो	: (यो) श्रावक धर्म विरुद्ध काम किया हो
१. णाणे तह २. दसणे	: (करके) ज्ञान तथा दर्शन मे
३. चरित्ताचरित्ते	: चारित्राचारित्र (श्रावक व्रत) मे
१. सुए	: (दूसरे शब्दो मे) श्रुत (ज्ञान) मे
२. ३. सामाइए	: सामायिक (दर्शन तथा श्रावक व्रत) में अतिचार लगाया हो।
तिण्हं गुत्तीणं	: तीन गुप्तियाँ न की हो
चउण्हं कसायाणं	: चार कषायें की हो।
पंचण्हमणुव्वयाणं	: पाँच अणुव्रतो का
तिण्हं गुणव्वयाणं	: तीन गुणव्रतो का
चउण्हं सिक्खावयाणं	: चार शिक्षाव्रतो का (इस प्रकार ५+३+४=१२)
बारस-विहस्स	: बारह प्रकार के
सावग-धम्मस्स	: श्रावक धर्म की
जं खंडियं	: जो (कुछ) खडना की हो
जं विराहियं	: जो (अधिक) विराधना की हो

अतिचार प्रतिक्रमण

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं : उसका मेरा पाप निष्फल हो।

प्रश्नोत्तर

प्र० : अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ० : जो महाव्रतो की अपेक्षा अणु अर्थात् छोटे हों।

प्र० : गुणव्रत किसे कहते हैं ?

उ० : जो अणुव्रतो को गुण अर्थात् लाभ पहुँचाते हो।

प्र० : शिक्षाव्रत किसे कहते है ?

उ० जो बारबार शिक्षा अर्थात् अभ्यास करने योग्य हो।

पाठ ४ चौथा

दूसरा-तीसरा आवश्यक

विधि : पहले आवश्यक की समाप्ति पर वंदना करके 'पहला सामायिक आवश्यक पूरा हुआ। दूसरे 'चतुर्विंशतिस्तव' आवश्यक की आज्ञा है'—कहकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा ले। आज्ञा लेकर १ बार चतुर्विंशतिस्तव का पाठ **'लोगस्स'** कहे।

इति दूसरा आवश्यक समाप्त।

समाप्ति पर वंदना करके 'पहला सामायिक तथा दूसरा चतुर्विंशतिस्तव—ये दो आवश्यक पूरे हुए। तीसरे वंदना आवश्यक की आज्ञा है'—कहकर तीसरे आवश्यक की आज्ञा लें। आज्ञा लेकर दो बार निम्न पाठ पढ़ें।

इति तीसरा आवश्यक समाप्त।

'इच्छामि खमासमणो' पढ़ने की विधि

गुरु के समक्ष या पूर्व, उत्तर या ईशान कोण मे अपने आसन को छोड़कर, खड़े रहकर, हाथ जोड़कर और शीश

झुकाकर 'निसीहि' तक पाठ पढे तथा यदि गुरुदेव हो, तो निसीहि उच्चारण के साथ उनकी चारो ओर की देहप्रमाण ३।। हाथ भूमि मे प्रवेश करे। फिर दोनो घुटनो के बल बैठकर दोनो घुटनो के बीच दोनो हाथो को जोडे। यो—गर्भस्थ शिशु के समान विनीत वज्रासन से बैठकर 'अ' का उच्चारण मन्द स्वर से करते हुए दोनो हाथो को लम्बा करके—गुरु-चरण को क्लामना न पहुँचे—इस प्रकार विवेक से गुरु के चरण का स्पर्श करे। यदि गुरुदेव न हो, तो चरण-स्पर्श की भावना करते हुए भूमिस्पर्श करे। फिर 'हो' का उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए दोनो हाथो से अपने शिर का स्पर्श करें। इसी प्रकार 'का—य' तथा 'का—य' मे उच्चारण और चरण-शिर स्पर्श करे। 'सफास' कहते हुए गुरु के चरणो मे मस्तक का भी स्पर्श करें। इस प्रकार तीन आवर्तन और एक शिर का झुकाव हुआ।

उसके पश्चात् 'खमणिज्जो' से 'दिवसो वइक्कतो' तक सामान्यतया पाठ पढें। फिर १. ज-त्ता-भे, २ ज-व-णि, ३. ज्ज-च-भे, मे इन तीन अक्षर-समूह मे से पहले-पहले अक्षर का पहले के समान मन्द स्वर से उच्चारण करते हुए गुरु-चरण स्पर्श करे। दूसरे-दूसरे अक्षर का मध्यम स्वर से उच्चारण करते हुए हाथो को भूमि और शिर के बहुमध्य मे पल भर रोके। फिर तीसरे-तीसरे अक्षर का उच्चस्वर से उच्चारण करते हुए स्वय का शिर स्पर्श करे। पश्चात् गुरु के चरणो मे मस्तक झुकावे। यो दूसरे तीन आवर्तन और दूसरा शिर का झुकाव हुआ।

उसके पश्चात् 'खामेमि' से 'पडिक्कमामि' पाठ सामान्यतया पढ़ें। 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' कहते हुए खडे हो जायँ

और गुरु की भूमि मे प्रवेश किये हुए हो, तो बाहर निकल जायँ।

दूसरी बार भी इसी प्रकार पढे। मात्र अन्तर यही है कि दूसरी बार मे 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' न कहे, खडे न हो, बाहर भी न निकले।

दोनो खमासमणो मे सब आवर्तन बारह, शिर झुकाव चार, प्रवेश दो और निकलना एक बार होता है।

३ 'इच्छामि खमासमणो' उत्कृष्ट वन्दन का पाठ

वन्दन अनुमति

इच्छामि : मै चाहता हूँ।
खमासमणो ! : हे, क्षमा (आदि १० धर्म युक्त) श्रमण!
वंदिउं : (उत्कृष्ट) वन्दना करना।
जावणिज्जाए : (घुटने आदि की) शक्ति के अनुसार।
निसीहियाए। : अपने योगो को पाप-क्रिया से हटा कर (आपकी परिमित भूमि मे प्रवेश करके।)
अणुजाणह मे मुझे आज्ञा (स्वीकृति) दीजिए।
मिउग्गहं। : आपकी परिमित भूमि मे प्रवेश की!

चरण-स्पर्श, क्षमा-याचना व शाता-समाधि प्रश्न

निसीहि : पाप-क्रिया से हट कर (तथा परिमित भूमि मे प्रवेश करके वज्रासन से)।

अहो-कायं	: आपके (दोनो) चरणों का मैं अपने
काय-संफासं	: मस्तक और हाथो से स्पर्श करता हूँ।
खमणिज्जो, भे	: क्षमा करे, जो आपको
किलामो	: (मेरे स्पर्श से) क्लामना हुई।
अप्पकिलंताणं	: बिना देहग्लानि रहे
१ बहु सुभेणं	: बहुत शुभ (सयमी क्रियाओ) से
भे दिवसो वइक्कन्तो†	: आपका दिन बीता ?
२ जत्ता भे ?	: आपकी (सयम) यात्रा (निर्बाध) है ?
३ जवणिज्जं च भे ?	: और आपका शरीर व इन्द्रियाँ स्वस्थ हैं ?
खामेमि	: खमाता हूँ (क्षमा-याचना करता हूँ)
खमासमणो !	: हे क्षमा-श्रमण !
देवसिअं वइक्कमं	: दिन सम्बन्धी अपराध को।
आवस्सियाए पडिक्कमामि	: आपकी परिमित भूमि से बाहर निकलता हूँ (और खडे होकर)

आशातना की क्षमा-याचना व प्रतिक्रमण

खमासमणाणं	: आप क्षमा-श्रमण की
देवसियाए	: दिन सम्बन्धी
आसायणाए	: आशातना द्वारा

---

†रात्रि प्रतिक्रमण मे 'राइवइक्कता' पाक्षिक 'प्रतिक्रमण' मे 'दिवसो पक्खो वइक्कतो', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे एकवाले 'दिवसो वइक्कतो चाउम्मास वइक्कंत' दो वाले दूसरे मे मात्र 'चाउम्मास वइक्कत' सांवत्सरिक प्रतिक्रमण मे एक वाले दिवसो सवच्छरो वइक्कन्तो' तथा दो वाले दूसरे मे मात्र 'संवच्छरो वइक्कतो' कहें।

तित्तीसन्नयराए	: तेतीस मे से किसी भी
ज किंचि	: जो जिस किसी
मिच्छाए	: मिथ्या-भाव से की हुई
मण-दुक्कडाए	: मन से दुष्ट विचार से की हुई
वय-दुक्कडाए	: वचन से दुष्ट कथन से की हुई
काय-दुक्कडाए	काया से दुष्ट आसन से की हुई
कोहाए माणाए	: क्रोध से की हुई, मान से की हुई
मायाए लोहाए	: माया से की हुई, लोभ से की हुई
सव्वकालियाए	: (इसी प्रकार) सब काल मे की हुई
सव्व मिच्छोवयराए	: सब मिथ्या आचरणो से पूर्ण
सव्वधम्मा –	: सभी (क्षमादि धर्म वाले की विनय
इक्कमणाए	: मर्यादा) का अतिक्रमण करने वाली
आसायणाए	: आशातना से
जो मे देवसिओ	: मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी
अइयारो कओ	: अतिचार लगा हो तो
तस्स खमासमणो !	: उसका, हे क्षमा-श्रमण !
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
निंदामि	: निन्दा करता हूँ
गरिहामि	: विशेष निन्दा करता हूँ
अप्पाणं वोसिरामि।	: (अपनी आशातना करनेवाली पापी) आत्मा को वोसिराता (त्यागता) हूँ।

शिक्षाएँ

१ वन्दन करते समय कोई पाप-क्रिया न करते हुए पाँच अभिगमन सहित वंदन करना चाहिए। २. शरीर मे शक्ति व घुटनो मे बल आदि रहते हुए विधिवत् अंग झुकाते हुए

वदन करना चाहिए। ३ यदि निकट जाकर वदन करने का अवसर न हो, तो साढे तीन हाथ शरीर-प्रमाण दूरी से वदना करनी चाहिए। ४. वदना के साथ अनुकूलता रहते हुए गुरुदेवो के चरणों का हाथ और मस्तक से स्पर्श अवश्य करना चाहिए। ५. वदन या चरण-स्पर्श आदि इस प्रकार करना चाहिए, जिससे गुरुदेव को कष्ट न पहुँचे। भीड के समय धक्का-मुक्की करते हुए वदन करने से गुरुदेव को कष्ट पहुँच जाता है, अत ऐसे समय बहुत शाति और धैर्य रखना चाहिए। ६ थोडा भी कष्ट पहुँचते ही तत्काल क्षमा-याचना करनी चाहिए। ७. वदना करने के पश्चात् उनके संयम और शरीरादि सुख-दुख की जानकारी करनी चाहिए—जैसे उन्हे गोचरी-पानी सुलभ हुई या नही? आहार-पानी पारणा आदि किया या नही? उपवासादि तपश्चर्या शाति मे हो रही है या नही? उनका शरीर स्वस्थ है या नही? औपधि आदि का सयोग मिला या नही? इत्यादि बातें भी पूछनी चाहिएँ तथा जो स्वय से बन सके, वह स्वय को करना भी चाहिए। यदि स्वय से कोई कार्य न बन सके, तो जो उसके लिए समर्थ हो, उसे सूचित कर गुरुदेव की सेवा की दलाली का लाभ उठाना चाहिए। ८ दिवस मे या किसी भी समय किसी भी प्रकार से गुरुदेव की आशातना हुई हो, तो उसकी क्षमा-याचना करनी चाहिए। ९ गुरुदेव के सामने मिथ्या-उपचार आदि नही करना चाहिए।

प्र० तीन वदना बताओ।

उ० 'मत्थएण वदामि'—यह लघु वन्दना है। क्योकि इसमे शब्द थोडे हैं तथा यह केवल हाथ जोडकर तथा मस्तक झुकाकर की जाती है। यह वन्दना प्राय गुरु-दर्शन होते समय सबसे पहले की जाती है। 'तिक्खुत्तो' मध्यम वन्दना है, क्योकि

इसमे शब्द मध्यम तथा यह पचांग झुकाकर की जाती है। 'इच्छामि खमासमणो' दोनो से शब्द और क्रिया दोनो मे बढकर है। इसलिए उसे **उत्कृष्ट वन्दना** कहते है।

❖

पाठ ५ पाँचवाँ

धर्म की आवश्यकता

अज्ञान से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। मिथ्यात्व से राग-द्वेष उत्पन्न होता है। राग-द्वेष से आत्मा के साथ कर्म बन्ध होता है। कर्म से आत्मा के साथ देह-संयोग होता है और देह के जन्म-मरण से आत्मा को दुःख होता है। उस दु ख का नाश करना धर्म का उद्देश्य है और उस दुख का नाश होकर आत्मा को अनंत और एकांत सुखमय मोक्ष की प्राप्ति होना धर्म का फल है।

दुःख-विनाश के लिए आत्मा के साथ संयुक्त देह का आत्मा से वियोग होना आवश्यक है। देह-वियोग के लिए कर्म-बन्धन का छूटना आवश्यक है। कर्म-बन्धन छूटने के लिए राग-द्वेष का नष्ट होना आवश्यक है। राग-द्वेष के नाश के लिए मिथ्यात्व का दूर होना आवश्यक है और मिथ्यात्व को दूर करने के लिए अज्ञान को हटाना आवश्यक है।

इस कार्य को धर्म अपने चार भेद—१. सम्यग्ज्ञान, २. सम्यग्दर्शन, ३. सम्यक्चारित्र और ४ सम्यक्तप द्वारा पूर्ण करता है। सम्यग्ज्ञान अज्ञान को हटाता है और सम्यग्दर्शन

मिथ्यात्व को दूर करता है। सम्यक्चारित्र राग-द्वेष को नष्ट करता है और सम्यक्तप कर्म-बन्धन को तोडता है। कर्म-बन्धन के सर्वथा क्षय से तत्काल आत्मा देह से पृथक् हो जाती है और उस दु ख मूल देह से पृथक् होकर अनत और एकांत सुखमय मोक्ष को प्राप्त कर लेती है।

इसीलिए जो भी प्राणी दु ख का नाश करके अनत सुख और एकांत सुख चाहते हैं, उनके लिए धर्म आवश्यक है। उसी धर्म का ही आगामी चौथे आवश्यक मे वर्णन किया जायेगा।

मोक्ष अनंत सुखमय कैसे है और एकात सुखमय कैसे है?— यह वता देना अधिकत. वाणी से परे की बात है। फिर भी जिनेश्वरों ने उपमा आदि के द्वारा उसके सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रकाश दिया है। इतना होते हुए भी यदि किन्हीं को मोक्ष-सुख समझ मे न आवे और वे भौतिक सुख मे ही सुखानुभव करे, तो उनके लिए भी धर्म क्रिया लाभदायी ही है। क्योकि वह ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म को दूर करके ज्ञान-शक्ति देती है। असाता वेदनीय को दूर करके विषय-सुख और मन-वचन-काया के सुख देती है। मोहनीय को मन्द करके पुरुषत्व देती है। अशुभ आयुष्य दूर करके शुभ और दीर्घ आयुष्य (जीवन) देती है। अशुभ नाम दूर करके श्रेष्ठ शरीर देती है। अशुभ गोत्र दूर करके धनादि-ऐश्वर्य प्रदान करती है और अन्तराय दूर करके ऐश्वर्यादि की प्राप्ति मे आने वाली बाधाओ को दूर करती है। धर्मक्रिया के प्रताप से आत्मा भावी जन्म मे इन्द्र और चक्रवर्ती आदि के सुख प्राप्त करती है। इस प्रकार जो प्राणी भौतिक सुख चाहते हैं, उनके लिए भी धर्म की क्रिया आवश्यक है।

यद्यपि हमारे सामने प्रत्यक्ष ही एक दूसरा तिर्यञ्च लोक और कर्मों के फल-रूप जीवो की विभिन्नता तो विद्यमान है ही, फिर भी यदि किन्ही को परलोक के अस्तित्व पर और कर्मवाद पर विश्वास न हो, तो उनके लिए भी स्थूल अहिसा, स्थूल सत्य, स्थूल अचौर्य, स्थूल ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि लाभदायी हैं ही। जिस लोकनीति या राज्यनीति मे इनका समावेश नही होता, वे लोकनीतियाँ तथा राजनीतियाँ इस लोक का सुख नही दे पाती। युद्ध, अविश्वास, चोरी, बलात्कार और विषम सामाजिक स्थिति आदि के दु ख और भय को दूर करने के लिए लोकनीति और राज्यनीति मे भी स्थूल अहिसा आदि की आवश्यकता है ही। अत जो प्राणी इहलौकिक सुख चाहते है, उनके लिए भी धर्मक्रिया आवश्यक है।

भगवान् महावीर ने अपना धर्म मुख्यत मोक्ष-प्राप्ति के लिए ही प्रकट किया और मोक्ष-प्राप्ति के लिए धर्म करने वालो को ही धार्मिक माना है, परन्तु भगवान् ने, जो लोग पारलौकिक या इहलौकिक भौतिक सुख चाहते हैं, उनको भी आह्वान किया है कि प्राणियो! जिस हिंसा आदि अधर्म से आप सुख पाना चाहते हो, वह आपको सुख नही दे सकता! अत आप धर्म को शरण आओ! वह आपको इच्छित सुख देगा!

मेरा पाठकों से आग्रह है कि—'वे आगामी चौथा आवश्यक का अध्ययन तो करे ही, साथ ही धर्म के वास्तविक उद्देश्य को समझकर धर्म को स्वीकार भी करे।'

यदि आप धर्म के वास्तविक उद्देश्य को न समझ सकें, तो भी आप चाहे पारलौकिक या इहलौकिक सुख के लिए सही,

मिथ्यात्व को दूर करता है। सम्यक्चारित्र राग-द्वेष को नष्ट करता है और सम्यक्तप कर्म-बन्धन को तोडता है। कर्म-बन्धन के सर्वथा क्षय से तत्काल आत्मा देह से पृथक् हो जाती है और उस दुःख मूल देह से पृथक् होकर अनत और एकांत सुखमय मोक्ष का प्राप्त कर लेती है।

इसीलिए जो भी प्राणी दुःख का नाश करके अनंत सुख और एकात सुख चाहते है, उनके लिए धर्म आवश्यक है। उसी धर्म का ही आगामी चौथे आवश्यक मे वर्णन किया जायेगा।

मोक्ष अनंत सुखमय कैसे है और एकात सुखमय कैसे है ?—यह बता देना अधिकत. वाणी से परे की बात है। फिर भी जिनेश्वरों ने उपमा आदि के द्वारा उसके सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रकाश दिया है। इतना होते हुए भी यदि किन्हीं को मोक्ष-सुख समझ मे न आवे और वे भौतिक सुख मे ही सुखानुभव करे, तो उनके लिए भी धर्म क्रिया लाभदायी ही है। क्योंकि वह ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म को दूर करके ज्ञान-शक्ति देती है। असाता वेदनीय को दूर करके विषय-सुख और मन-वचन-काया के सुख देती है। मोहनीय को मन्द करके पुरुषत्व देती है। अशुभ आयुष्य दूर करके शुभ और दीर्घ आयुष्य (जीवन) देती है। अशुभ नाम दूर करके श्रेष्ठ शरीर देती है। अशुभ गोत्र दूर करके धनादि-ऐश्वर्य प्रदान करती है और अन्तराय दूर करके ऐश्वर्यादि की प्राप्ति मे आने वाली बाधाओ को दूर करती है। धर्मक्रिया के प्रताप से आत्मा भावी जन्म मे इन्द्र और चक्रवर्ती आदि के सुख प्राप्त करती है। इस प्रकार जो प्राणी भौतिक सुख चाहते हैं, उनके लिए भी धर्म की क्रिया आवश्यक है।

यद्यपि हमारे सामने प्रत्यक्ष ही एक दूसरा तिर्यञ्च लोक और कर्मों के फल-रूप जीवो की विभिन्नता तो विद्यमान है ही, फिर भी यदि किन्ही को परलोक के अस्तित्व पर और कर्मवाद पर विश्वास न हो, तो उनके लिए भी स्थूल अहिसा, स्थूल सत्य, स्थूल अचौर्य, स्थूल ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि लाभदायी है ही। जिस लोकनीति या राज्यनीति मे इनका समावेश नही होता, वे लोकनीतियाँ तथा राजनीतियाँ इस लोक का सुख नही दे पाती। युद्ध, अविश्वास, चोरी, बलात्कार और विषम सामाजिक स्थिति आदि के दु ख और भय को दूर करने के लिए लोकनीति और राज्यनीति मे भी स्थूल अहिसा आदि की आवश्यकता है ही। अत जो प्राणी इहलोकिक सुख चाहते हैं, उनके लिए भी धर्मक्रिया आवश्यक है।

भगवान् महावीर ने अपना धर्म मुख्यत मोक्ष-प्राप्ति के लिए ही प्रकट किया और मोक्ष-प्राप्ति के लिए धर्म करने वालो को ही धार्मिक माना है, परन्तु भगवान् ने, जो लोग पारलौकिक या इहलौकिक भौतिक सुख चाहते हैं, उनको भी आह्वान किया है कि प्राणियो ! जिस हिंसा आदि अधर्म से आप सुख पाना चाहते हो, वह आपको सुख नही दे सकता ! अत आप धर्म को शरण आओ ! वह आपको इच्छित सुख देगा !

मेरा पाठको से आग्रह है कि—'वे आगामी चौथा आवश्यक का अध्ययन तो करे ही, साथ ही धर्म के वास्तविक उद्देश्य को समझकर धर्म को स्वीकार भी करे।'

यदि आप धर्म के वास्तविक उद्देश्य को न समझ सकें, तो भी आप चाहे पारलौकिक या इहलौकिक सुख के लिए सही,

२. अत्थागमे : अर्थ (रूप) आगम
३ तदुभयागमे : (सूत्र अर्थ) उभय (रूप) आगम

ऐसे तीन प्रकार आगम रूप ज्ञान के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउं

अतिचार पाठ

१. जं वाइद्ध : यदि व्याविद्ध पढा हो,
२. वच्चा-मेलियं : व्यत्ययाम्रेडित पढा हो,
३ हीणक्खरं : हीनाक्षर पढा हो,
४. अच्चक्खरं : अति अक्षर पढा हो,
५. पयहीणं : पदहीन पढा हो,
६. विणयहीणं : विनयहीन पढा हो,
७ जोग-हीण : योगहीन पढा हो,
८. घोस-हीणं : घोषहीन पढा हो,
९. सुट्ठु(ऽ)दिन्नं : सुष्ठु ? (न) दिया हो,
१०. दुट्ठु पडिच्छियं : दुष्ठु लिया हो,
११. अकाले कओ सज्झाओ . अकाल मे स्वाध्याय की हो,
१२. काले न कओ सज्झाओ : काल मे स्वाध्याय न की हो,
१३. असज्झाए सज्झाइयं : अस्वाध्याय मे स्वाध्याय की हो,
१४. सज्झाए न सज्झाइयं : स्वाध्याय मे स्वाध्याय न की हो,

भणतां : वाचना, पूछना और धर्म कथा करते हुए

गुणता विचारतां : परिवर्तना करते (फेरते) हुए तथा अनुप्रेक्षा (चिंतन) करते हुए,

ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषो की अविनय आशातना की हो, तो

प्रतिक्रमण पाठ

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'आगमे तिविहे' प्रश्नोत्तरी

प्र० . **आगम** किसे कहते हैं ?

उ० . जिससे जीवादि नव तत्वो का सम्यग्ज्ञान हो।

प्र० **सूत्रागम** किसे कहते है ?

उ० तीर्थंकरो ने अपने श्रीमुख से जो भाव कहे, उन्हे अपने कानों से सुनकर गणधरो ने जिन आचाराग आदि आगमो की रचना की, उस शब्दरूप आगम को।

प्र० **अर्थागम** किसे कहते है ?

उ० तीर्थंकरो ने अपने श्रीमुख से जो भाव प्रकट किये, उस भावरूप आगम को।

प्र० : **व्याविद्ध** पढना किसे कहते है ?

उ० सूत को तोडकर मणियो के बिखरने के समान,

आपकी जितनी रुचि हो, जैसी योग्यता हो और जैसी परिस्थिति हो, उतना ही सही, परन्तु धर्म अवश्य स्वीकार करें।

इसके साथ ही कुछ बाते और लिख दूं—१. जो धर्म के वास्तविक उद्देश्य को लेकर चलते हैं, वे भी मोक्षप्राप्ति के मध्यकाल मे पारलौकिक सुख भी अवश्य ही प्राप्त करते है तथा इहलोक मे भी प्राय उन्हे शान्ति उपलब्ध होती है। २ धर्म प्रारम्भ करते ही अज्ञान और राग-द्वेषजन्य दु ख मे तो तत्काल कमी आ जाती है, पर भौतिक सुख तत्काल उपलब्ध होना नियमित नही है, क्योकि जितने भी भौतिक सुख हैं, उनकी प्राप्ति के पुरुषार्थ मे प्राय. पहले अपनी भौतिक सुख की पूंजी लगानी पडती है और कालान्तर मे कही अधिक भौतिक-सुख मिलता है। अत भौतिक सुखद्रष्टा को धर्म को धैर्य के साथ पालना आवश्यक है। ३. यह गाँठ वाँध रख लेना चाहिए कि— यदि इस मानव-भव मे धर्माराधन नही किया, तो अन्य भवो मे धर्म प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। सम्पूर्ण चारित्र तो मानवभव से अन्य किसी योनि मे नही मिल सकता। देश चारित्र भी मानव (और कुछ पशु, जो प्राय पहले धर्म पाल चुके है, उन्हे छोडकर) अन्य को नहीं मिलता। सम्यग्ज्ञान व दर्शन भी सज्ञी पञ्चेन्द्रिय छोडकर अन्य को उपलब्ध नही होता। अतः धर्म मे थोडा भी प्रमाद करना श्रेयस्कर नही है।

सूक्त—१. अहिंसा संयम और तप रूप धर्म ही श्रेष्ठ मंगल है। जिसका मन भी धर्म मे सदा ही अनुरक्त रहता है, उसे (मनुष्य तो क्या) देव भी नमस्कार करते हैं। २. शुद्ध हृदय वाले प्राणी में ही धर्म स्थिर रहता ३. देह छोड़ दो, पर धर्म शासन को मत छोडो।

४. विषयभोग मे सतत मूढ बने हुए प्राणी धर्म को नही जान सकते ।

पाठ ६ छठा

चौथा आवश्यक

विधि : तीसरे आवश्यक की समाप्ति पर वदना करके 'पहला सामायिक, दूसरा चतुर्विंशतिस्तव तथा तीसरी वदना—ये तीन आवश्यक पूरे हुए, चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की आज्ञा है ।' कहकर चौथे आवश्यक की आज्ञा ले । आज्ञा लेकर 'श्रावक सूत्र' पढने वाले खडे-खडे निम्न 'आगमे तिविहे' से लेकर 'सलेखना' तक के १५ पाठ व्रत अश वाले पाठ छोडकर अतिचार और प्रतिक्रमण अश वाले पाठ पढे । 'श्रमणसूत्र' पढने वाले आगमे तिविहे से १२ वे अणुव्रत तक १४ पाठ सपूर्ण खडे-खडे कहे और सलेखना का पाठ बैठकर सम्पूर्ण कहे ।

४. 'आगमे तिविहे' 'ज्ञान का पाठ'

आगमे : आगम
तिविहे पण्णत्ते : तीन प्रकार का कहा है ।
तंजहा : वह इस प्रकार—
१. सुत्तागमे : सूत्र (रूप) आगम

२. अत्थागमे　　: अर्थ (रूप) आगम
३ तदुभयागमे　　: (सूत्र अर्थ) उभय (रूप) आगम

ऐसे तीन प्रकार आगम रूप ज्ञान के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउं

अतिचार पाठ

१. जं वाइद्ध　　: यदि व्याविद्ध पढा हो,
२. वच्चा-मेलियं　　. व्यत्ययाम्रेडित पढा हो,
३ हीणक्खरं　　: हीनाक्षर पढा हो,
४. अच्चक्खर　　: अति अक्षर पढा हो,
५. पयहीणं　　: पदहीन पढा हो,
६. विणयहीण　　: विनयहीन पढा हो,
७ जोग-हीणं　　: योगहीन पढा हो,
८. घोस-हीणं　　: घोषहीन पढा हो,
९. सुट्ठु(ऽ)दिण्ण　　: सुष्ठु ? (न) दिया हो,
१०. दुट्ठु पडिच्छियं　　: दुष्ठु लिया हो,
११. अकाले कओ सज्झाओ　　: अकाल मे स्वाध्याय की हो,
१२. काले न कओ सज्झाओ　　: काल मे स्वाध्याय न की हो,
१३. असज्झाए सज्झाइयं　　: अस्वाध्याय मे स्वाध्याय की हो,
१४. सज्झाए न सज्झाइयं　　: स्वाध्याय मे स्वाध्याय न की हो,

भणतां	: वाचना, पूछना और धर्म कथा करते हुए
गुणतां विचारतां	: परिवर्तना करते (फेरते) हुए तथा अनुप्रेक्षा (चिंतन) करते हुए,

ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों को अविनय आशातना की हो, तो

प्रतिक्रमण पाठ

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'आगमे तिविहे' प्रश्नोत्तरी

प्र० . **आगम** किसे कहते हैं ?

उ० : जिससे जीवादि नव तत्वो का सम्यग्ज्ञान हो।

प्र० · **सूत्रागम** किसे कहते हैं ?

उ० तीर्थंकरो ने अपने श्रीमुख से जो भाव कहे, उन्हे अपने कानों से सुनकर गणधरो ने जिन आचारांग आदि आगमो की रचना की, उस शब्दरूप आगम को।

प्र० **अर्थागम** किसे कहते है ?

उ० तीर्थंकरो ने अपने श्रीमुख से जो भाव प्रकट किये, उस भावरूप आगम को।

प्र० : **व्याविद्ध** पढना किसे कहते है ?

उ० . सूत को तोडकर मणियो के बिखरने के समान,

सूत्र के अक्षर, मात्रा, व्यञ्जन, अनुस्वार, पद, आलापक आदि उलट-पलटकर पढने को।

प्र० : **व्यत्यय** करके पढना किसे कहते है ?

उ० . सूत्रो मे भिन्न-भिन्न स्थानो पर आये हुए पाठो को एक स्थान पर लाकर पढने को, विरामादि लिये बिना पढ़ने को, अथवा अपनी बुद्धि से सूत्र के समान सूत्र बनाकर आचारांगादि सूत्र मे डालकर पढने को।

प्र० : **हीनाक्षर** पढना किसे कहते है ?

उ० : जैसे 'नमो आयरियाणं' के स्थान पर 'य' अक्षर कम करके 'नमो आरियाणं' पढने को।

प्र० : **अति अक्षर** पढना किसे कहते हैं ?

उ० : जैसे 'नमो उवज्झायाणं' मे 'रि' मिलाकर 'नमो उवज्झारियाणं' पढा हो।

प्र० : **पदहीन** (या अति करके) पढना किसे कहते हैं ?

उ० : जैसे 'नमो लोए सव्व साहूणं' मे 'लोए' पद कम करके 'नमो सव्व साहूणं' पढ़ने को।

प्र० · **ये पांचो किसके अतिचार हैं** ?

उ० : उच्चारण संबंधी अतिचार हैं।

प्र० : उच्चारण की अशुद्धि से क्या हानि हैं ?

उ० : कई बार १. अर्थ सर्वथा नष्ट हो जाता है। कई बार २ विपरीत अर्थ हो जाता है। कई बार ३. आवश्यक

अर्थ मे कमी रह जाती है। ४. कई बार अधिकता हो जाती है। ५ कई बार सत्य किन्तु अप्रासगिक अर्थ हो जाता है। इस प्रकार कई हानियाँ हैं। जैसे 'ससार' मे से एक बिन्दु कम बोलने पर ससार' 'स-सार' (सार सहित) हो जाता है या 'शास्त्र' मे से एक मात्रा कम कर देने से 'शास्त्र' 'शस्त्र' हो जाता है। अत उच्चारण अत्यन्त शुद्ध करना चाहिए।

प्र० उच्चारण शुद्धि के लिए क्या करना चाहिए ?

उ० उच्चारण शुद्धि के लिए १ सूत्र के एक-एक अक्षर, मात्रादि को ध्यान से पढना चाहिए, २ ध्यान से कठस्थ करना चाहिए और ३ ध्यान से फेरना चाहिए। ऐसा करने से उच्चारण प्राय. शुद्ध होता है।

प्र० **विनयहीन** पढना किसे कहते हैं ?

उ० ज्ञान और ज्ञान-दाता के प्रति १. ज्ञान लेने से पहले, २ ज्ञान लेते समय तथा ३. ज्ञान लेने के पीछे विनय (वदनादि) न करके या सम्यग् विनय न करके पढने को।

प्र० **योगहीन** पढना किसे कहते हैं ?

उ० १. मन लगाकर न पढने को, कायोत्सर्ग, २ अति-रात्रि आदि कारणो को छोडकर मन-मन मे पढने को, अनादरपूर्ण स्वर मे पढने को व ३. काया को स्थिर न रखकर पढने को।

प्र० **घोषहीन** पढना किसे कहते हैं ?

उ० ज्ञानदाता जैसा मन्द स्वर, मध्यम स्वर, उच्च स्वर से उच्चारण करावें या जिस छन्द-पद्धति से उच्चारण करावें, वैसा उच्चारण करके नही पढने को।

प्र० ये तीनों किसके अतिचार हैं ?

उ० . पढने की अविधि संबधी अतिचार हैं।

प्र० . इनसे क्या हानि होती है ?

उ० विनयहीनता से प्राप्त ज्ञान यथासमय काम नहीं आता—सफल नही होता, स्तुति-वदनादि क्रियाएँ सफल नहीं होती। योग-हीनता से ज्ञान की प्राप्ति शीघ्र नहो होती। शुद्ध आवर्तन नही होता, आलोचना-प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ सफल नही होतीं। घोष-हीनता से सूत्र का आत्मा पर पूर्ण प्रभाव नही पड़ता। अतः इन तीनो अतिचारो को दूर करना चाहिए और विनय के साथ योगो को एकाग्र करके यथाघोप अध्ययन करना चाहिए।

प्र० : सुप्ठु ! (न) देना किसे कहते हैं ?

उ० शिष्य की ग्रहण-स्मरण आदि की जितनी शक्ति हो, उससे उसे न्यूनाधिक ज्ञान देने को, शुद्ध भाव से न देने को, अपात्र को ज्ञान देने को, पात्र को द्वेष आदि से न देने को।

प्र० दुष्ठु ग्रहण करना किसे कहते हैं ?

उ० . अपनी ग्रहण-स्मरण आदि की जितनी शक्ति हो, उससे न्यूनाधिक ज्ञान लेने को, शुद्ध भाव से न लेने को, कुगुरु से लेने को, सुगुरु से द्वेपादि से न लेने को।

प्र० इनसे क्या हानि होती है ?

उ० : शक्ति से कम ज्ञान लेने से प्राप्त ज्ञान-शक्ति व्यर्थ जाती है। अधिक लेने से उस ज्ञान का पाचन नही होता। अपात्र को ज्ञान देने से सर्प को दूध पिलाने के समान

ज्ञान का दुरुपयोग होता है। कुगुरु से ज्ञान लेने मे स्वच्छ जल अशुद्ध पात्र से भर कर पीने के समान हानि होती है तथा द्वेष बुद्धि से ज्ञान न देने-लेने से सुगुरु और सुपात्र की आशातना होती है। अत ये दोनो अतिचार त्याज्य हैं। इन अतिचारो को त्याग कर यथा शक्ति सुगुरु से शुद्ध भाव से ज्ञान लेना चाहिए तथा सुपात्र को यथा शक्ति शुद्ध भाव से ज्ञान देना चाहिए।

प्र० : **अकाल स्वाध्याय** किसे कहते हैं ?

उ० जिस काल में (चार सध्याओ मे) सूत्र स्वाध्याय नही करनी चाहिए या जो सूत्र जिस काल (दिन-रात्रि के दूसरे-तीसरे प्रहर में) नही पढ़ना चाहिए, उस काल मे स्वाध्याय करने को।

प्र० . अकाल स्वाध्याय और काल अस्वाध्याय से क्या हानि है ?

उ जैसे जो राग या रागिनी जिस काल में गाना चाहिए, उससे भिन्न काल मे गाने से अहित होता है, वैसे ही अकाल स्वाध्याय से अहित होता है तथा यथाकाल स्वाध्याय न करने से ज्ञान मे हानि तथा अव्यवस्थितता का दोष उत्पन्न होता है। इसलिए ये अतिचार भी वर्ज्य हैं। इन अतिचारो का वर्जन करके यथा समय व्यवस्थित रीति से स्वाध्याय करना चाहिए।

प्र० : **अस्वाध्याय स्वाध्याय** किसे कहते है ?

उ० मृतदेहादिक अशुचि के क्षेत्र मे तथा चन्द्रग्रहणादिक विषम समय मे स्वाध्याय करने को।

प्र० . अस्वाध्याय मे स्वाध्याय और स्वाध्याय मे अस्वाध्याय से क्या हानि है ?

उ० : अशुद्धि आदि मे स्वाध्याय-करने से ज्ञान के प्रति अनादर होता है, लोकनिन्दा होती है। विषम समय मे स्वाध्याय से देवकोपादि हानि होती है। अत ये अतिचार भी हेय हैं।

प्र० : 'स्वाध्याय करूँगा' इत्यादि व्रत-प्रत्याख्यान लिए बिना 'काल मे स्वाध्याय न किया हो' आदि अतिचार लगते ही नही, तब उनका **प्रतिक्रमण क्यों** किया जाय ?

उ० : प्रतिक्रमण केवल अतिचार-शुद्धि के लिए ही नही, वरन् अतिचारो के ज्ञान, उनके सम्बन्ध मे शुद्ध श्रद्धा, उन्हे टालने की भावना आदि के लिए भी किया जाता है—यह प्रवेश प्रश्नोत्तरी मे विस्तार से बताया जा चुका है। मुख्य रूप से यह पुन दुहराया जाता है कि जैसे 'मैं चोरी नही करूँगा'—इस व्रत को लेने पर, जैसे चोरी करने से पाप लगता है, वैसे ही चोरी का व्रत न लेने वाले को भी चोरी करने पर पाप लगता ही है—भले ही वह व्रत के अतिचार रूप से न लगे। वह पाप से मुक्त नही रहता। अतः जैसे व्रत-धारी और अव्रती दोनो को चोरी के पाप का प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, वैसे ही स्वाध्याय आदि का नियम न लेने वाले को भी कालस्वाध्याय आदि न करने का प्रतिक्रमण करना ही चाहिये। क्योकि उसे भी काल-स्वाध्याय न करने आदि का पाप लगता ही है। यह उत्तर उन सभी अतिचारो के लिए समझना चाहिए, जिनके सम्बन्ध मे उपर्युक्त प्रश्न उठता हो।

प्रत्याख्यान—

मैं नित्य ········ सूत्र ············ अर्थ ······ स्तोक (थोकडा) कंठस्थ करूँगा तथा ······ ·· सूत्र ·········· अर्थ ······ स्तोक

थोकड़ा की स्वाध्याय करूँगा। ……… समय ज्ञानियो की उपासना सेवा करूँगा।

सम्यग्ज्ञान निबंध

१. सूक्त : '१. पढमं नाण तओ दया' पहले सम्यग्ज्ञान होने पर ही पीछे सम्यक्चारित्र आ सकता है, पहले सम्यग्ज्ञान आने पर पीछे सम्यक्चारित्र अवश्य आयेगा। —दशवै०। २. जैसे सूत सहित सूई गिर जाने पर भी नही गुमती है, वैसे ही सम्यग्ज्ञान आकर चले जाने पर भी जीव ससार मे भटकता नही है (एक दिन पुन. सम्यग्ज्ञान दर्शन व चारित्र प्राप्त कर मोक्ष मे चला जाता है)। —उत्तरा०। ३. ज्ञान अंधे के लिए आँख के समान और नेत्रवाले के लिए सूर्य-प्रकाश के समान है। —उत्तरा०।

२. उद्देश्य : अज्ञान (ज्ञानाभाव और मिथ्याज्ञान) को नष्ट करके सम्यग्ज्ञान का उदय करना।

३. स्थान : सभी दुखो का आदि मूल कारण अज्ञान है, अत उसको नष्ट करना सबसे पहले आवश्यक है। इसलिए उसके नाशक सम्यग्ज्ञान को प्रथम स्थान दिया है। सूक्त मे दी गई ज्ञान की उपयोगिताओ के कारण भी ज्ञान को प्रथम स्थान दिया है।

४ फल : सम्यग्ज्ञान से नव तत्वो का ज्ञान होता है। १. जीव और २. अजीव तत्व के ज्ञान से आत्मा को अमर, देह को नश्वर, देह-आत्मा को पृथक् और देहात्म सयोग को दु ख का कारण समझ कर पुरुष जन्म, जरा, व्याधि और मरणादि के दु.ख मे शान्त रहता है। ३. पुण्य तत्व के ज्ञान से पुण्य को

क्षणस्थायी, भौतिक तथा खुजाल के समान अवास्तविक सुख रूप जानकर पुरुष पुण्य-फल मे राग नही करता। ४ पाप तत्व के ज्ञान से पाप को क्षणस्थायी तथा स्वकृत समझकर पुरुष खेद और दुःख देनेवाले निमित्तो पर द्वेष नही करता। ५ अज्ञान, मिथ्यात्व और रागद्वेष (अव्रत, प्रमाद, कषाय) को दुःख का कारण समझ कर पुरुष इन से हटता है। ६ आश्रव के ज्ञान से सवर के ज्ञान से सम्यक्त्वज्ञान और वैराग्य (व्रत अप्रमाद, अकषाय) को मोक्ष का कारण समझकर पुरुष ज्ञान, श्रद्धा व वैराग्य को अपनाता है। ७ निर्जरा के ज्ञान से आत्मा के साथ कर्म के सयोग को नष्ट करने के उपायो को जानकर पुरुष अनशन, पूर्व के पापो का पश्चात्ताप और स्वाध्यायादि कार्यो को अपनाता है। ८ ९ बध-मोक्ष के ज्ञान से अपनी वर्तमान बध दशा को जानकर पुरुष मोक्ष-प्राप्ति की ओर सन्मुख होता है। भवान्तर मे उस फल के साथ तीक्ष्ण बुद्धि, चिरस्मरण शक्ति, शीघ्र ग्रहणशीलता आदि प्राप्त होती है।

५. कर्त्तव्य . विनय, योगो की एकाग्रता, गुरु-चरण से ज्ञान-प्राप्ति, ज्ञान-प्राप्ति मे अनालस्य व अप्रमाद, ज्ञान-दान मे उदारता, काल और स्वाध्याय मे नियमित स्वाध्याय, शुद्ध उच्चारण, ज्ञान का पुन पुन. आवर्तन, अनुप्रेक्षा आदि।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करना। 'मुझे कब केवल ज्ञान होगा ?' यह मनोरथ करना, ज्ञान की अपूर्णता का खेद करना, अज्ञान मे अब तक चतुर्गति मे पाये हुए दुःख का विचार करना, ज्ञान के लिए सतत जागृत रहने वाले श्री गौतम गणधर आदि के चरित्र पर ध्यान देना।

पाठ ७ सातवाँ

५ 'अरिहंतो-महदेवो' दर्शन (सम्यक्त्व) का पाठ

(१. अरिहंतो महदेवो	: (अरिहन्त मेरे देव है।
जावज्जीवाए	: (और) जब तक जीवन है
२. सुसाहुणो गुरुणो	: सच्चे साधु गुरु है।
जिण पण्णत्त	: अरिहत द्वारा कहा हुआ
तत्त	: तत्व (उपदेश, धर्म) है।
इअ सम्मत्त	: इस प्रकार सम्यक्त्व
मए गहिय) ॥१॥	: मैने ग्रहण की है।)
१ परमत्थ	परमार्थ का (नव तत्वो का)
सथवो वा	: सस्तव (ज्ञान) करना
२. सुदिट्ठ-परमत्थ	: परमार्थ (नव तत्व) के अच्छे जानकारो की
सेवणा वावि	: सेवा (प्रशसा-परिचय) करना
३ वावण्ण	: व्यापन्न (सम्यक्त्व भृष्ट) और
४ कुदसण	: कुदर्शन (अन्यमति) की
वज्जणा य	: सगति (प्रशसा-परिचय) वर्जना
सम्मत्त	: ये चार कार्य सम्यक्त्व के
सद्दहणा ॥२॥	: श्रद्धान (दर्शक, उत्पादक व रक्षक) है।

अतिचार पाठ

इअ सम्मत्तस्स	: इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय मे

पंच अइयारा पेयाला	: (पाँच प्रधान अतिचार
जाणियव्वा	: जो जानने योग्य हैं, किन्तु
न समायरियव्वा	: आचरण करने योग्य नही है।
तंजहा	: वे इस प्रकार हैं—उनमे से)
ते आलोउं	: जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ—
१. संका	: श्री जिन-वचन मे शंका की हो,
२. कंखा	: पर-दर्शन की आकाक्षा की हो,
३. वितिगिच्छा	. धर्म के फल में संदेह किया हो, (या त्याग-वृत्ति के कारण शरीर-वस्त्र-पात्र आदि मलिन देख कर संत-सतियो की घृणा की हो)
४. परपासंड-पसंसा	: पर-पाखण्डी (अन्य मती) की प्रशंसा की हो,
५. परपासंड-संथवो	· पर-पाखण्डी का परिचय किया हो,

प्रतिक्रमण पाठ

जो मे देवसिओ	: मेरे सम्यक्त्व-रूप रत्न पर (दिन
अइयारो कओ	: सम्बन्धी) मिथ्यात्व-रूपी रज मैल लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'अरिहन्तो महदेवो' प्रश्नोत्तरी

प्र० . **तत्त्वज्ञान और तत्त्वज्ञानियो की सेवा क्यों** करनी चाहिए ?

उ० : इसलिए कि ये दोनो बोल १. नूतन ज्ञान-प्राप्ति, २ प्राचीन सदेह-निवारण, ३ सत्यासत्य निर्णय, ४.अतिचार-शुद्धि

और ५ नव प्रेरणा आदि करके हमारे सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को दृढ, शुद्ध और घन बनाते है।

प्र० : सम्यक्त्व-भ्रष्ट की और अन्यमती की संगति आदि क्यों छोड़नी चाहिए ?

उ० : इसलिए कि—'ये दोनों बोल सम्यग्ज्ञानादि की हानि को रोकते है, क्योंकि जो स्वय सम्यक्त्वादि से भ्रष्ट होता है, उसकी सगति करने पर वह दूसरों को भी सम्यक्त्वादि से गिराता है और जिसकी मिथ्यादृष्टि होती है, उसकी सगत्ति करने पर वह दूसरो को भी मिथ्यादृष्टि बनाता है।

प्र० : क्या इनका परिचय सबको छोडना चाहिए ?

उ० : नही, जो ज्ञानादि में परिपक्व हो, वह सम्यकत्वादि मे लाने के लिए भ्रष्ट और मिथ्यात्वी को अपने परिचय मे लावे, तो कोई बाधा नही है।

प्र० : जिन-वचन में शंका क्यों होती है और उसे कैसे दूर करनी चाहिये ?

उ० : श्री जिन-वचन में कई स्थानो पर सूक्ष्म तत्वों का विवेचन हुआ है, कई स्थानो पर नय और निक्षेप के आधार पर वर्णन हुआ है। वह स्थूल बुद्धि से समझ में न आने के कारण शका हो जाती है कि—'ये वचन सत्य कैसे हो सकते हैं।' तब अरिहतो के केवल ज्ञान और वीतरागता का विचार करके तथा अपनी बुद्धि की मन्दता का विचार करके ऐसी शका दूर करनी चाहिये।

प्र० : क्या जिज्ञासा-रूप शका अतिचार है ?

उ० : नही। पर हाँ, उसका भी ज्ञानियो से शीघ्र

समाधान कर लेना आवश्यक है, अन्यथा वह जिज्ञासा-रूप शंका भी अतिचार-रूप शंका बन सकती है।

प्र० : परमत ग्रहण की इच्छा क्यों होती है ?

उ० : अन्यमतियो के तप-त्याग, आडंबर-चमत्कार, पूजा आदि देखकर तथा उनकी कथा-विवेचना आदि सुनकर परमत ग्रहण करने की आकांक्षा होती है।

प्र० : तप-त्याग को देखकर तप-त्याग की इच्छा होना अतिचार क्यो ?

उ० : उनके तप-त्यागादि को देखकर यह इच्छा होना कि—'जिन्हें अपूर्ण, अशुद्धिमिश्रित धर्म मिला है, वे भी इहलौकिक भौतिक सुख छोडकर आत्मा के लिए, पारलौकिक सुख के लिए (या राष्ट्र आदि के) लिए इतना तप-त्याग करते हैं, तो हमें पूर्ण और शुद्ध धर्म मिला, 'हम में तप-त्यागादि कितना होना चाहिए ?' ऐसे विचार अतिचार नही हैं। पर उन्हे देखकर, मिले हुए पूर्ण और शुद्ध धर्म को छोडकर अपूर्ण व अशुद्ध धर्म ग्रहण करने की इच्छा करना, अतिचार है।

प्र० : जब अन्यमत में भी तप-त्यागादि कुछ गुण हैं, तब उसकी प्रशसा करना अतिचार क्यो ?

उ० : अन्यमत में रही अपूर्णता और अशुद्धता को बतलाने के साथ यदि अन्यमतो के गुणो को भी कहा जाय, तो अतिचार नही है, पर अन्यमत की ऐसी प्रशसा करना, जिससे सुननेवाला पूर्ण और शुद्ध धर्म से हटकर हानि प्राप्त करे, वह अतिचार है।

प्रत्याख्यान :

मैं नित्य .... नमस्कार मंत्र ... ... माला ... . आनुपूर्वी ...... मांगलिक .. वार गिनूंगा। नित्य उठते ही भावपूर्वक देव को ... गुरु को ... वार वंदना करूँगा।

जानकारी, शरीर मे सुखशाता तथा अन्य अनुकूलता के रहते हुए, जहाँ भी रहूँ, उस ग्राम, नगर मे विराजित साधु साध्वीजी के प्रतिदिन या मास मे .... वार दर्शन करूँगा।

सर्वथा/ .... व्यसन सेवन नही करूँगा। सर्वथा/ ...... रात्रि-भोजन नही करूँगा। सर्वथा/ ..... उपरांत अनन्तकाय नही खाऊँगा।

देवाभियोगादि छह आगारों को छोड कर अन्यमती देव, गुरु तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्यमती बने हुए जैनी की संगति नही करूँगा।

सम्यग्दर्शन निबंध

१. सूक्त : १. **सद्धा परम दुल्लहा**, (कदाचित् सम्यग्ज्ञान सुनने को मिल सकता है, पर उस पर) श्रद्धा होना परम दुर्लभ है—उत्तरा०। २ जिसे सम्यग्दर्शन (श्रद्धा) नही है, उसका ज्ञान 'सम्यग्ज्ञान' नही है—नन्दी०। ३ सम्यग्दर्शन, चारित्र धर्म का मूल है, द्वार है, नीव है, पृथ्वी है, भाजन और पेटी है। ४. सम्यग्दर्शन से ससार परित्त (सीमित) हो जाता है—प्रज्ञा०।

२ **उद्देश्य :** मिथ्यात्व (श्रद्धा का अभाव और मिथ्याश्रद्धा) को नष्ट करके सम्यक्त्व का उदय करना।

३. **स्थान :** अज्ञान के पश्चात् मिथ्यात्व को नष्ट करना आवश्यक है। इसलिए उसके नाशक सम्यग्दर्शन को मोक्ष के

उपायो मे दूसरा स्थान दिया गया है। उक्त सूक्तो के अनुसार यद्यपि सम्यग्दर्शन ही पहला है, पर व्यावहारिक दृष्टि से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और रक्षा सम्यग्ज्ञान से होती है, अत सम्यग्ज्ञान को पहला स्थान देकर सम्यग्दर्शन को दूसरा स्थान दिया है।

४. **फल** . देव, गुरु, धर्म सबधी दृष्टि की शुद्धि होती है। सम सवेगादि सद्गुणो की प्राप्ति होती है। श्रुत धर्म व देव गुरु के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। तत्वज्ञान मे नि शकता और धर्म-क्रिया मे धैर्य उत्पन्न होता है। स्याद्वादपूर्ण अनेकात दृष्टि उपलब्ध होती है। धार्मिक मिथ्या अभिनिवेश दूर होता है। भवान्तर मे उक्त फल अधिक पुष्ट और दृढ होता है।

५. **कर्त्तव्य :** सम्यक्त्व की पुष्टि के लिए परमार्थ सस्तवादि ४ बोल करना। सम्यक्त्व शुद्धि के लिए शकादि ५ बोल वर्जना। सम्यक्त्व रक्षा के लिए वदनादि छह यतना पालना। सम्यक्त्व टिकाव के लिए 'जीव है' आदि छह बोल पर चिन्तन करना। सम्यक्त्वियो की वृद्धि के लिए धर्म-कथादि आठ प्रभावना करना।

६. **भावना :** सूक्तादि पर विचार करना। 'मुझे क्षायिक सम्यक्त्व कब प्राप्त होगी ?' यह मनोरथ करना, श्रद्धा की कमी का खेद करना। मिथ्यात्व के दु ख और मिथ्यात्व सहित क्रिया की विफलता का विचार करना। सम्यक्त्व भ्रष्ट 'नद मणिकार' आदि के तथा सम्यक्त्वपालक 'श्रेणिक', 'सुलसा' आदि के चरित्र पर ध्यान देना।

❖

पाठ ८ आठवाँ

९. 'अहिंसा अणुव्रत' व्रत पाठ

पहला अणुव्रत	. पहला अणुव्रत
'थूलाओ	: स्थूल (बडी)
पाणाइवायाओ	: प्राणातिपात (जीव-हिंसा से)
वेरमणं[1]	: विरमण (विरति करना, हटना)
त्रस जीव	: दु ख से बचने के लिए चलने फिरने वाले
बेइन्दिय	: द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रिय वाले),
तेइन्दिय	: त्रीन्द्रिय (तीन इन्द्रिय वाले),
चउरिन्दिय	: चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रिय वाले),
पचिन्दिय	: पञ्चेन्द्रिय (पाँच इन्द्रिय वाले इन्हे)

१ जान के पहिचान के, २. संकल्प करके उसमे १ सगे सम्बन्धी तथा स्व शरीर के भीतर मे पीड़ाकारी तथा ३. सापराधी को छोड़ निरपराधी को, ४. आकुट्टो से हनने का पच्चक्खाण (करता हूँ)।

जावज्जीवाए	: जब तक जीवन है
दुविह तिविहेणं	: दो करण और तीन योग से
१. न करेमि	: हिंसा न करूँ
२. न कारवेमि	: तथा न कराऊँ (इन दो करणो से)
१. मणसा २. वयसा	: मन से, वचन से (तथा)

---

[1] 'थूलगं भन्ते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि' इतना और ।

३. कायसा†   : काया से (इन तीन योगो से)

अतिचार पाठ

इसे पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पच अइयारा पयाला जाणियव्वा न समायरिव्वा त जहा—ते आलोउ—

पहला स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—

१. बधे   : रोपवश गाढ बन्धन बाँधा हो,
२. वहे   : गाढ घाव घाला हो,
३. छविच्छेए   अवयव (चाम आदि का) छेद किया हो,
४. अइभारे   : अधिक भार भरा हो,
५. भत्तपाण-विच्छेए   : भात पानी का विच्छेद किया हो, (खाने-पीने मे रुकावट डाली हो)

प्रतिक्रमण पाठ

जो मे देवसिओ अइयारो कओ

इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'अहिंसा अणुव्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० : सूक्ष्म प्राणातिपात किसे कहते हैं ?

---

†तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।' इतना और ।

उ० स्थावर जीवो की हिसा को।

प्र० **प्राणातिपात** किसे कहते है ?

उ० : जीव को मिले हुए प्राणो के वियोग करने को।

प्र० : जीव-हिसा के लिए 'प्राणातिपात' शब्द का प्रयोग क्यों किया ?

उ० : 'जीव नित्य है। वह न जन्मता, न मरता है'। इस सिद्धान्त को बताने के लिए।

प्र० जीव का **जन्म-मरण किस अपेक्षा से** माना गया है ?

उ० ' प्राणों के सयोग से नये आरभ होने वाले भव की अपेक्षा जन्म माना जाता है और प्राणों के वियोग से होने वाले पुराने भव की समाप्ति की अपेक्षा मरण माना जाता है।

प्र० जीव अपने कर्मानुसार मरते और दु ख पाते हैं, फिर मारने वाले को **पाप क्यों** लगता है ?

उ० . १. मारने की दुष्ट भावना और २ मारने की दुष्ट प्रवृत्ति से।

प्र० : श्रावक त्रसजीव की हिंसा का त्याग क्यों करता है ?

उ० ' उस हिंसा से पाप अधिक होता है, इसलिए।

प्र० : त्रसहिसा से **पाप अधिक क्यो** होता है।

उ० . १. त्रसजीवो का जीवत्व प्रत्यक्ष है तथा वे मरते हुए बचने का प्रयास करते है। ऐसी दशा में जीवत्व प्रत्यक्ष होते हुए बलात् मारने से क्रूरता अधिक आती है, इसलिए तथा २. असख्य-अनत स्थावर जीवो को जितने पुण्य से असख्य

अनत प्राण मिलते है, उससे भी कहीं अधिक पुण्य कमाने पर एक त्रसजीव को एक जिह्वा वचन आदि प्राण मिलता है। उस अनत पुण्य से प्राप्त प्राण का वियोग होता है, इसलिए।

प्र० : जान के पहचान के हिंसा करना किसे कहते है ?

उ० . 'जहाँ पर या जिस पर मै प्रहार कर रहा हूँ, वहाँ या वह त्रस जीव है ।' यह जानते हुए हिंसा करना।

प्र० सकल्प करके हिंसा करना किसे कहते हैं ?

उ० जैसे 'मै इस अन्य धनी राज्य को जीतूँ, इस सबल मनुष्य को मारूँ, इन सिंह, हरिण आदि का शिकार करूँ, सर्प, चूहे, मच्छर आदि का नाश करूँ, मछली, अडे आदि खाऊँ ।' ऐसा विचार करके हिंसा करना।

प्र० : शरीर के भीतर मे पीड़ाकारी का उदाहरण दीजिए।

उ० ' जैसे कृमि नेहरू आदि।

प्र० : श्रावक संकल्पी हिंसा का ही त्याग क्यों करता है ?

उ० . क्योकि अन्य आरम्भ करते हुए श्रावक की मारने की बुद्धि न रहते हुए उसमे त्रस जीवो की हिंसा हो जाती है। जैसे पृथ्वीकाय खोदते हुए भूमिगत त्रस जीवों की हिंसा हो जाती है, वाहन पर चलते हुए वाहन से कीडी आदि मर जाती है। ऐसी आरम्भी त्रस-हिंसा का श्रावक त्याग करने में समर्थ नही होता ।

प्र० ' सापराधी किसे कहते हैं ?

उ० : जैसे आक्रमणकारी शत्रु, सिंह, सर्प आदि को

धनापहारी चोर, डाकू आदि को, शील को लूटने वाले, जार आदि को या उचित और आवश्यक राष्ट्रनीति, राजनीति, समाजनीति आदि का भग करने वाले राष्ट्रद्रोही आदि को।

प्र० : श्रावक **सापराधी की हिंसा क्यों नहीं छोड़** देता ?

उ० : १. जिसमे निरपराध त्रस जीवो की हिंसा हो, इस प्रकार नयी अविद्यमान स्त्री, सपत्ति, भोगोपभोग सामग्री आदि का त्याग-भाव श्रावक मे आ जाता है। परन्तु पुरानी विद्यमान वस्तुओ का त्याग-भाव उसमे नही आ पाता, अतः उसे सापराधियो पर मारने का द्वेष आ जाता है तथा २ लोक मे रहने के कारण उस पर आश्रितो की रक्षा का भार आदि भी रहता है, इसलिए वह सापराधी हिंसा नही छोड़ पाता।

प्र० **निरपराध** किसे कहते हैं ?

उ० . जैसे आक्रमण न करने वाले, शांति-प्रेमी मनुष्य, राज्य आदि को, धन शीलादि को न लूटने वाले साहूकार, सुशील आदि को, अपने मार्ग से जाते हुए सिंह, सर्प आदि को, किसी को कष्ट न पहुँचाने वाले गाय, हरिण, तीतर, मछली अण्डे आदि को।

प्र० **'आकुट्टी'** मे मारना किसे कहते है ?

उ० . 'यह जीवित भी रहेगा या नही।' इसका ध्यान न रखते हुए कषायवश निर्दयतापूर्वक मारने को।

प्र० : अहिंसा अणुव्रत क्या यावज्जीवन के लिए ही लिया जा सकता है, न्यूनाधिक समय के लिए नही लिया जा सकता ?

उ० : अधिक समय के लिए तो लिया नही जा सकता, क्योंकि आगामी जन्म कहाँ किस रूप मे होगा और वहाँ व्रत-पालन होगा या नहीं ? यह जान लेना असम्भव है। इसके अतिरिक्त कही भी जन्म से ही व्रत-पालन सम्भव भी नही है। हाँ, जो यावज्जीवन व्रत लेने मे कठिनाई अनुभव करते है (यद्यपि लेना कठिन नही है) या जो पहले कुछ समय व्रत निभा कर फिर यावज्जीवन के लिए व्रत लेना चाहते हैं, वे दस वर्ष, पाँच वर्ष, वर्ष आदि कम समय के लिए व्रत अवश्य ले सकते हैं। यह उत्तर प्रारम्भ के आठो व्रतो के लिए समझना चाहिए।

प्र० : अहिंसा अणुव्रत का **पालन कितने करण योग से** होता है ?

उ० : यद्यपि अहिसा का अणुव्रत दो करण तीन योग से लिया जाता है, पर इसका तीन करण तीन योग से पालन का विवेक रखना चाहिए, अर्थात् कोई निरपराध त्रस जीव को सकल्पपूर्वक मारे, तो उसका मन-वचन-काय से अनुमोदन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य भी दो करण तीन योग के व्रतो को तीन करण तीन योग से पालने का ध्यान रखना चाहिए।

प्र० **'गाढ़ बन्धन'** किसे कहते है ?

उ० : जो गले आदि का बन्धन पशु, मनुष्यादि के लिए फाँसी-रूप वन जाय या अग्नि, बाढ आदि का भय उपस्थित होने पर अन्य पुरुष उसे खोल न सके, ऐसे बन्धन को।

प्र० **'वधे'** के अन्य प्रकार बताइए।

उ० : घूंसा, लात, चावुक, आर आदि से मर्म स्थान आदि पर प्रहार करना।

प्र० 'छविच्छेद' अतिचार कब लगता है ?

उ० रोगादि कारणो के न होते हुए सजीव चमडी छेदने पर, डाम देने पर तथा अवयवादि काटने पर।

प्र० अतिभार किसे कहते हैं ?

उ० जो पशु जितने समय तक जितना भार ढो सकता हो, उससे भी अधिक समय तक उस पर भार लादना या जो मनुष्य जितने समय तक जितना कार्य कर सकता हो, उससे भी अधिक समय तक उससे कार्य कराना।

प्र० भत्त-पाण-विच्छेए अतिचार कब लगता है ?

उ० रोगादि कारणो के न होते हुए यथा समय पूरा भोजन-पान न देने पर।

प्र० 'कषायवश गाढ बन्धन बाँधना' आदि अतिचार हैं या अनाचार ?

उ० कुछ तीव्र (प्रत्याख्यानावरणीय की सीमा तक) कषायवश गाढ बन्धन बाँधना आदि **अतिचार** है तथा अति तीव्र (अप्रत्याख्यान की सीमा मे जाने वाली) कषायवश गाढ बन्धन आदि **अनाचार** है। अतः श्रावक को तीव्र कषाय से बचना चाहिए। पर जब तक उसके तीव्र कषाय का व्यवहार से निर्णय न हो, तब तक उसे अतिचार ही कहा जाता है, अनाचार नही।

यह उत्तर सहसाभ्याख्यान आदि उन सभी अतिचारों के लिए समझना चाहिए, जो अतिचार कषायवश होकर लगाये जाते हो।

निबंध

१. **सूक्त : १. एयं खु नाणिणो सारं, 'जं न हिंसइ कं च णं।'** ज्ञान का सार यही है कि 'किसी की हिंसा न करे।'—सूत्र०। २ सब जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नही चाहता, इसलिए प्राणि-वध घोर पाप है।—दशवै०। ३. सब जीवो को अपने समान समझो।

२. **उद्देश्य :** प्राणि-हिंसा को रोकना और प्राणि-रक्षा करना।

३. **स्थान :** मोक्ष प्राप्ति के लिए अज्ञान और मिथ्यात्व नष्ट होने के पश्चात् राग-द्वेष (अव्रत, प्रमाद, कषाय) नष्ट होना आवश्यक है। राग-द्वेष का विनाश करना ही सम्यक्चारित्र का उद्देश्य है, इसलिए सम्यक्चारित्र को तीसरा स्थान दिया है।

जब प्राणी को प्राण, स्त्री, और परिग्रह के प्रति तीव्र राग उत्पन्न होता है, तब वह उनकी प्राप्ति और रक्षा-रूप अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए दूसरे के मूल्यवान प्राण तक लूट लेता है तथा उनकी प्राप्ति व रक्षा मे बाधा और हानि पहुँचाने वालो के प्रति तीव्र द्वेष करके उनके भी प्राण लूट लेता है। यह प्राणो की लूट जहाँ प्राणी के तीव्र राग-द्वेष का पोषण करती है, वहाँ वह दूसरो के लिए भी पूर्ण रूप से महान् दु ख उत्पन्न कर देती है। अतः चारित्र मे दोनो के लिए हानिप्रद प्राणि-हिंसा को रोकना मुख्य है। इसलिए चारित्र मे अहिंसा को सबसे पहला स्थान दिया है। 'हिंसा छोडने योग्य है।' यह शीघ्र ध्यान मे आ जाता है, इसलिए भी हिंसा-विरति को प्रथम स्थान दिया है।

४. **फल :** स्थूल हिंसा सम्बन्धी संकल्प-विकल्प से मुक्ति, परस्पर वैर का त्याग, युद्ध-शांति, सह-अस्तित्व, निर्भयता, मित्रता, सहयोग, भवान्तर मे अहिंसक स्वभाव, शुभ दीर्घायुष्य, सर्वत्र जीवन-रक्षा, विष शस्त्र, मंत्र आदि का अप्रभाव। अन्त मे सदा के लिए अमरत्व, मोक्ष-प्राप्ति।

५. **कर्त्तव्य :** द्रव्य क्षेत्र, काल-भाव के अनुसार मरते हुए प्राणी की रक्षा करना, सापराधी अपराध-वृत्ति त्यागे, शत्रु मित्र बने—इसका पुरुषार्थ करना, अनाक्रामक सर्प, सिंहादि को न मारना, आक्रामक को मारे बिना काम चले—ऐसा विवेक रखना, आश्रितो के अपराध पर तीव्र कषाय न करना, गुरुदण्ड न देना, निर्भय रहना इत्यादि।

६. **भावना :** अहिंसा की पुष्टि के लिए सूक्तादि पर विचार करना। एकेन्द्रिय की हिंसा भी कब छूटेगी? यह मनोरथ करना। अहिंसा की अपूर्णता पर खेद करना। हिंसा के कारण, दु ख राने पाले मृगालोढादि का तथा अहिंसा के पालक नेमिनाथ, महावीर, मेघमुनि, धर्मरुचि आदि के चरित्र पर ध्यान देना।

पाठ ९ नववाँ

७. 'सत्य अणुव्रत' व्रत पाठ

दूसरा अणुव्रत	दूसरा अणुव्रत
'थूलाओ	: स्थूल (अति दुष्ट विचारपूर्वक)
मुसावायाओ	: मृषावाद (झूठ बोलने) से

वेरमणं : विरमण, (हटना)।
१. कन्नालीए : कन्या (वर आदि मनुष्य) सम्बन्धी झूठ
२. गोवालीए : गाय (भैंस आदि पशु) सम्बन्धी झूठ
३. भोमालीए : भूमि (धन आदि शेष द्रव्य) सम्बन्धी झूठ
४. णासावहारो : धरोहर दबाने के लिए झूठ
(थापणमोसो) : धरोहर सम्बन्धी झूठ
५. कूड-सक्खिज्जे : कूडी साख (झूठी साक्षी)

इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण (करता हूँ)†। जावज्जीवाए। दुविहं तिविहेणं—१. न करेमि, २. न कारवेमि, १. मणसा २. वयसा ३. कायसा।‡

अतिचार पाठ

ऐसे दूसरे मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—ते आलोउं—	दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—

१ सहसब्भक्खाणे : सहसा कार से किसी के प्रति कूडा आल (झूठा दोष) दिया हो,
२. रहस्सब्भक्खाणे : एकान्त मे गुप्त बातचीत (आदि) करते हुए व्यक्तियो पर झूठा आरोप लगाया हो,

---

†'थूलगं, भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि।' इतना और।
‡'तस्स भंते ! पडिक्कमामि (४) ....।' इतना और।

३. सदार-मत-भेए : अपनी स्त्री (आदि) के मर्म प्रकाशित किये हो, (गुप्त बात प्रकाशित की हो),
४. मोसोवएसे : मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो,
५ कूड-लेह-करणे : कूडा (झूठा) लेख (आदि) लिखा हो;

प्रतिक्रमण पाठ

जो मे देवसिओ अइयारो कओ : इन अतिचारो मे मे मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो **तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।**

'सत्य अणुव्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० झूठ के प्रकार बताइए।

उ० झूठ के दो प्रकार है—१. द्रव्य और २. भाव। १ झूठ की भावना से, जैसे गुणहीन कन्या को गुणवती कहना, द्रव्य और भाव दोनों से झूठ है तथा २. झूठ की ही भावना से, जैसे गुणहीन कन्या के सबध मे कहना कि—'मैं उसके गुण क्या ब..ऊं ? उसके गुण अवर्णनीय हैं।' यह द्रव्य से तो झूठ नहीं है, पर भाव से झूठ है। ये दोनों प्रकार के झूठ त्याज्य है।

प्र० . इत्यादि शब्द से कौनसे झूठ समझना चाहिये ?

उ० : जैसे झूठा आरोप लगाना, विश्वासघात करना, भगवान आदि की झूठी शपथ करना, मृषा उपदेश करना, राजकीय-सामाजिक-व्यापारिक-सेवा कीय-साहित्यिक व [illegible] झूठ बोलना आदि।

प्र० यदि किसी से राजकीय आदि झूठ न छूटे तो क्या वह व्रत ग्रहण नहीं कर सकता ?

उ० · यथा सभव आत्मबल बढाकर सभी बडी झूठ त्याग कर यह व्रत लेना चाहिए। यदि किसी से विशेष आत्मबल के अभाव मे ऐसा न हो सके, तो जितनी झूठ त्याग सके, उनका ही सही, व्रत अवश्य ले। आगे भी यही समझना।

प्र० रक्षा के लिए झूठी साक्षी देना या नही ?

उ० रक्षा की भावना उत्तम है, पर रक्षा के लिए भी सापराधी की झूठी साक्षी देना नही चाहिए। कदाचित् इससे अन्य निरपराध की मृत्यु भी हो सकती है। निरपराध को बचाने के लिए भी कूट साक्षी देना अतिचार है। इससे भविष्य के लिए साक्षीत्व का विश्वास उठ जाता है। उसे सत्य से बचा लेने मे समर्थ न होने से यदि कूट साक्षी दी हो, तो उस मन्द अतिचार का भी तत्काल प्रायश्चित्त करना चाहिए।

प्र० 'सहसाऽभक्खाणे' के अन्य प्रकार बताइए।

उ० जैसे १ क्रोधादि कषाय के आवेश मे आकर बिना विचारे किसी पर हत्या, झूठ, चोरी, जारी आदि आरोप लगाना। सन्देह होने पर भी कुछ भी प्रमाण मिले बिना, सुनी सुनाई बात पर या शुत्रुता निकालने के लिए या अपने पर आये आरोप को टालने के लिए आरोप लगाना आदि भी 'सहसाऽभक्खाणे' हैं।

प्र० : 'रहस्साऽभक्खाणे' की व्याख्या कीजिए।

उ० रहस्य-मन्त्रणा आदि किसी भी अधूरे प्रमाण पर एक या अनेक पुरुपो पर आरोप लगाना।

प्र० : सदारमतभेए की व्याख्या कीजिए।

उ० - स्त्री, मित्र, जाति, राष्ट्र आदि किसी की भी कोई भी लज्जनीय या गोपनीय बात अन्य के समक्ष प्रकट करना।

प्र० : सच्ची बात प्रकट करना अतिचार कैसे ?

उ० इसलिए कि, ऐसा करने से स्त्री आदि का विश्वासघात होता है, वह लज्जित होकर मर सकती है या राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र का आक्रमण आदि हो सकता है, अतः विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा सत्य बात प्रकट करना भी अतिचार है॥

प्र० : झूठा उपदेश किसे कहते हैं ?

उ० : बिना पूछे या पूछने पर भी ऐसा असत्य परामर्श देना, जिससे श्रोता हिंसादि बड़े आरम्भों में या व्यसनों में लग जाय॥

प्र० कूट लेख से और क्या समझना चाहिए ?

उ० : बनावटी हस्ताक्षर या सिक्के या मोहरें या विधान बनाना आदि॥

निबंध

१. सूक्त : १. सादेव्वाणि य देवयाओ करेंति सच्चवयणे रत्ताणं, सत्यवचन में रत पुरुषों की देवता सहाय करते हैं। —प्रश्न०॥ २. लोक में जितने भी मन्त्र, योग, जप, विद्या, अस्त्र, शस्त्र, कला आगम आदि हैं, वे सब सत्य पर प्रतिष्ठित हैं॥ —प्रश्न०॥ ३. 'सभी साधुओं ने मृषावाद की गर्हा की है, यह प्राणियों में अविश्वास का कारण है'। —दशवै०॥ इसलिए मृषावाद त्यागो॥

२. उद्देश्य : झूठ को रोकना और मौन-वृत्ति तथा सत्य का स्थापन करना॥

३. स्थान : 'हिंसा तीव्र राग-द्वेष से होती है। प्रत्यक्ष दुःख देती है, तत्काल दु ख देती है और प्राणो का नाश करके बहुत दु ख देती है। परन्तु झूठ अपेक्षाकृत मन्द राग-द्वेष से होता है, उसका दु.ख प्रायः पीछे झूठ का ज्ञान होने पर, परोक्ष मे होता है और प्रायः प्राण-नाश न होने से हिंसा की अपेक्षा कम दु ख होता है। इसलिए हिंसा के त्याग से झूठ का त्याग गौण है। अत प्राणातिपात विरमण के पश्चात् मृषावाद विरमण को तीसरा स्थान दिया है।

४. फल : स्थूल झूठ सबधी सकल्प-विकल्प से मुक्ति, सब लोगों मे विश्वास, विरोधी भी वचन को प्रमाण माने। न्यायाधीश आदि पद की प्राप्ति। व्यापार आदि मे सफलता। झूठजन्य वैर नही बँधता आदि। जन्मान्तर मे उक्त फल के साथ सत्यवादिता, मधुर कठ, प्रभावशाली वाणी, वचन-सिद्धि आदि की प्राप्ति।

५. कर्त्तव्य : 'मेरे इस वचन का क्या फल होगा ?' इसका विचार। गोपनीय बातो को पचाना। आरोपादि आने पर धैर्य रख कर नीति से निवारण करना। बिना प्रमाण कोई कथन न करना। हित-मित वाणी कहना। वचन का पालन करना। समय पर सत्य वचन कहना।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करना। पूर्ण सत्य कब प्राप्त हो ? यह मनोरथ करना। सत्य की अपूर्णता का खेद करना। सत्य-त्याग का अशुभ फल पाने वाले महाबल (मल्लीनाथ) आदि की और सत्य के लिए शरीर अर्पण करने वाले सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि की कथाओ पर ध्यान लगाना।

❖

पाठ १० दशवाँ

८. 'अचौर्य अणुव्रत' व्रत पाठ

तीसरा अणुव्रत 'थूलाओ'

अदिण्णा दाणाओ : अदत्तादान (चोरी से) वेरमणं।†
१. खात खनकर, २. गाँठ खोलकर, ३. ताले पर कूँची लगा कर, ४. मार्ग मे चलते को लूट कर, ५ पडी हुई धणियाती (किसी के अधिकार की) मोटी वस्तु जानकर लेना, इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, (करता हूँ)। १. सगे सबंधी, २. व्यापार सबंधी तथा ३. पड़ी निभ्रमी (शंकारहित) वस्तु के उपरांत अदत्तादान का पच्चक्खाण (करता हूँ)। जावज्जीवाए दुविहेणं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा।‡

अतिचार पाठ

ऐसे तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न सामायरियव्वा तंजहा—ते आलोउ—	तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—
१. तेनाहडे	: चोर को चुराई वस्तु ली हो,
२. तक्करप्पओगे	: चोर को सहायता (आदि) दी हो,
३. विरुद्ध-रज्जाइक्कमे	: राज्य-विरुद्ध काम किया हो,
४. कूड-तुल्ल-कूडमाणे	: कूडा (खोटा) तोल, कूड़ा माप किया हो,

---

†'थूलग भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि।' इतना और।
‡तस्स भंते ! पडिक्कमामि ४ ......। इतना और।

५. तप्पडिरूवग-ववहारे : वस्तु में मेल सभेल (आदि) की हो,
जो मे देवसिओ : इन अतिचारों मे से मुझे जो कोई
अइयारो कओ दिन संबंधी अतिचार दोष लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥

अदत्तादान प्रश्नोत्तरी

प्र० अदत्तादान किसे कहते हैं ?

उ० : स्वामी की आज्ञा आदि न होते हुए दुष्ट विचारपूर्वक उसकी वस्तु लेना ॥

प्र० : यहाँ चोरी के पाँच प्रकारों से क्या बताया है ?

उ० : लोकप्रसिद्ध चोरी के कुछ प्रकार बताये हैं ॥

प्र० : 'इत्यादि' शब्द से कौनसी चोरियाँ समझनी चाहिएँ ?

उ० : राज्य, समाज, स्वामी आदि की उचित नीति के विरुद्ध काम करना, जैसे अधिक कर लगाना, उचित कर न देना, न्यूनाधिक तोलना-मापना, घूँस लेना-देना, वेतन न देना, श्रम न करना, अन्य का साहित्य चुराना, नाम चुराना, धरोहर दबाना, भूमि दबाना आदि ।

प्र० : इस व्रत में 'सगे-सम्बन्धी' आदि का आगार क्यों रक्खा गया है ?

उ० : मिलजुल कर रहने वाले सगे-सम्बन्धी यदि परस्पर के घर का ताला खोलना आदि करते हैं या व्यापार में २१ माल दिखाकर १९ माल दिया जाता है या 'इस वस्तु का यह स्वामी है' इसकी, सामान्यतः जानकारी या खोज होना कठिन होने

पर किसी वस्तु को ली जाती है, तो ये चोरियाँ हैं, पर बड़ी चोरियाँ नहीं। अतः इनका आगार समझने की दृष्टि से रक्खा गया है।

प्र० : 'तेनाहडे' की व्याख्या कीजिए।

उ० : चोर की चुराई वस्तु, पूरी या उसके कुछ भाग को बिना मूल्य, पूरा मूल्य या कुछ मूल्य देकर लेना।

प्र० : 'तक्करप्पओगे' मे और क्या सम्मिलित हैं?

उ० : चोर को चोरी की प्रेरणा देना, संकट में बचाना या बचाने का आश्वासन देना आदि।

प्र० : राज्य-विरुद्ध काम किसे कहते हैं?

उ० : सुराज्य-नीति के अनुकूल शासकों ने जो भी आवश्यक और उचित नियम लगाएँ हो, उनका भङ्ग करना। जैसे निषिद्ध वस्तुएँ बेचना-खरीदना, निषिद्ध राज्यो मे बेचना-खरीदना, कर न देना आदि।

प्र० : कूट तौल-माप किसे कहते है?

उ० : देने के हल्के और लेने के भारी, पृथक्-पृथक् तौल-माप रखना या देते समय कम तौलकर देना, कम माप कर देना, इसी प्रकार कम गिनकर देना या खोटी कसौटी लगाकर कम देना। लेते समय अधिक तौलकर, अधिक मापकर, अधिक गिनकर तथा स्वर्णादि को कम बताकर लेना आदि।

प्र० : 'तप्पडिरूवग-ववहारे' की व्याख्या बताइए।

उ० : अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना। उत्तम वस्तु को दिखलाकर निकृष्ट वस्तु

देना। इसी प्रकार अल्प मूल्य वाली या वनावटी वस्तु को वहुमूल्य जैसी और वास्तविक जैसी वनाकर वेचना या ऊपर लेवल अच्छा लगाकर भीतर खोटी वस्तु रखकर वेचना आदि।

निबंध

१ सूक्त : १. **लोभाविले आययइ अदत्तं,** लोभी चोरी करता है।—उत्तरा०। २. साधु-मुनि दाँत-शोधन के लिए तृण भी विना आज्ञा नही उठाते।—दशवै०। ३ पराया धन मिट्टी के समान समझो।

२. **उद्देश्य :** चोरी को हटाकर साहूकारी स्थापन करना।

३. **स्थान :** सामान्यतया झूठ वोलना अपेक्षाकृत विशेष राग-द्वेष से होता है। झूठ सब ही द्रव्यो के विषय मे अधिक स्थान मे जब कभी वोला जा सकता है और उसका परिणाम भी अधिक लोगो के लिए दुःखदायी होता है तथा सामान्यतया झूठ की अपेक्षा चोरी मन्द राग-द्वेष से होती है, झूठ के योग्य द्रव्य, क्षेत्र और काल बहुत कम होते हैं और चोरी अपेक्षाकृत कम लोगो के लिए दुःखप्रद बनती है। अतः झूठ के त्याग से चोरी का त्याग गौण है। इसलिए अदत्तादान विरमण को तीसरा स्थान दिया है।

४. **फल :** स्थूल अदत्तादान सम्बन्धी सकल्प-विकल्प से मुक्ति। लोग चोरी की आशका न करे, चोरी का आरोप न लगावें। व्यापार मे प्रतिष्ठा, नौकरी की सुलभता। भडार आदि मे प्रवेश, भण्डारी आदि पद की प्राप्ति।

भवान्तर मे उक्त फल के साथ अचौर्यवृत्ति हो, असुरक्षित स्थान मे भी निजी सम्पत्ति की सुरक्षा हो, राजा की सम्पत्ति

पर कुदृष्टि न हो, चोर का हाथ न लगे, अग्नि जलादि का सकट न आवे।

५. कर्त्तव्य लोभ पर अकुश रखना, अभाव को जीतना, आय के अनुसार जीवनयापन करना, हाथ का सच्चा रहना।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करना। 'पूर्ण अचौर्य कब आवेगा'—यह मनोरथ करना। अचौर्य की अपूर्णता का खेद करना। चोरी करने वाले विजय चोर, सुलसा आदि की तथा चोरी न करने वाले 'श्रीपति' आदि की कथा पर ध्यान लगाना।

पाठ ११ ग्यारहवाँ

९. 'ब्रह्मचर्य अणुव्रत' व्रत पाठ

चौथा अणुव्रत 'थूलाओ'

मेहुणाओ वेरमणं[1]	: मैथुन (अब्रह्मचर्य) से हटना
सदार	: अपनी विवाहिता स्त्री में
(स्त्री के लिये **सभत्तार**)	: (अपने विवाहित पति मे)
सतोसिए	: सतोष करता (करती) हूँ।

[1] 'थूलग भन्ते ! मेहुणं पच्चक्खामि।'

अवसेस : अन्य स्त्रियों (पुरुषों) से
(सव्व) : (सभी से, सव्व शब्द ब्रह्मचारी 'सदार संतोसिए अवसेस' के स्थान पर कहें)
मेहुण-विहिं : मैथुन-सेवन का
पच्चक्खामि : प्रत्याख्यान करता (करती) हूँ

जावज्जीवाए। देव-देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा। तथा मनुष्य तिर्यंञ्च सम्बन्धी

एगविहं एगविहेणं : एक करण एक योग से (मैथुन-सेवन)
न करेमि : नहीं करूँगा
कायसा* : काया से (सूई डोरे के न्याय से)

अतिचार पाठ

ऐसे चौथे स्थूल मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा —ते आलोउं— : चौथा स्थूल स्वदार (पति) संतोष परदार (शेष स्त्री-पुरुष) विवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउं,

१. इत्तरिय परिग्गहिया-गमणे : इत्वर परिगृहीता (अल्प वय वाली स्वस्त्री या वेश्या) से गमन किया हो,
२. अपरिग्गहिया-गमणे : अपरिगृहीता (सगाई की हुई स्वस्त्री या अनाथ कन्यादि) से गमन किया हो,

---

*तस्स भन्ते !.........। ये दोनों पाठ मिलाकर इस पाठ से ब्रह्मचर्य व्रत लेना चाहिए।

३ अनंगकीडा	: अनग क्रीडा की हो,
४. पर-विवाह-करणे	: पराये का विवाह नाता कराया हो,
५. कामभोगतिव्वा भिलासे	: काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारों में से मुझे जो कोई दिन सबधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'ब्रह्मचर्य अणुव्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० : स्व-स्त्री सतोष कितने प्रकार से हो सकता है ?

उ० नाना प्रकार से हो सकता है। जैसे—एक विवाह उपरान्त या वर्त्तमान विवाहित स्त्री से अन्य विवाह नही करूँगा। वर्त्तमान स्त्री स्वर्गवास हो जाने पर या इतने वर्ष के उपरान्त स्वर्गवास हो जाने पर अन्य विवाह नही करूँगा। वर्ष मे ······ या मास में ······ दिन से अधिक अब्रह्मचर्य सेवन नही करूंगा। इतने वर्ष के हो जाने पर सर्वथा ब्रह्मचारी रहूँगा। दिवा ब्रह्मचारी रहूँगा। ········पक्ष मे ब्रह्मचारी रहूँगा। ··· ···· तिथियो को ········पर्वों को तथा श्रावण-भाद्रपद मास मे ब्रह्मचारी रहूँगा। आदि।

प्र० वेश्यागमन अतिचार है या अनाचार है ?

उ० किसी अन्य षड्यन्त्रकारी के प्रलोभन से वेश्या स्वस्त्री के समान बन जाय और ऐसे समय कोई भुलावे मे आकर वेश्या का आभोग न होने से उससे गमन कर ले, तो उसे अतिचार लगता है, अनाचार नही या वेश्यागमन की भावना मे वेश्या से आलाप-सलाप-रूप व्रत का देश-भग करना, 'वेगमनय'

की दृष्टि से वेश्यागमन है। वह भी अतिचार है, अनाचार नहीं। व्यवहार से वेश्यागमन करना तो अनाचार ही है।

अन्यत्र भी जहाँ कोई ऐसे अतिचार, जो अनाचार दिखाई दे, वहाँ उन्हें अनाभोग, देश-भङ्ग आदि की अपेक्षा अतिचार समझना चाहिए।

प्र० : **अल्प-वय-वाली** किसे कहते हैं ?

उ० : जिसे अभी ऋतुधर्म आरंभ नहीं हुआ हो। (स्त्री के लिए, 'जिसका वीर्य पका नहीं'—ऐसा पति अल्प वय वाला है। उसे वीर्योत्तेजक औषधियाँ खिलाकर गमन करने से स्त्री को यह अतिचार लगता है।)

प्र० : **अनंग-क्रीड़ा** किसे कहते हैं ?

उ० : काम-सेवन के जो प्राकृतिक अंग हैं, उनसे अन्य अंगों के द्वारा स्वस्त्री से या पुरुष से या अन्य स्त्रियों से या पुतली आदि से गमन करना। इसी प्रकार पराई स्त्रियों से या पुरुषों से आलिङ्गन-चुम्बनादि करना। वीर्य-स्खलन के पश्चात् भी स्वस्त्री से गमन करना, हस्तकर्म करना।

प्र० : '**पर-विवाह-करणे**' की व्याख्या कीजिये।

उ० : अपना और अपनी संतान और इसी प्रकार जिनका विवाह करने का कार्यभार स्वयं पर आ पड़ा हो, उनके अतिरिक्त दूसरों का विवाह करना, इसी प्रकार विधवा-विवाह कराना, वर्त्तमान पत्नी उपरांत अन्य विवाह का त्याग होने पर अन्य स्त्री से विवाह करना। अपने पुत्रादि का एक बार विवाह करके फिर विवाह करने का त्याग ले लेने के पश्चात् उनका विवाह करना। जिस कन्या का पर-पुरुष के साथ

विवाह हो रहा हो, उसके साथ स्वय विवाह कर लेना आदि ।

प्र० : **कामभोग की तीव्र अभिलाषा मे और क्या सम्मिलित हैं ?**

उ० : विशेष कामभोग की भावना से वाजीकरण, वीर्य-वर्धन करना आदि ।

निबंध

१. सूक्त : १ **तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं,** सब प्रकार के तपो मे ब्रह्मचर्य उत्तम तप है ।—सूत्र० । २. एक ब्रह्मचर्य का आराधन करने से सभी गुणो का आराधन हो जाता है ।—प्रश्न० । ३ अब्रह्मचर्य को जीता हुआ समुद्र पार कर चुका, केवल नदी शेष है—उत्तरा० । ४. इन्द्र, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, राजा, युगलिक आदि सभी काम-भोग से अतृप्त ही मरते है ।—प्रश्न० ।

२. **उद्देश्य :** अब्रह्मचर्य के खुजली के समान विकृत और तुच्छ सुख से हटाकर आत्मा को ब्रह्मचर्य के नीरोगता के समान श्रेष्ठ अविकार सुख की प्राप्ति कराना ।

३. **स्थान :** १ हिंसा, २ झूठ और ३. चोरी—ये तीनो ही पाप १ प्राणो के प्रति राग, २. स्त्री के प्रति राग और ३. धन आदि के प्रति राग के कारण होते हैं और जहाँ राग होता है, वहाँ द्वेष अवश्य होता है और रागद्वेष ही त्याज्य है । उनमे भी राग का त्याग मुख्य है, पर राग पाप है—यह समझ मे आना कठिन होता है, अत. शास्त्रकारो ने राग के त्याग-रूप व्रत को तीनो के पश्चात् स्थान दिया है । दूसरी बात यह भी है कि हिंसा, झूठ और चोरी के त्याग के पश्चात् इन तीनो का राग बहुतांश मे प्रायः मन्द पड़ जाता है । इसलिए भी इनका त्याग

किसी अपेक्षा गौण हो जाता है। अतएव भी इनके त्याग को पीछे स्थान दिया है।

इन तीनो मे प्राणो पर राग सबसे अधिक, उससे कम स्त्री पर और उससे कम धनादि पर होता है। अत प्राणो के राग का त्याग सबसे ही मुख्य है। पर प्राण मोक्ष-आराधना भी उपयोगी हैं, अत. व्यावहारिक दृष्टि से उनका त्याग सम्भव नही। अत उसके पश्चात् शेष दोनो रागो मे स्त्री-राग का त्याग मुख्य होने से धनादि के राग के त्याग से पहले 'मैथुन विरमण' को चौथा स्थान दिया गया है।

४. फल : स्थूल मैथुन सम्बन्धी सकल्प-विकल्प से मुक्ति। स्वदार मे अधिक आसक्ति की मन्दता। शरीर नीरोग, हृदय वलवान, इन्द्रियाँ सतेज, बुद्धि तीक्ष्ण और चित्त स्वस्थ। अल्पायु न हो, दुराचार की आशका व आरोप न हो। भवान्तर मे उक्त फल के साथ नपुसक या स्त्री न बने, नपुमक न बनाया जाये, स्त्री-प्राप्ति मे कठिनता, स्त्री-वियोग या स्त्री-मृत्यु न हो, स्वत ब्रह्मचर्य पालन की भावना हो।

५. कर्त्तव्य : अन्य स्त्री की आवश्यक कथा न करना, शब्द न सुनना, रूप न देखना, परिचय न करना, साथ मे गमन, भोजन, गान आदि न करना। अश्लील साहित्य, चित्र, नाटकादि से परे रहना। रात्रि-भोजन, गरिष्ट भोजन आदि से बचना।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करना। पूर्ण 'ब्रह्मचारी कब बनूंगा ?' यह मनोरथ करना। ब्रह्मचर्य की अपूर्णता पर खेद करना। भोग्य स्त्री-देह की अशुचिता का, अनित्यता का और स्त्री की स्वार्थपरता का चिन्तन करना। ब्रह्मचर्य के

अपालक रावण, जिनरक्ष, सूरिकान्ता आदि का तथा ब्रह्मचर्य के पालक जम्बूकुमार, मल्लीनाथ, राजीमति आदि के जीवन-चरित पर ध्यान देना ।

पाठ १२ बारहवाँ

१०. 'अपरिग्रह अणुव्रत' व्रत पाठ

पाँचवाँ अणुव्रत 'थूलाओ'

परिग्गहाओ 'वेरमण ।'†	: परिग्रह (संग्रह तथा मूर्च्छा) से हटना
१ खेत्त	: खुली भूमि (खेत आदि)
२ वत्थु	: ढकी भूमि (घर आदि)
का यथा परिमाण	
४ ५ हिरण्ण-सुवण्ण	: चाँदी-सोना (मणि, मोती आदि)
का यथा परिमाण	(जैसे आभूषण, पाट, गिन्नी आदि)
५. दुपय	: दो पैर वाले (मनुष्य, पक्षी आदि)
६. चउप्पय	: चार पैर वाले (गाय, भैंस आदि
का यथा परिमाण	दुधारू या बैलादि वाहन योग्य)
७. धन	: रोकड पूंजी (मुद्रा, हुडी आदि)
८. धान्य	: गहूँ (ईख, नारियल, बादाम) आदि
का यथा परिमाण	

†'थूलगं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि ।'

पक्षी नही रक्खूंगा। ६. इतने से अधिक दुधारू पशु,............ इतने से अधिक वाहन के पशु नही रक्खूंगा। ७.... ...... इतने से अधिक मुद्रावाला रोकड धन नही रक्खूंगा। ८.............. इतने से अधिक धान्य, इतनी से अधिक वनस्पति नही रक्खूंगा। ९. इतने से अधिक कडाई आदि,.......... इतने मे अधिक मोटर आदि, ... इतने से अधिक पलग आदि,........ .. इतने से अधिक वस्त्रादि नही रक्खूंगा। इनका परिमाण घर और व्यापार की दृष्टि से बाँट कर भी रक्खा जा सकता है।

प्र० : किये हुए क्षेत्रादि के **परिमाण का उल्लंघन कैसे** होता है ?

उ० : जैसे १० खेत रक्खे हो, उनके स्थान पर २० खेत कर लेना आदि प्रकार तो स्पष्ट है ही, अन्य कुछ प्रकार यो हैं—१. अपने खेत के पास अन्य खेत मिलने पर दोनो खेतो की एक वाड वना कर एक खेत गिनना। २. दस ही खेत और दस ही घर रक्खे हो, पर घर की अधिक आवश्यकता दिखने पर दो-चार खेत घटा कर दो-चार घर बढा लेना। ३ दस खेत से अधिक मिलने पर उसे केवल दूसरो के नाम करना, पर अधिकार मन मे अपना रखना। ४. जितनी अवधि का व्रत लिया, है, उससे पहले अधिक धन की प्राप्ति होने पर धनदाता के पास जमा के रूप मे वह धन रखना आदि।

'अपरिग्रह' निबंध

१. सूत्र : १. **'इच्छा हु आगास समा अणंतिया'** इच्छा (परिग्रह की भावना) आकाश के समान अनंत है, उसका अत नही आ सकता।—उत्तरा०। २. ज्यो लाभ होता है, त्यो संतोष

नहीं होता, वरन् लोभ बढता है।—उत्तरा०। ३. सम्पूर्ण लोक मे सभी जीवो के लिए परिग्रह (प्राण, स्त्री और शेष) से बढकर और कोई पाश (बन्धन) नहीं हैं।—प्रश्न०। ४. मरते समय यहाँ से कोई साथ नहीं चलता।—उत्तरा०।

२. **उद्देश्य :** धनादि की मूर्च्छा के दुःख को मिटाना और इच्छा-रहितता के सुख को प्रकट करना।

३. **स्थान :** स्त्री-राग (मोह) की अपेक्षा धनादि का राग (मोह) मन्द होने से स्त्री-त्याग की अपेक्षा धनादि का त्याग गौण है, अत मैथुन विरमण के पश्चात् परिग्रह विरमण को पाँचवाँ स्थान दिया है।

४. **फल :** असीम तृष्णाजन्य सकल्प-विकल्प से मुक्ति। विद्यमान धन मे आसक्ति की मन्दता। अभाव में सन्तोष। निद्रा सुख से आवे, यात्रा का कष्ट न हो, नीच की सेवा करनी न पड़े। जन्मान्तर में उक्त फल के साथ निर्धनता और आवश्यक पदार्थों की कमी न हो। स्वतः धन-त्याग की भावना हो।

५. **कर्त्तव्य :** अपने से अधिक धनवानों की वेश-भूषा, अलंकार, भोजन पान, धन, भवन, उत्सवादि की ओर ध्यान न देना। राज्यादि का अनुग्रह, व्यापार वृद्धि, गुप्त धन प्राप्ति आदि से धन वृद्धि होने पर उसे मिट्टी के समान समझ कर त्याग देना या धर्म आदि के निमित्त लगा देना। यदि मर्यादा उपरान्त धन सबधियो को दे, तो उस पर अपना अधिकार न रखना।

६. **भावना :** सूक्तादि पर विचार करना। सम्पूर्ण अपरिग्रही कब बनूंगा? यह मनोरथ करना। अपरिग्रह की

९. कुविय का यथा परिमाण	: सोना, चाँदी से भिन्न धातु आदि (घर का सारा विस्तार)

इस प्रकार जो परिमाण किया है, उसके उपरांत अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण (करता हूँ) जावज्जीवाए। एगविहं तिविहेण, न करेमि, मणसा वयसा कायसा।†

अतिचार पाठ

ऐसे पाँचवे स्थूल परिग्रह परिमाणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—ते आलोउं—	: पाँचवाँ स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—
१ खेत्त-वत्थुप्पमाणाइक्कमे	: क्षेत्र वस्तु के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
२. हिरण्ण-सुवण्णप्पमाणाइक्कमे	: हिरण्य-सुवर्ण के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
३. धण-धण्णप्पमाणाइक्कमे	: धन-धान्य के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
४. दुपय-चउप्पयप्पमाणाइक्कमे	: दो पद, चौपद के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
५. कुवियप्पमाणाइक्कमे	: कुविय धातु के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारों में मुझे जो कोई दिन संबंधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

†तस्स भंते! ....।

'अपरिग्रह अणुव्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० : स्थूल अपरिग्रह विरमण कितने प्रकार का है ?

उ० तीन प्रकार का है। १. 'जितना परिग्रह वर्त्तमान मे स्वयं के पास है, उससे डेढे-दूने आदि से अधिक परिग्रह नहीं रक्खूंगा। यदि उससे अधिक प्राप्त भी हुआ, तो मैं ग्रहण नही करूँगा या धर्म आदि मे व्यय कर दूँगा।' आदि रूप मे विरमण करना **जघन्य** (निम्न प्रकार) का स्थूल परिग्रह विरमण है। २ जितना पास मे है, उतने से अधिक का विरमण करना **मध्यम** प्रकार का विरमण है। ३ जितना पास मे है, उसमे भी घटा कर अधिक का विरमण करना, **उत्तम** प्रकार का विरमण है। शीघ्र मोक्षार्थी को उत्तम प्रकार का विरमण अपनाना चाहिए। जिसकी प्राप्ति असम्भव है, उसका त्याग करना तो मात्र बाहरी त्याग है। ऐसा त्याग फलदायी नही है।

प्र० : क्षेत्र आदि का परिमाण **कैसे** किया जाता है ?

उ० . जैसे १. मैं धान्यादि आदि के ......इतने से अधिक खेत, इतनी से अधिक गोचर भूमि, ... इतने से अधिक क्रीडांगण आदि खुली भूमि नही रक्खूंगा। २. .... इतने से अधिक तलघर, ... इतने से अधिक माल खड, ... इतने से अधिक पर्वतीय घर आदि ढकी भूमि नही रक्खूंगा। ३-४. .... इतने तोले से अधिक चाँदी-सोना के घडे हुए आभूषण, ... इतने तोले से अधिक पाट, गिन्नी आदि के रूप में बिना घडी चाँदी, सोना नही रक्खूंगा। इसी प्रकार .... इतने से अधिक मणि-रत्नादि नहीं रक्खूंगा। ५. .... इतने से अधिक नौकर, ... इतने से अधिक

पक्षी नही रक्खूंगा। ६. इतने से अधिक दुधारू पशु,………… इतने से अधिक वाहन के पशु नही रक्खूंगा। ७ ………… इतने से अधिक मुद्रावाला रोकड धन नही रक्खूंगा। ८.………… इतने से अधिक धान्य, · इतनी से अधिक वनस्पति नही रक्खूंगा। ९. इतने से अधिक कडाई आदि,……… इतने से अधिक मोटर आदि, · …… इतने से अधिक पलग आदि,………… इतने से अधिक वस्त्रादि नही रक्खूंगा। इनका परिमाण घर और व्यापार की दृष्टि से बाँट कर भी रक्खा जा सकता है।

प्र० : किये हुए क्षेत्रादि के **परिमाण का उल्लंघन कैसे** होता है ?

उ० : जैसे १० खेत रक्खे हो, उनके स्थान पर २० खेत कर लेना आदि प्रकार तो स्पष्ट है ही, अन्य कुछ प्रकार यों हैं—१. अपने खेत के पास अन्य खेत मिलने पर दोनो खेतों की एक वाड वना कर एक खेत गिनना। २. दस ही खेत और दस ही घर रक्खे हो, पर घर की अधिक आवश्यकता दिखने पर दो-चार खेत घटा कर दो-चार घर बढा लेना। ३ दस खेत से अधिक मिलने पर उसे केवल दूसरो के नाम करना, पर अधिकार मन मे अपना रखना। ४ जितनी अवधि का व्रत लिया, है, उससे पहले अधिक धन की प्राप्ति होने पर धनदाता के पास जमा के रूप मे वह धन रखना आदि।

'अपरिग्रह' निबंध

१. सूत्र : १ **'इच्छा हु आगास समा अणंतिया'** इच्छा (परिग्रह की भावना) आकाश के समान अनंत है, उसका अत नही आ सकता।—उत्तरा०। २. ज्यो लाभ होता है, त्यो संतोष

नहीं होता, वरन् लोभ बढता है। —उत्तरा०। ३. सम्पूर्ण लोक मे सभी जीवो के लिए परिग्रह (प्राण, स्त्री और शेष) से बढकर और कोई पाश (बन्धन) नहीं हैं।—प्रश्न०। ४. मरते समय यहाँ से कोई साथ नहीं चलता।—उत्तरा०।

२. **उद्देश्य :** धनादि की मूर्च्छा के दुःख को मिटाना और इच्छा-रहितता के सुख को प्रकट करना।

३. **स्थान :** स्त्री-राग (मोह) की अपेक्षा धनादि का राग (मोह) मन्द होने से स्त्री-त्याग की अपेक्षा धनादि का त्याग गौण है, अत मैथुन विरमण के पश्चात् परिग्रह विरमण को पाँचवाँ स्थान दिया है।

४. **फल :** असीम तृष्णाजन्य सकल्प-विकल्प से मुक्ति। विद्यमान धन मे आसक्ति की मन्दता। अभाव में सन्तोष। निद्रा सुख से आवे, यात्रा का कष्ट न हो, नीच की सेवा करनी न पड़े। जन्मान्तर में उक्त फल के साथ निर्धनता और आवश्यक पदार्थों की कमी न हो। स्वतः धन-त्याग की भावना हो।

५. **कर्त्तव्य :** अपने से अधिक धनवालों की वेश-भूषा, अलंकार, भोजन पान, धन, भवन, उत्सवादि की ओर ध्यान न देना। राज्यादि का अनुग्रह, व्यापार वृद्धि, गुप्त धन प्राप्ति आदि से धन वृद्धि होने पर उसे मिट्टी के समान समझ कर त्याग देना या धर्म आदि के निमित्त लगा देना। यदि मर्यादा उपरान्त धन सबधियो को दे, तो उस पर अपना अधिकार न रखना।

६ **भावना :** सूक्तादि पर विचार करना। सम्पूर्ण अपरिग्रही कब बनूंगा ? यह मनोरथ करना। अपरिग्रह की

अपूर्णता का खेद करना। 'परिग्रह की प्राप्ति में व्यापारादि का कष्ट, रक्षा मे चोरादि की चिन्ता का कष्ट और व्यय में वियोग का कष्ट है।' यो उसके सदा दुःख का चिन्तन करना, परिग्रह मे गृद्ध, दुर्योधन, कोणिक आदि का तथा परिग्रह त्यागी भरत चक्रवर्ती, धन्ना मुनि, अर्हन्नक आदि के जीवन चरित पर ध्यान देना।

पाठ १३ तेरहवाँ

११. 'दिशा व्रत' व्रत पाठ

छठा दिशिव्रत १. उड्ढ दिशि का यथा परिमाण, २. अहोदिशि का यथा परिमाण, ३ तिरियदिशि का यथा परिमाण। इस प्रकार जो परिणाम किया है, उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण (करता हूँ)। जावज्जीवाए। [1]एगविह तिविहेणं, न करेमि, मणसा वयसा कायसा।

अतिचार पाठ

ऐसे छठे दिशि व्रत के पंच छठे दिशिव्रत के विषय में अइयारा जाणियव्वा न समाय जो कोई अतिचार लगा हो, रियव्वा तंजहा—तें आलोउं—तो आलोउ—

---

[1]कोई 'दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा' बोलते हैं।

१. उड्ढदिसि-प्पमाणाइक्कमे	: उड्ढ (ऊँची) दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो,
२. अहोदिसि-प्पमाणाइक्कमे	: नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो,
३. तिरियदिसि प्पमाणाइक्कमे	: तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो,
४. खित्त-वुड्ढी	: (एक दिशा का क्षेत्र घटाकर अन्य दिशा का) क्षेत्र बढाया हो,
५. सइ अन्तरद्धा	: क्षेत्र परिमाण के भूल जाने से पथ का सन्देह पडने पर आगे चला हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई दिन सबधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

प्रश्नोत्तरी

प्र० : दिशा परिमाण कितने प्रकार का है ?

उ० : जिस दिशा में जितना जाना पडे, उससे १. अधिक, २. उतना और ३ उससे कम का परिमाण करना—यो जघन्य, मध्यम, उत्तम तीन प्रकार का है।

प्र० : ऊर्ध्व आदि दिशाओ का परिमाण कैसे किया जाता है ?

उ० : १. जैसे मैं निवास स्थान या स्थान की भूमि से ...... इतने हाथ से अधिक ऊपर बने स्तभादि पर नही चढूँगा, ... इतने हाथ से अधिक ऊँचे पर्वत पर नही

जाऊँगा। .... इतने हाथ से अधिक वायुयान आदि से आकाश मे ऊपर नही उडूँगा। २. .... इतने हाथ से अधिक गहरे कूएँ, खान आदि मे नही जाऊँगा। पूर्व मे .... .. इतने कोस या मीटर से आगे, पश्चिम मे .... इतने से आगे, उत्तर मे .. .. इतने से आगे और दक्षिण मे . . . इतने से आगे नही जाऊँगा। भूमि की स्वत ऊँचाई-नीचाई का आगार।

प्र० . क्षेत्र-वृद्धि क्यो की जाती है ?

उ० : 'पूर्वादि दिशा की मर्यादित भूमि से आधी भूमि मे भी मुझे जाना नही पड़ता और पश्चिमादि भूमि मे मर्यादित भूमि से अधिक भूमि मे जाना मुझे धनादि की दृष्टि से लाभप्रद है' इत्यादि सोचकर।

प्र० दिशाव्रत से मर्यादित क्षेत्र के बाहर **कौनसे पाँच आश्रव रुकते हैं ?**

उ० जो पहले के पाँच अणुव्रत धारण करके पश्चात् छठा व्रत धारण करता है, उसके १ हिंसा, २ झूठ, ३ चोरी, ४ मैथुन और ५ परिग्रह—ये पाँच आश्रव, जो सूक्ष्म रूप से शेष रहे हैं, वे रुकते है तथा जिसने पहले अणुव्रत धारण किये बिना छठा अणुव्रत धारण किया है, उसे ये पाँचो आश्रव स्थूल और सूक्ष्म व सर्व प्रकार से रुकते हैं।

'दिशाव्रत' निबन्ध

१. सूक्त : इस सम्पूर्ण लोक का एक भी प्रदेश (कोना) ऐसा शेष नहीं, जहाँ जीव पहुँचा न हो या रहा न हो। सर्वत्र जीव ने अनन्त काल व्यतीत किया है, पर कभी भ्रमण से तृप्ति

नही हुई, न ही भविष्य मे वैराग्य के बिना तृप्ति हो सकती है।
—भग० ।

२. **उद्देश्य :** दिशा की मर्यादा करके स्थावर हिंसा आदि को भी घटाना ।

३. **स्थान :** श्रावक अपनी शक्ति की कमी के कारण पाँच अणुव्रतो मे बडी हिंसा आदि बडे पाँच आश्रवो का ही त्याग करता है। स्थावर हिंसा, सापराध तथा आरम्भी त्रस हिंसा, सूक्ष्म झूठ, सूक्ष्म चोरी, स्वस्त्रीगमन, विवाह, मर्यादित-परिग्रह पर ममता आदि छोटे आश्रवो का त्याग नही कर पाता, पर जितना सम्भव हो, उतना उनका भी त्याग आवश्यक है। दिग्व्रत दिशा की मर्यादा करके उनका अधिकाश क्षेत्र मे त्याग करा देता है, अतः सूक्ष्म पञ्चाश्रव का त्याग कराने वाले तीन गुणव्रतो मे मुख्य होने के कारण दिग्व्रत को गुणव्रतो मे पहला स्थान दिया है तथा स्थूल पञ्चाश्रव त्याग की अपेक्षा सूक्ष्म पञ्चाश्रव का त्याग गौण होने से इसे पाँच अणुव्रतो के पश्चात् छठा स्थान दिया है।

४. **फल :** मर्यादित क्षेत्र से बाहर के पाँचो आश्रवो के सकल्प-विकल्प से मुक्ति। स्वजन, स्वदेश, स्वधर्म का वियोग न हो, यात्रा-दुर्घटना आदि न हो। परराष्ट्र को आक्रमण, हस्तक्षेप आदि का दुःख न हो। जन्मान्तर मे वह ऐसे स्थान और स्थिति मे उत्पन्न हो कि उसे अन्यत्र कही भटकना न पडे। प्राप्त स्थान और स्थिति मे भी विरक्त रहे। अन्त मे मोक्ष प्राप्त करके अचल उच्च स्थिति प्राप्त कर ले।

५ कर्त्तव्य : पर्यटन की वृत्ति आदि कम करना, राज्य-वृद्धि, व्यापार-वृद्धि आदि की भावना मन्द करना, विदेश-स्त्री-कथा आदि न सुनना ।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करना । दिशा परिमाण न करने वाले सुभूम पद्मनाभ आदि के चरित्र का चिन्तन करना ।

पाठ १४ चौदहवाँ

१२. 'उपभोग परिभोग व्रत' व्रत पाठ

सातवाँ व्रत

उपभोग	: उपभोग (एक बार ही भोगा जा सके, जैसे अन्न)
परिभोग	: परिभोग (अनेक बार भोगा जा सके, जैसे वस्त्र)
विहि	: विधि का (ऐसे पदार्थों की जाति का)
पच्चक्खायमाणे	: प्रत्याख्यान करते हुए (सख्या, भार, वार, आदि से)
१. उल्लणिया-विहि	: (पोछने के) अगोछे की विधि (जाति)
२. दंतण-विहि	: दतौन की विधि
३. फल-विहि	: (केशादि के उपयोगी) फल की विधि
४ अब्भंगण-विहि	: अब्भ्यगन (योग्य तैलादि) की विधि

५. उव्वट्टण-विहि : उबटन (योग्य पीठी आदि) की विधि
६. मज्जण-विहि : स्नान (योग्य जल) की विधि
७. वत्थ-विहि : (पहनने योग्य) वस्त्र की विधि
८. विलेवण-विहि : विलेपन (योग्य चन्दन आदि) की विधि,
९. पुप्फ-विहि : फूल (तथा फूलमाला आदि) की विधि
१०. आभरण-विहि : (अगूठी आदि) आभरण की विधि
११. धूव-विहि : (अगर तगरादि) धूप की विधि

भोजन में काम आने वाले

१२. पेज्ज-विहि : (दूध आदि) पेय की विधि
१३. भक्खण-विहि : (घेवर आदि) मिठाई की विधि
१४. ओदण-विहि : (राँधे हुए) ओदन (चावल आदि) की विधि
१५. सूप-विहि : (मूग, चना आदि) सूप (दाल) की विधि
१६. विगय-विहि : (दूध-दही आदि) विकृति की विधि
१७. साग-विहि : (भिण्डी आदि सूखे या हरे) शाक की विधि
१८. महुर-विहि : (सूखे हरे) मधुर (फल) की विधि
१९. जीमण-विहि : (रोटी, पूरी आदि) जीमने के द्रव्यों की विधि
२०. पाणीय-विहि : (पीने योग्य) पानी की विधि
२१. मुखवास-विहि : (लौंग, सुपारी आदि) मुखवास विधि
२२. वाहण-विहि : (घोडा, मोटर आदि) वाहन की विधि

२३. उवाहण-विहि	: जूते, मौजे आदि की विधि
२४. सयण-विहि	: (सोने बैठने योग्य) वस्त्र पलगादि की विधि
२५. सचित्त-विहि	: (नमक पानी आदि) सचित्त की विधि
२६. दव्व-विहि	: (भिन्न नाम व स्वाद वाले) पदार्थों की विधि
इत्यादि का यथा परिमाण किया है	: तथा घडी, पात्र आदि शेष रहे हुए द्रव्यों का परिमाण करता हूँ

इसके उपरान्त उपभोग परिभोग वस्तुओं को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण (करता हूँ) जावज्जीवाए। एगविहं तिविहेणं, न करेमि, मणसा वयसा कायसा।

अतिचार पाठ

ऐसा सातवाँ उपभोग परिभोग	: सातवाँ उपभोग परिभोग
दुविहे, पण्णत्ते	: (दो प्रकार का कहा गया है
तंजहा—	: वह इस प्रकार
१. भोयणाओ य	: भोजन की अपेक्षा से और
२. कम्मओ य।	: कर्म की अपेक्षा से।
भोयणाओ	: भोजन की अपेक्षा)
समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा— ते आलोउं—	: परिमाण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—

१. सचित्ताहारे	: पच्चक्खाण उपरात सचित्त का आहार किया हो,
२. सचित्त-पडिबद्धा हारे	: सचित्त (वृक्षादि से) प्रतिबद्ध (लगे हुए अचित्त गोद आदि) का आहार किया हो
३. अप्पउलि-ओसहि-भक्खणया	: अपक्व (अचित्त न बने हुए) का आहार किया हो
४. दुप्पउलि-ओसहि भक्खणया	: दुष्पक्व (अधपके या अविधि से पके उबी भुट्टे आदि का) का आहार किया हो
५. तुच्छोसहि-भक्खणया	: तुच्छ औषधि (अल्प सार वाले, सीताफल, गन्ना आदि) का आहार किया हो
कम्मओणं	: (तथा कर्म की अपेक्षा)
समणोवासएणं	: श्रावक को
पण्णरस कम्मादाणाइं	: पन्द्रह कर्मादान
जाणियव्वाइ	: जो जानने योग्य हैं, किन्तु
न समायरियव्वाइं	: आचरण करने योग्य नहीं हैं,
तजहा—ते आलोउ	: उनके विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो, आलोउ—
१ इंगालकम्मे	: अंगार का काम किया हो,
२ वणकम्मे	: वन का काम किया हो,
३. साडीकम्मे	: गाडी आदि का काम किया हो,
४ भाडीकम्मे	: भाडे का काम किया हो,
५ फोडीकम्मे	: फोडने का काम किया हो,
६. दंत वाणिज्जे	: दाँत आदि का वाणिज्य किया हो,
७. लक्खवाणिज्जे	: लाख आदि का वाणिज्य किया हो,

८. रस-वाणिज्जे	: रस का वाणिज्य किया हो,
६. विस-वाणिज्जे	: विप आदि का वाणिज्य किया
१०. केस-वाणिज्जे	: केश वालों का वाणिज्य किया
११. जंत-पीलण-कम्मे	: यन्त्रो का काम किया हो,
१२. निल्लछण-कम्मे	: नपुसक वनाने का काम किया ह
१३. दवग्गि-दावणया	: खेतादि मे आग लगाई हो,
१४. सर-दह-तलाय-सोसणया	: सरोवर, द्रह, तालाब आदि सुख हो,
१५. असई-जण पोसणया	: वेश्या आदि का पोपण किया हे
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारों में से मुझे जो दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'उपभोग-परिभोग व्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० जब सचित्त को पका कर खाने में सचित्त हिंसा तो होती ही हैं, पकाने से अग्नि और उससे त्रस ज की भी हिंसा होती है, तब सचित्त को बिना पकाये सीधा न खाया जाय, पका कर क्यो खाया जाय ?

उ० 'सचित्त पकाने के लिए' सूत्रकार आदेश नही देते यह पहले ध्यान मे ले लेना उचित है। अब उत्तर यह है १ पका कर खाने मे हिंसा, जीवो की गणना की अपेक्षा अ होती है, किन्तु सचित्त को सीधे मुँह मे डाल कर खाने मे की दृष्टि से हिंसा अधिक होती है, क्योकि सीधे सचित्त को मुँ खाने मे दया का भाव मन्द माना गया हैं। २- दूसरी बात है कि सचित्त को अचित्त बनाकर उपभोग मे लेने के लिए

अग्नि से पकाना ही एक मात्र मार्ग नही है। गृहस्थ कई सचित्त वस्तुओ मे अन्य वस्तुएँ मिलाकर उन्हे अचित्त बनाते है, जैसे धोवन आदि। कई सचित्त वस्तुएँ पीस कर उन्हें अचित्त बनाते है, जैसे जीरा आदि। कई सचित्त वस्तुएँ सुखाकर अचित्त बनाते हैं, जैसे मोठे नीम के पत्ते आदि। ऐसा करने में अग्नि की हिंसा टल जाती है, अत. गणना की दृष्टि से भी हिंसा अधिक नही बढ़ती। ३. तीसरी बात यह है कि सचित्त के आहार प्रत्याख्यान लेने वाला पकाने के आरम्भ का प्रत्याख्यान नहीं करता। अत. बिना पकाये भी उसे पकाने की क्रिया आती ही रहती है। इसलिए पकाने से उसे पकाने का सर्वथा नया पाप लगता हो—यह बात भी नही है। ४. चौथी बात यह है कि सचित्ताहार के त्यागी को स्वय पकाने का या अन्य मार्गों से सचित्त को अचित्त बनाने का आरम्भ करना ही पडे—यह अनिवार्य नही है। यदि वह चाहे, तो स्वय इनके आरम्भ का दो करण तीन योग आदि से त्याग भी कर सकता है और साधु के समान प्राप्त अचित्त और पक्व पदार्थ का उपयोग कर सकता है। ५ पाँचवी बात यह है कि सचित्त को जानकर ही सदा अचित्त बनाया नही जाता, कई बार वे स्वत ही अचित्त बनते है, जैसे रोटी, सहज निष्पन्न धोवन, स्नानार्थ बना शेष बचा गरम जल आदि। यदि विवेक रक्खा जाय, तो सचित्त का त्यागी नये आरम्भ का त्याग कर सहज-निष्पन्न, अचित्त और पक्व पदार्थों से काम चला सकता है।

प्र० : सचित्त त्याग के अन्य लाभ बताइए।

उ० : १. स्वाद विजय, २ जहाँ अचित्त बनाकर खाने की सुविधा न हो, वहाँ सतोष, ३. खरबूजा आदि अधिकाश पदार्थ, जिन्हे पकाकर नहीं खाये जाते, उनका सर्वथा त्याग,

४. पर्व-तिथियो को घर मे आरम्भ कम होना (हरी त्याग की दृष्टि से)। इत्यादि कई लाभ है। स्वास्थ्य की दृष्टि से पक्व खानेवाले को रोग कम होता है।

प्र० : 'सचित्ताहारे' आदि पाँच अतिचारो से क्या समझना चाहिए ?

३ उपभोग-परिभोग सम्बन्धी जितने भी बोलो की मर्यादा की हो, उनके अतिक्रमण के भी सभी अतिचार समझने चाहिएँ।

प्र० : **कर्मादान** किसे कहते हैं ?

उ० : जिनसे ज्ञानावरणीयादि कर्मों का अधिक वन्ध हो, ऐसे कार्य या व्यापार को।

प्र० : १. **इगाल-कम्मे** (अगार कर्म) किसे कहते हैं ?

उ० . जिसमे अग्निकाय का, उसके आश्रित जीवो का और उससे मरने वाले त्रस जीवो का महारम्भ हो, ऐसे काम को। जैसे कोयला, ईंट आदि बना कर वेचना, विजली उत्पादन करके वेचना, लुहार, सुनार, भडभूंजे आदि काम करना।

प्र० : २ **वणकम्मे** (वनकर्म) किसे कहते हैं ?

उ० : जिसमे वनस्पतिकाय का और उसके आश्रित त्रस जीवो का महारम्भ हो, ऐसे काम को। जैसे वनो का ठेका लेकर वृक्षादि काट कर वेचना, वृक्ष, फल, फूल, पत्ते हरी घास आदि काट कर वेचना, दालें वनाना, आटा पीसना, चाँवल निकालना आदि।

प्र० : ३. **साडीकम्मे** (शकट कर्म) किसे कहते हैं ?

उ० · यन्त्रो के काम को। जैसे गाडी आदि वाहन के, हलादि खेती के, चर्खे आदि उत्पादन के, इत्यादि प्रकार के यन्त्रो को बनाना, खरीदना, बेचना।

प्र० : ४ **भाडीकम्मे** (भाटोकर्म) के उदाहरण दीजिए।

उ० : जैसे दासादि मनुष्य, बैलादि पशु, घर, यन्त्र आदि भाडा लेकर देना। भाडे के लिए घर आदि बनाना, भाडा लेकर माल का स्थानान्तरण करना आदि।

प्र० . ५. **फोडी कम्मे** (स्फोटी कर्म) किसे कहते हैं ?

उ० : जिसमे पृथ्वीकाय का और उसके आश्रित जीवो का महारभ हो—ऐसे काम को। जैसे हल से भूमि फोडना (खेती करना), कुदालादि से मिट्टी, पत्थर, लोहा, आदि निकालना, पत्थर आदि घडना, जलाशय के लिए या पेट्रोल आदि के लिए या सडके बनाने के लिए पृथ्वी खोदना आदि।

प्र० : ६. **दत वाणिज्जे** (दन्तवाणिज्य) किसे कहते है ?

उ० : त्रसकायिक जीवो के अवयवो का व्यापार करने को। जैसे दाँत, शख, केश, चमडा आदि खरीदना-बेचना।

प्र० ७. **लक्खवाणिज्जे** (लाक्षा वाणिज्य) किसे कहते हैं ?

उ० : जिसमे त्रस जीवो की बहुत विराधना हो—ऐसा व्यापार करने को। जैसे लाख, चपड़ी, अधिक काल का धान्य आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र० : ८. **रसवाणिज्जे** (रस वाणिज्य) किसे कहते है ?

उ० . रसवाले या प्रवाही पदार्थ, जिससे मद बढे व त्रस जीवो की हिंसा आदि हो, उनका क्रय-विक्रय करने को। जैसे मदिरा, मधु, घी, तेल, गुड, घासलेट, पेट्रोल आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र० . ९. विसवाणिज्जे (विषवाणिज्य) किसे कहते हैं ?

उ० : त्रस-स्थावर के घातक पदार्थो का व्यापार करने को। जैसे सख्यादि विष, खड्गादि शस्त्रास्त्र, टिड्डी आदि को मारने वाले पाउडर आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र० १०. केसवाणिज्जे (केश वाणिज्य) किसे कहते हैं ?

उ० : त्रस जीवो का व्यापार करने को। जैसे चमरीगाय, हाथी, गाय, भैंस, घोड़ा, बैल, आदि पशु, मयूर कबूतर आदि पक्षी, दासादि मनुष्य आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र० : ११. जन्तपीलणकम्मे (यन्त्र-पीड़न कर्म) किसे कहते हैं ?

उ० वनस्पतिकायादि को यन्त्र मे पीलने का महारभी काम और जिन यन्त्रो को चलाते हुए त्रस जीव भी पिल जायँ-ऐसे काम को। जैसे कोल्हू, घानी, भीन आदि मे गन्ना, तिल, रूई आदि पीलना, पनचक्की चलाना, मिल चलाना आदि।

प्र० : १२. निल्लंछणकम्मे (निर्लाञ्छन कर्म) किसे कहते हैं ?

उ० : मनुष्य, पशु आदि को नपुसक बनाने का, उनके अगोपाग छेदने का या डाम लगाने का काम करना।

प्र० १३. **दवग्गि-दावणया** (दवाग्नि दापनता) किसे कहते है ?

उ० विशेष और उत्तम खेती के लिए खेत मे या सिंह, सर्पादि विनाश के लिए वन मे आग लगाना आदि को।

प्र० : १४. **सर-दह-तलाय-सोसणया** (सर-द्रह—तडाग-शोषणता) किसे कहते हैं ?

उ० : जिसमे अप्काय तथा उनके आश्रित त्रस जीवों का महा आरम्भ हो—ऐसे काम को। जैसे सरोवर, द्रह, तालाब, आदि जलाशयो का पानी निकाल कर उनकी भूमि मे खेती करने के लिए उन्हे सुखाना या आय के लिए उनका पानी नहर आदि से खेत आदि मे किसान आदि को बेचना।

प्र० १५. **असईजणपोसणया** (असतीजन पोषणता) किसे कहते हैं ?

उ० : असत् कार्य करने वालो का व्यापारार्थ पोषण करना। जैसे वेश्यावृत्ति के लिए अनाथ कन्या आदि का पोषण करना। शिकार के लिए शिकारी कुत्तो आदि का पोषण करना। उन्हे शिकारादि के योग्य प्रशिक्षण देना। उनसे वैसे कार्य कराकर आजीविका चलाना या उनका वैसा पोषण-प्रशिक्षण करके उन्हे बेचना। (अनुकम्पा की दृष्टि से किसी का पोषण करना निषिद्ध नही है।) इस कर्मादान का 'असयति (साधु से अन्य) का पोषण करना।' यह अर्थ अशुद्ध है।

प्र० क्या कर्मादान पन्द्रह ही होते है ?

उ० : नही, जो सातवे व्रत मे १५ कर्मादान बताये है, उनसे दण्डपाल (जेलर का काम) बडा जुआ खेलना आदि जितने

भी महा आरम्भी काम हैं, वे सब कर्मादान मे समझने चाहिएँ।

प्र० जो कुम्हार, सुतार, किसान आदि अङ्गारकर्म आदि करते है, क्या वे कर्मादानो की अपेक्षा सातवाँ व्रत नहीं अपना सकते ?

उ० पन्द्रह कर्मादानो मे जो असतिजन-पोषणता आदि अत्यन्त ही निन्दनीय कर्म हैं और स्पष्ट ही त्रसादि जीवो की बडी हिंसा के व वेश्या-मैथुन आदि महापाप के कारण है, उन्हें यथासम्भव छोड ही देना-चाहिए। शेप जिनमे पृथ्वीकाय आदि स्थावर जीवो की हिंसा हो, उनका परिमाण कर लेना चाहिए। परिमाण करने वाले कुम्हार, किसान आदि कर्मादानो की अपेक्षा भी सातवे व्रतधारी ही माने जाते हैं।

विशेष धन कमाने की भावना छोडकर मुख्य रूप से कुटुम्ब निर्वाह आदि की भावना से अत्यन्त अल्प खेती आदि करने वाले श्रावक कर्मादानी होते हुए भी महारम्भी नही समझे जाते।

प्र० : पाँचवाँ, छठा और सातवाँ व्रत प्राय **एक करण तीन योग से क्यों** लिये जाते हैं ?

उ० : क्योकि श्रावक अपने पास मर्यादा उपरान्त परिग्रह हो जाने पर, जैसे वह उसे धर्म-पुण्य मे व्यय करता है, वैसे ही वह अपनी पुत्री आदि को भी देने का ममत्व त्याग नही पाता।

इसी प्रकार जिसका अब कोई स्वामी नही रह गया हो, ऐसा कही गडा हुआ परिग्रह मिल जाय, तो भी वह उसे अपने स्वजनो को देने का ममत्व त्याग नही पाता।

अथवा अपने पुत्रादि, जिन्हे परिग्रह बाँटकर पृथक् कर दिया हो, उनके परिग्रह-वृद्धि मे परामर्श देने का उसे प्रसग आ जाता है।

इसी प्रकार छठे सातवे व्रत की भी स्थिति है। जैसे श्रावक अपनी की हुई दिशा की मर्यादा के उपरांत स्वयं तो नही जाता, पर कई बार उसे अपने पुत्र आदि को विद्या, व्यापार, विवाह आदि के लिए भेजने का प्रसग आ जाता है।

ऐसे ही उपभोग परिभोग वस्तुओं की या कर्मादानों की जितनी मर्यादा की है, उसके उपरांत तो वह स्वयं भोगोपभोग या कर्म नही करता, परन्तु उसे अपने पुत्रादि को भोगने के लिए या करने के लिए कहने का अवसर आ जाता है।

इसलिए श्रावक पाँचवे, छठे और सातवे व्रत का प्रायः 'मैं नही करूँगा'। इतना ही व्रत ले पाता है, परन्तु 'मैं नहीं कराऊँगा'—यो भी व्रत नहीं ले पाता। विशिष्ट श्रावक इन व्रतों का दो करण तीन योग आदि से भी प्रत्याख्यान कर सकते हैं।

'उपभोग-परिभोग व्रत' निबंध

१. सूक्त : इस विश्व के प्रत्येक परमाणु को आत्मा शुभ-अशुभ सभी प्रकारो से अनन्त बार भोग चुका। पर अब तक भोग से तृप्ति नहीं हुई, न ही भविष्य मे वैराग्य के बिना तृप्ति हो सकती है। २. भोगी ससार में परिभ्रमण करता है, अभोगी मुक्त हो जाता है।

२. उद्देश्य : उपभोग-परिभोग की तृष्णा मर्यादित और मन्द करना तथा कर्म-व्यापार मे महा आरम्भ घटाना।

३ **स्थान :** सूक्ष्म पञ्चाश्रव १ एक तो अर्थ (प्रयोजन) से होता है और २. दूसरा अनर्थ (निष्प्रयोजन) होता है। अर्थ दो प्रकार का है—१ एक तो भोगोपभोग और २. दूसरा भोगोपभोग की प्राप्ति के लिए कर्म या व्यापार (या सेवा, नौकरी आदि)। मर्यादित क्षेत्र में जो अनर्थ से पञ्चाश्रव होता है, वह तो सर्वथा त्यागा जा सकता है, पर अर्थ से होने वाला पञ्चाश्रव सर्वथा त्यागा नहीं जा सकता। पर उसमे से जो मद्यपान, मासाहार आदि भोगोपभोग और जो असतिजन पोषणता आदि कर्म या व्यापार, स्थूल पञ्चाश्रव के अधिक निमित्त बनते हैं, उनका सर्वथा त्याग किया जा सकता है तथा शेष का परिमाण किया जा सकता है।

इनमें अनर्थ पञ्चाश्रव की अपेक्षा अर्थ पञ्चाश्रव का त्याग कठिन है, अत. उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत को अनर्थदण्ड विरमण से पहले स्थान दिया है और दिग्व्रत की अपेक्षा इस व्रत से सूक्ष्म पञ्चाश्रव का त्याग कम होता है, अतः इसे गुणव्रतो मे दूसरा स्थान दिया है।

४. **फल :** मनुष्य के भोगोपभोग और कर्म एव व्यापार मे आर्यता उत्पन्न होती है। अनार्य भोगोपभोगादि के तथा अमर्याद भोगोपभोगादि के संकल्प-विकल्प से मुक्ति होती है। आवश्यकताएँ घटती है। जीवन त्यागमय बनता है। धर्म के लिए अधिक समय बचता है। जन्मान्तर मे उक्त फल के साथ आत्मा आर्य भोगोपभोग मे समृद्ध तथा आर्य कर्म एवं आर्य व्यापारयुक्त कुल मे जन्म लेता है। वहाँ उसकी भोगोपभोगादि मे तथा व्यापारादि मे अरुचि होती है। वह सतोषप्रधान होता है। अन्त मे वह मुक्त बनकर भोगोपभोग

की इच्छा और कर्म व्यापार सम्बन्धी आवश्यकता के बन्धन से रहित हो जाता है।

५. कर्त्तव्य : सादा रहन-सहन, सादा भोजन-पान, धूमपानादि व्यसन का त्याग, इन्द्रिय और मन पर अकुश, अल्प आय मे सन्तोष इत्यादि।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करना। भोगोपभोग से दु.ख पाने वाले हरिण, पतग, सर्प, मत्स्य, महिष आदि के दृष्टान्तो पर तथा भोगोपभोग के त्यागी धन्ना मुनि, काली महारानी आदि के चरित्रो पर ध्यान देना।

पाठ १५ पन्द्रहवाँ

१३. 'अनर्थ दण्ड व्रत' व्रत पाठ

आठवाँ	: आठवां
अणट्ठादण्ड	: अनर्थ दण्ड (बिना काम का पाप)
विरमण व्रत।	: विरमण व्रत
चउव्विहे	: चार प्रकार का
अणट्ठा-दण्डे	: अनर्थ दण्ड
पण्णत्ते-तंजहा	: कहा गया है, वह इस प्रकार
१. अवज्झाणाचरिए	: अप (आर्त रौद्र) ध्यान करना
२. पमायाचरिए	: प्रमाद् करना
३. हिंसप्पयाणे	: हिंसा आदि पापो के साधन देना

४. पावकम्मोवएसे : पापयुक्त काम का उपदेश देना

एवं आठवाँ अणट्ठा-दण्ड-सेवण का पच्चक्खाण जिसमें आठ आगार

१. आए वा	: अपने (स्वय अकेले के) लिए अथवा
२. राए वा	: राजा (आदि शासको) के लिए अथवा
३. नाए वा	: ज्ञाति (जाति आदि) के लिए अथवा
४. परिवारे वा	: सेवक भागीदार आदि के लिए अथवा
५. देवे वा	: वैमानिक-ज्योतिपी देवो के लिए
६. नागे वा	: भवनपति देवो के लिए अथवा
७. भूए वा	: भूत आदि अथवा
८. जक्खे वा	: यक्ष आदि व्यन्तर देवो के लिए अथवा
एत्तिएहिं	: इत्यादि के लिए किया जाने वाला
आगारेहिं	: अर्थ दण्ड रखकर
अन्नत्थ	: शेष अनर्थ दण्ड का पच्चक्खाण

जावज्जीवाए। दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा।

अतिचार पाठ

ऐसे आठवें अनर्थ दण्ड विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—ते आलोउं—	आठवे अनर्थ दण्ड विरमण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—

१. कंदप्पे	: काम विकार पैदा करने वाली (या बढ़ाने वाली) कथा की हो,
२. कुक्कुइए	: भण्ड (ज्यो काम) कुचेष्टा की हो,
३. मोहरिए	: मुखरी (निरर्थक) वचन बोला हो,

४. संजुत्ताहिगरणे : अधिकरण (हिंसा के साधन) जोड रक्खा हो,

५. उवभोग-परिभोग अइरित्ते : उपभोग-परिभोग (के द्रव्य) अधिक बढाया हो,

जे मे देवसिओ अइयारो कओ : इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

'अनर्थ दण्ड व्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० : **'अपध्यान'** किसे कहते हैं ?

उ० रौद्र ध्यान करना, बिना कारण आर्तध्यान करना तथा सकारण तीव्र आर्तध्यान करना ।

प्र० . **'पमायाचरिए'** किसे कहते हैं ?

उ० · जैसे घर, व्यापार, सेवा आदि के कार्य करते समय बिना प्रयोजन हिंसादि पाप न हो, सप्रयोजन विशेष न हो—इसका ध्यान न रखना । हिंसादि के साधन या निमित्तो को जहाँ-तहाँ, ज्यो-त्यो रख देना । घर, व्यापार, सेवा आदि से बचे हुए अधिकाश समय को इन्द्रियो के विषयो मे (सिनेमा, शतरज आदि मे) व्यय कर देना ।

प्र० : **शिक्षा, अनुभव आदि देने वाले नाटक या सिनेमा आदि देखना भी अनर्थदण्ड है क्या ?**

उ० : 'इन्हे देखना सदा सबके लिए अनर्थ दण्ड होता है ।' ऐसा एकान्त तो नही है, पर नाटक, सिनेमा आदि अधिकतया विषय, कषाय, विकथा आदि के साधन होते हैं ।

अत व्यवहार-रक्षा के लिए इन्हे अनर्थ दण्ड समझ कर न देखना उपयुक्त है। पर यदि कोई देखना ही चाहे, तो उसे व्यवहार-रक्षा के लिए इनकी मर्यादा करके अनर्थ दण्ड मे आगार के रूप मे रख लेना उचित है।

प्र० 'हिंसप्पयाणे' किसे कहते है ?

उ० : हिसा आदि पापो के साधन अस्त्र-शस्त्रादि या तत्सम्बन्धित साहित्य (जासूसी उपन्यास आदि) दूसरो को देना।

प्र० . **पाप कर्मोपदेश के दृष्टान्त** दीजिए।

उ० . जैसे किसी को कहना—'कदमूल, मद्य, मास आदि का सेवन करने से स्वास्थ्य और शक्ति वढती है (हिंसा), या न्यायालय मे इस प्रकार झूठ वोलने से तथा झूठी साक्षी देने से तुम सदोष होते हुए भी वच जाओगे (झूठ), या सरकारी पद पाये हो, तो कुछ घूंस आदि करके पैसा वनाओ (चोरी), या जीवन को सुखमय व्यतीत करने के लिए दूसरा विवाह कर लो (मैथुन), या एक दुकान या एक मिल नई खोल लो (परिग्रह) इत्यादि'।

प्र० **'संजुत्ताहिगरणे'** किसे कहते है ?

उ० : पृथक्-पृथक् स्थानो पर पडे हुए शस्त्रो के अवयव, जैसे शिला और शिलापुत्र (लोढी), धनुष्य और तीर, बन्दूक और गोली—इनको मिला कर एक स्थान पर रखना, शस्त्रो का विशेष सग्रह रखना।

प्र० : कन्दर्पादि से कौन-कौनसे अनर्थदण्ड होते हैं ?

उ० . कन्दर्प और कौत्कुच्य से अपध्यानाचरण और प्रमादाचरण होता है। मौखर्य से पापकर्मोपदेश हो सकता

है। सयुक्ताधिकरण से हिंसा प्रदान हो सकता है। उपभोग-परिभोगातिरिक्त से हिंसा प्रदान और प्रमादाचरण होता है।

'अनर्थ दण्ड व्रत' निबन्ध

१ उद्देश्य : अनर्थ दण्ड के प्रति विवेक उत्पन्न करके अनर्थदण्ड रोकना।

२. स्थान : अर्थदण्ड की अपेक्षा अनर्थदण्ड का त्याग सरल होने का कारण अनर्थदण्ड विरमण का उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के पश्चात् गुणव्रतो मे तीसरा स्थान रक्खा गया है। विवेक की अपेक्षा देखा जाय, तो यह व्रत दिग्व्रत और भोगोपभोग व्रत की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। अत एक स्थान पर इसे गुणव्रतो में पहला स्थान भी दिया है।

३. फल : सम्पत्ति, समय और शक्ति की बचत हो। बुद्धि व जीवन निर्मल रहे, अविवेकजन्य अकस्मात् दुर्घटना, अग्निकाड आदि न हो। वचन से महाभारत जैसे वैर-विरोध, गृह-युद्ध आदि न हो। लोक, विवेक की प्रशसा करे। जन्मान्तर मे उक्त फल के साथ अकारण शत्रु न बने, अकारण असत्य आपेक्ष आदि न लगावें, अकारण अन्य कोई छोटी-मोटी आपत्तियाँ न आवें।

❖

पाठ १६ सोहलवाँ

१४. 'सामायिक व्रत' व्रत पाठ

नववाँ	: नववाँ
सामायिक व्रत ।	: समभाव की आय वाला व्रत ।
†सावज्ज जोग	: सावद्य (पापसहित) योग का
पच्चक्खामि	: प्रत्याख्यान करता हूँ ।
जावनियमं	: यावत् (एक मुहूर्त आदि) नियम तक
पज्जुवासामि	: (इस व्रत का) पालन करता हूँ

दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ।‡

मनोरथ पाठ*

ऐसी मेरी सद्दहणा	: 'सामायिक का यह स्वरूप है और यह करने योग्य है ?' ऐसी मेरी श्रद्धा है
प्ररुपणा तो है	: अन्य के समक्ष भी ऐसा ही कहता हूँ

सामायिक का अवसर आये सामायिक करूँ, तब फरसना (पालन) करके शुद्ध (निर्मल) होऊँ ।

---

†'करेमि भन्ते ! सामाइयं' ।

‡तस्स भन्ते ! · · · ४ । दोनों स्थानों पर इतना पाठ और मिलाकर इस व्रत पाठ से सामायिक ली जाती है ।

*प्राय सामायिक लेकर प्रतिक्रमण किया जाता है, अतः उस समय यह मनोरथ पाठ नहीं बोलना चाहिये ।

अतिचार पाठ[1]

ऐसे नववें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा-ते आलोउं—	नववे सामायिक व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—
१. मरण-दुप्पणिहाणे	: मन ,,
२. वय-दुप्पणिहाणे	: वचन ,,
३ काय-दुप्पणिहाणे	: काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों
४. सामाइयस्स सइ अकरणया	: सामायिक की स्मृति (कब ली ? आदि) न की हो,
५ सामाइयस्स अण-वट्ठियस्स करणया	: समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

पाठ १७ सत्रहवाँ

१५. 'दिशावकासिक व्रत' व्रत पाठ

दसवाँ देसावगासिक व्रत[2] दिन-दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशा मे जितनी भूमिका की मर्यादा रक्खी

---

[1] इस अतिचार व प्रतिक्रमण पाठ से सामायिक पाली जाती है ।

[2] करेमि भंते ! देसावगासिय ।

है, उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, जितनी भूमिका की मर्यादा रक्खी है, उसमे जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है, उसके उपरांत उपभोग परिभोग निमित्त से भोग भोगने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि, एगविहं तिविहेणं, न करेमि, मणसा वयसा कायसा‡*

अतिचार पाठ†

ऐसे दशवें दिशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—ते आलोउं—

दशवे दिशावकाशिक व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउं—

१. आणवणप्पओगे : नियमत सीमा से बाहर की वस्तु मँगवाई हो
२. पेसवणप्पओगे : (नौकर आदि से) भिजवाई हो
३ सद्दाणुवाए : (खाँसी आदि) शब्द करके चेताया हो

---

‡तस्स भन्ते ·····४। दोनों स्थानों पर इतना पाठ और मिलाकर इस व्रत पाठ से दिशावकाशिक व्रत लिया जाता है। शेष लेने की विधि सामायिक लेने की विधि के समान है।

*श्रावक प्राय प्रतिदिन १४ नियम आदि से अहोरात्र दिशावकाशिक व्रत करता रहता है, अत· इसके लिए भावना पाठ नहीं बोला जाता।

†इस अतिचार तथा प्रतिक्रमण पाठ से दिशावकाशिक व्रत पाला जाता है। शेष विधि सामायिक पालने की विधि के समान है। भिन्नता यह है कि सम्म काएण ····। आदि के पहले 'देशावगासियं' बोलना चाहिए।

४. रूवाणुवाए : रूप (या अंगुली आदि) दिखाकर अपने भाव प्रकट किये हो

५. बहिया-पुग्गल-पक्खेवे : ककर आदि (बाहर) फेककर दूसरो को बुलाया हो

जो मे देवसियो : इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई

अइयारो कओ : दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'दिशावकाशिक व्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० दिशावकाशिक व्रत किसे कहते हैं ?

उ० छठे व्रत मे, यावज्जीवन, वर्ष, चातुर्मास आदि के लिए जो **दिशा** को मर्यादा की थी, उसका पक्ष, दिन, मुहूर्तादि के लिए और भी अधिक अवकाश (सक्षेप) करना तथा जो दिशा मर्यादा एक करण एक योग से की थी, उसे दो करण तीन योग से करना 'दिशावकाशिक व्रत' है। इसी प्रकार अन्य भी पहले से लेकर आठवे व्रत तक मे जो भी हिंसा आदि की मर्यादा की, उसे कम करना भी 'दिशावकाशिक व्रत' मे है।

प्र० . **आठो ही व्रतो के संक्षेप** का उदाहरण बताइए।

उ० जैसे—'आज मैं सम्पूर्ण दिन या मुहूर्त दो मुहुर्त आदि तक सापराधी त्रस पर भी हाथ भी नही चलाऊँगा (अहिंसा), छोटी झूठ भी नही बोलूंगा, मौन रक्खूंगा (सत्य), किसी का तिनका भी बिना पूछे-माँगे नही लूंगा (अचौर्य), स्त्री का स्पर्श भी नही करूँगा (ब्रह्मचर्य), अमुक परिमाण से अधिक परिग्रह मिलने पर अपना करके नही रक्खूंगा (परिग्रह परिमाण व्रत) अपने गाँव-नगर से बाहर नही जाऊँगा, गाँव-

नगर मे भी अपने घर दुकान या नौकरी के स्थान से अन्य स्थलों पर नही जाऊँगा (दिग्व्रत), 'पच्चीस द्रव्य' से उपरांत नही लगाऊँगा'—इत्यादि जो द्रव्यादि उपभोग-परिभोग पदार्थों की मर्यादा की है, उन्हे घटाकर आज १०. आदि से अधिक द्रव्य भोग मे नही लूँगा। अमुक परिमाण मेआय हो जाने के पश्चात् कर्म या व्यापार नही करूँगा (उपभोग परिभोग व्रत) देवादि के लिए अर्थदण्ड भी नही करूँगा (अनर्थ दण्ड व्रत), इत्यादि प्रकार से प्रतिदिन आठ व्रतो का सक्षेप किया जा सकता है।

प्र० . वर्त्तमान मे व्रत सक्षेप कैसे किया जाता है ?

उ० : वर्त्तमान मे **चौदह नियमो** से कुछ व्रतो का प्रतिदिन सक्षेप किया जाता है। वे नियम इस प्रकार हैं .

१. सचित्त—पृथ्वीकायादि की मर्यादा। २. द्रव्य—खान-पान सम्बन्धी द्रव्यो की मर्यादा। ३. विगय—की मर्यादा। ४. पन्नी—पगरखी आदि की मर्यादा। ५ ताम्बूल—मुखवास की मर्यादा। ६. वस्त्र—की मर्यादा। ७. कुसुम—पुष्प, इत्र की मर्यादा। ८ वाहन—की मर्यादा। ९. शयन—योग्य पदार्थों की मर्यादा। १०. विलेपन—द्रव्यो की मर्यादा। ११ ब्रह्मचर्य—की अधिक मर्यादा। १२ दिग्—दिशा की अधिक मर्यादा। १३. स्नान—की सख्या और जल की मर्यादा। १४ भक्त—एक वार, दो वार आदि भोजन की मर्यादा। इन चौदह वोलो मे ११वे वोल से चौथे व्रत का, १२वे वोल से छठे व्रत का और शेप वोलो से सातवें व्रत का सक्षेप किया जाता है।

कई श्रावक १. असि (खड्ग), २. मपी (स्याही) और कृपि (खेती) की भी मर्यादा करते है, अर्थात् मैं इतनी आय हो जाने के पश्चात्, १. मूल वस्तुओ से नई वस्तुओ का निर्माण या

२ वस्तुओ का क्रय-विक्रय या ३ मूल वस्तुओं का उत्पादन नही निर्मित करूँगा।' ऐसे प्रत्याख्यान भी लेते है।

पाठ १८ अट्ठारहवाँ

१६. 'पौषधव्रत' व्रत पाठ

ग्यारहवाँ	: ग्यारहवाँ
पडिपुण्ण	: प्रतिपूर्ण (चउव्विहाहार, निराहार)
पौषधव्रत	· आत्मा का विशेष पोषक व्रत
†१. असण	: अशन (अन्नाहार और विगय)
पाण	: पान (धोवन या गरम जल)
खाइम	: खाद्य (फल, मेवा, औषधि आदि)
साइमं	: स्वाद्य (लोग सुपारी आदि इन चारो आहार)
का पच्चक्खाण	: का प्रत्याख्यान करता हूँ
२ अबंभ सेवन	: मैथुन सेवन
का पच्चक्खाण	: का प्रत्याख्यान करता हूँ
३ मणि-सुवण्ण	: मणि, सोना आदि के आभूषण
का पच्चक्खाण	: पहनने का प्रत्याख्यान करता हूँ
माला-	: फूलमाला पहनने का
वण्णग-	: (कस्तूरी आदि के) वर्ण-रग का तथा
विलेवण-	: (चन्दनादि के) विलेपन का

†'करेमि भते ! पडिपुण्ण पोसह'।

का पच्चक्खाण	: प्रत्याख्यान करता हूँ
४. सत्थ-मुसलादि	: शस्त्र, जैसे मूशल आदि को काम मे
सावज्ज-जोग-सेवन	: लेने रूप सावद्य योग सेवने का
का पच्चक्खाण	: प्रत्याख्यान करता हूँ

जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि। दुविह तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा,†।

मनोरथ पाठ

ऐसी मेरी श्रद्दहणा प्ररुपणा है, पौषध का अवसर आये, पौषध करूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ।

अतिचार पाठ‡

ऐसे ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—ते आलोउं—	ग्यारहवे प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलाउ—
१. अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय सेज्जा-संथारए	: पौषध मे शय्या-सथारा न देखा (न प्रति लेखा) हो या अच्छी तरह (विधिसे) न देखा हो।
२ अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासथारए	: पूंजा न हो या अच्छी तरह (विधि) से पूंजा न हो।

---

†तस्स भंते। .. ४.। दोनों स्थानों पर इतना पाठ और मिलाकर इस व्रत पाठ से पौषध लिया जाता है। शेष विधि सामायिक के समान।

‡इस अतिचार व प्रतिक्रमण पाठ से पौषध पाला जाता है। शेष विधि सामायिक पालने के समान है। भिन्नता यह है कि 'सम्म काएणं ·· · · ·। के पहले (पडिपुण्ण) पोसह' बोलना चाहिए।

३. अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवरण-भूमि	: उच्चार-प्रश्रवरण की भूमि न देखी (न प्रतिलेखी) हो या अच्छी तरह (विधि से) न देखी हो
अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चाररण-पासवरण-भूमि	: पूँजी न हो या अच्छी तरह (विधि से) पूँजी न हो
पोसहस्स सम्म अरणणुपालरणया	: उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो।
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई दिन सबधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'पौषध व्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र० : पौषधमे १ आहार, २ अब्रह्म, ३ शरीर-सत्कार और ४. सावद्ययोग्य—ये **चारो बोल छोड़ना आवश्यक** है क्या ?

उ० आहार को छोडकर शेष तीनो बोल छोडना आवश्यक हैं। आहार मे चारो आहार छोडे भी जा सकते है, तीनो आहार भी छोडे जा सकते है कदाचित् चारो आहार किये भी जा सकते हैं।

प्र० पौषध का **न्यूनतम काल** कितना है ?

उ० (उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार) न्यूनतम काल चार प्रहर है। चार प्रहर रात्रि के भी हो सकते हैं, तथा दिन के भी हो सकते हैं, पर आहार-त्याग के चार प्रहर केवल दिन के नही हो सकते। अर्थात् दिन को आहार न करके रात्रि भोजन करे।'—ऐसा नही हो सकता।

प्र० पौषध के कितने प्रकार है ?

उ० : दो प्रकार है—१ प्रतिपूर्ण और २ देश। जिसमें चारो आहार सर्वथा छोडे जायँ, वह **'प्रतिपूर्ण पौषध'** है तथा जिसमे पानाहार या चारो आहार किये जायँ, वह **'देश पौषध'** है।

प्र० वर्त्तमान मे देश पौषध को क्या कहते है ?

उ० : जिसमे मात्र पानी पीया जाता है, ऐसे तिविहार उपवासयुक्त को **दसवां** (यह 'देश' का अपभ्रंश दिखता है) **पौषध** कहते है। जिसमे चारो आहार किये जाते है, ऐसे दिन के या दिन रात्रि के पौषध को **दया** कहते है। जिसमे चारो आहार किये जाते है, ऐसे रात्रि के पौषध को **संवर** कहते है।

प्र० : आठ प्रहर से कम पौषध करने वाले का और दया रूप पौषध करने वालो का **शास्त्रीय उदाहरण** दीजिए।

उ० जेसे 'शखजी' ने प्रारम्भ मे आठ प्रहर से कम का पौषध ग्रहण किया था तथा पुष्कली आदि ने खाते पीते आठ प्रहर से कम का पौषध किया था।

प्र० पानी पीकर **देश (दसवां) पौषध** करने वाले को क्या **पाठ** वोलना चाहिए ?

उ० : **'करेमि, भंते ! देस पोसहं, असणं, खाइमं साइमं का पच्चक्खाण** कहकर 'अबभ सेवण का पच्चक्खाण' आदि शेष पाठ प्रतिपूर्ण पौषध के समान कहना चाहिए।

अतिचार पाठ

ऐसे बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—ते आलोउं—	बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—
१. सचित्त-निक्खेवणया	: अचित्त (अशनादि) वस्तु, सचित्त (जलादि) पर रक्खी हो,
२. सचित्त-पिहणया	: अचित्त वस्तु सचित्त से ढंकी हो,
३. कालाइक्कमे	: साधुओ को भिक्षा देने का समय टाल दिया हो,
४. परोवएसे	: आप सूझता (शुद्ध) होते हुए भी दूसरो से दान दिलाया हो,
५. मच्छरियाए	: मत्सर (इर्ष्या) भाव से दान दिया हो
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारो से मुझे जो कोई दिन संबधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

प्रश्नोत्तरी

प्र० : क्या साधु-साध्वियाँ ही **दान के पात्र** है ?

उ० : 'साधु-साध्वियाँ दान के उत्कृष्ट (उत्तम) पात्र है ।' अत: उनका बारहवे व्रत मे उल्लेख किया है। परन्तु उस उल्लेख से 'प्रतिमाधारी श्रावक, व्रतधारी श्रावक और सामान्य स्वधर्मी सम्यक्त्वी भी दान के पात्र है।' यह समझना चाहिए। प्रतिमाधारी श्रावक दान के उत्तम पात्र की गणना मे आता

निग्गंथे,	: निर्ग्रन्थो (स्त्री और परिग्रह के त्यागियो) को
फासुय-	: प्रासुक (जीवरहित, अचित्त)
एसणिज्जेणं	: एषणीय (आधा कर्म आदि दोष-रहित)
१.-२. असण-पाण-	: भोजन-पानी
३.-४. खाइम-साइम-	: खाद्य स्वाद्य
५. वत्थ-	: (सफेद रंग का सूती) वस्त्र
६. पडिग्गह-	(लकडा, तुम्बा और मिट्टी के) पात्र
७. कंबल-	: (ऊनी सफेद) कम्बल
८. पाय-पुच्छणेणं	: रजोहरण (ओघा) (तथा)
पडिहारिय	: प्रातिहार्य (जिन्हे साधु, लौटा देते हैं
६.-१० पीढ-फलग	: (ऐसे) चौकी, पट्टा
११. सेज्जा-	: पौषधशाला-घर
१२. संथारएण	: (तृण आदि का) आसन
१३. ओसह—	: औषधि (एक द्रव्य वाली, जैसे हरड़े)
१४. भेसज्जेणं	: भेषज (अनेक द्रव्य वाली, जैसे त्रिफला)
पडिलाभेमाणे	: बहराता (गुरु-बुद्धि से देता) हुआ
विहरामि	: विहार करता हूँ (रहता हूँ)

मनोरथ पाठ

ऐसो मेरी श्रद्धहणा प्ररूपणा तो है, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ।

समिति पालना। पौषध मे उभयकाल प्रतिलेखन करना। दिशावकाशि के व्रत मे दिन-रात्रि तक अपने परिमाण का ध्यान रखना। विशेष इच्छा या आवश्यकता होने पर आत्मा पर अकुश लगाना।

६. **भावना :** सूक्तादि पर विचार करना। 'धन्य हैं, वे मुनि जो यावज्जीवन १ सामायिक २ पौषध ग्रहण किये हुए है और ३. धर्म के लिए आवश्यक उपकरण और भोजन-पान के अतिरिक्त सब त्यागे हुए है। मैं ऐसा कब बनूगा ?' यह मनोरथ करना। अपूर्णता का खेद करना। सामायिक पौषध आदि को दृढता से पालने वाले कामदेव, शख, कुण्डकोलिक आदि के चरित्रो पर ध्यान लगाना।

पाठ १९ उन्नीसवाँ

१७. 'अतिथि-संविभाग व्रत' व्रत पाठ

बारहवाँ 'अतिथि : अतिथि (जिनके आने की तिथि नियत नही)

संविभाग : उन्हे विधि से अशन आदि का कुछ भाग देना

व्रत।' : रूप व्रत

समणे : श्रमण (मोक्षानुकूल तप-श्रम करने वाले)

३. स्थान : पहले ८ आठ व्रतो मे जो व्रत मुख्य था, उसे पहले और जो व्रत गौण था, उसे पीछे स्थान दिया था, पर इन तीनो मे जो व्रत गौण है, उसे पहले और जो मुख्य है, उसे पीछे स्थान दिया है। इस कारण ८ व्रतो के पश्चात् अल्पकाल का होने से सामायिक को ९ वाँ स्थान दिया है। सामायिक से अधिक काल का होने से दिशावकाशिक को १० वाँ स्थान दिया है तथा दिशावकाशिक से अधिक सवरयुक्त होने से पौषध को ११ वाँ स्थान दिया है।

४. फल : १. सामायिक से एकेन्द्रियादि जीवो को भी अभयदान मिलता है। सर्वजगज्जीव-मैत्री का पालन होता है। सामायिक के प्रभाव से पूर्व के आठ व्रत अधिक निर्मल, अधिक बलवान् और अधिक विकसित बनते है। २ दिशावकाशिक पूर्व के आठ व्रतो का सक्षेप रूप होने से उन आठ व्रतो से जो फल हैं, वे और भी अधिक रूप मे मिलते हैं। ३. 'पौषध' सामायिक व्रत का ही लम्बे काल का विशिष्ट रूप होने से उससे सामायिक के ही फल विशेष रूप मे मिलते हैं।

५. कर्त्तव्य : सामायिक और पौषध के काल तक जागृत अवस्था मे मन मे धर्म-विचार करना, आहार, काम-भोग, शरीर-सत्कार, घर-व्यापार आदि के विचार न करना। मुख से धर्म-कथा, शास्त्र-स्वाध्याय, स्तुति आदि करना, घर, व्यापार, स्त्री, भोजन, देश, राज्य आदि की विकथाएँ न करना। काया को उचित आसन से रखना और रात्रि को यतना से सोना। इस प्रकार तीन गुप्ति का पालन करना। यतना से चलना, विवेक से बोलना, यदि गौचरी की दया की हो, तो निर्दोष गौचरी करना और राग-द्वेष रहित परिमित आहार करना, यतना से उठाना-रखना, देख पूज कर परठना। इस प्रकार पाँच

३ जाति-स्मरण, ४ देव-दर्शन और ५ अवधिज्ञान तक हो सकता है।

२. उद्देश्य : १. श्रावक गृहस्थी को त्यागने मे असमर्थ होने के कारण 'गृहस्थ जीवन कैसे अधिक-से-अधिक निष्पाप बने ?' यह बताने के लिए पहले के आठ व्रतो का कथन किया है। पर 'गृहस्थ सामान्यतया प्रतिदिन एक मुहूर्त भर के लिए तो गृहस्थी का त्याग करके साधु के समान आराधना कर सकता है।' अत उस उद्देश्य-पूर्ति के लिए सामायिक व्रत का कथन किया है।

२ 'पहले के आठ व्रत प्राय यावज्जीवन आदि लम्बे समय के लिए धारण किये जाते हैं। अत श्रावक लम्बे समय को ध्यान मे रखकर सम्पूर्ण पापो की अपेक्षा तो बहुत कम पाप शेष रखता है, पर प्रतिदिन लगाने वाले पापो की अपेक्षा बहुत अधिक पाप शेष रखता है। वे सब ही पाप सामायिक के द्वारा तो मुहूर्त भर के लिए दो करण तीन योग से रुक जाते हैं, पर शेष दिन भर के लिए वे पाप खुले हो रहते है। 'उनमे से उस दिन की अपेक्षा जितना पाप करना है, उसे रख कर शेष का त्याग किया जाय।' इस उद्देश्य से दिशावकाशिक व्रत का कथन किया है।

३ प्रतिमास या प्रति वर्ष मे श्रावक कुछ दिन-रात ऐसे भी निकाल सकता है, जिस दिन-रात को वह ३० ही मुहूर्त (२४ ही घटे) पापो का सर्वथा त्याग कर दे। इसलिए ऐसे उन दिनो को पूर्ण धर्ममय बनाने के उद्देश्य से ग्यारहवे व्रत का कथन किया है।

प्र० : पहले सामायिक ली हुई हो और पीछे पौषध की भावना जगे, तो सामायिक पाल कर पौषध लें या सीधे ही ?

उ० : सीधे ही। क्योंकि पालकर लेने से बीच मे अव्रत लगता है, कदाचित् पालते-पालते उसकी भावना मन्द भी हो सकती है।

प्र० : पौषध लेने के पश्चात् सामायिक का काल आ जाने पर सामायिक पालें या नहीं ?

उ० सामायिक विधिवत् न पाले, क्योकि पौषध चल रहा है। पर सामायिक-पूर्ति की स्मृति के लिए नमस्कार मत्र गिन लें, जिससे फिर निद्रा, आहार, निहारादि कर सके।

प्र० · पौषध में सामायिक करें या नहीं ?

उ० · करना सामान्यतः विशेष लाभप्रद नही है। परन्तु यदि कोई 'निद्रा आहार, निहार, आलवन आदि इतने समय नही करूगा।' आदि के रूप सामायिक करे, तो वह सामायिक कर सकता है।

'शिक्षाव्रत' निबंध

१. सूक्त : श्रावक जितने मुहूर्त तक सामायिक करता है, उतने मुहूर्त के लिए वह साधु के समान हो जाता है। २. प्रतिदिन दिशावकाशिक करने से (१४ नियम करने से मेरू जितना पाप घटकर राई जितना पाप रह जाता है। ३ प्रतिमास निरतिचार छह पौषध करने पर श्रावक को १. अपूर्व धर्म-चिन्तन, २ अपूर्व सुफलवान् शुभ स्वप्न-दर्शन,

और यदि इनकी छूट सामायिक मे दी जायगी, तो सामायिक मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की कोई आराधना नहीं हो सकेगी तथा पौषध विशेष काल का है, अतः वह इन छूटो के बिना सामान्य लोगों को पालन करना कठिन होता है और बिना इन छूटो के सामान्य लोगो की ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की आराधना मे समाधि नही रहती तथा २. उदाहरणमय उत्तर यह है कि जैसे व्यापारी बडे ग्राहक को विशेष सुविधाएँ देता है, छोटे ग्राहक को नही देता। इसी प्रकार भगवान् ने पौषध वाले को बहुत धर्म का ग्राहक होने से विशेष सुविधाएँ दी हैं तथा सामायिक वाले को अल्प धर्म का ग्राहक होने से सुविधाएँ नही दी हैं।

प्र० : प्रतिलेखन-प्रमार्जन किसे कहते है?

उ० : 'मुखवस्त्रिका' आदि मे कोई जीव है या नही? इस दृष्टि से शीघ्रता आदि न करते हुए तथा शब्दादिक विषय-विकार या धर्मकथादिक कार्य न करते हुए 'उन्हे लगन से देखना **प्रतिलेखन** है तथा जीवादिक दीखने पर उन्हे कष्ट न हो' ऐसी यतना से उन्हे कोमल पूंजनी से हल्के हाथों से पूंजना तथा एकात सुरक्षित स्थान मे ले जाकर छोडना **प्रमार्जन** है। जीव न दीखने पर भी रात्रि को रजोहरण से आगे चलने की भूमि शुद्ध करना तथा दिन को पौषधशाला की सचित्त रज साफ करना आदि भी **प्रमार्जना** है।

प्र० : प्रतिलेखन-प्रमार्जन किस क्रम से करना चाहिए?

उ० : उभयकाल पहले मुखवस्त्रिका, फिर पूंजनी, फिर वस्त्र, फिर सस्तारक, फिर पौषधशाला, फिर मल-मूत्र भूमि और गौचरी के पात्र हो, तो फिर उन पात्रो का प्रतिलेखन करना चाहिए।

प्र० : चारो आहार करके देश पौषध **संवर या (दया)** करने वाले को क्या **पाठ** बोलना चाहिए ?

उ० : **करेमि, भंते ! देस-पोसहं अबंभसेवरण का पच्चक्खाण** इत्यादि। शेष पाठ पूर्ववत् बोलना चाहिए। जो सवर या दया एक करण एक योग से करना चाहे, उन्हे 'दुविह तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा' के स्थान पर 'एगविह एगविहेण न करेमि कायसा' पाठ बोलना चाहिए।

प्र० : सामायिक और पौषध में क्या **अन्तर** है ?

उ० : एक सामायिक केवल एक मूहूर्त (४८ मिनिट) की होती है, जब कि पौषध कम-से-कम भी चार प्रहर का (लगभग १२ घटे का) होता है। सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जब कि पौषध चार और उससे अधिक प्रहर का होने से उसमें निद्रा भी ली जा सकती है और आहार भी किया जा सकता है, इत्यादि सामायिक और पौषध मे कुछ अन्तर हैं। जैसे दिशावकाशिक व्रत पहले के आठ व्रतो का विशिष्ट बडा रूप है। इसी प्रकार पौषध व्रत सामायिक व्रत का विशिष्ट बडा रूप है।

प्र० : जब कि ग्यारहवाँ व्रत सामायिक व्रत से बडा है और सामायिक का विशिष्ट रूप है, तब उसमे निद्रा, आहार, निहार (शौच) आदि की इतनी छूट क्यो ? और जब कि सामायिक व्रत ग्यारहवे व्रत से छोटा है, तब उसमे इनकी छूट क्यो नही ?

उ० : १. सामान्य उत्तर तो यह है कि 'सामायिक अल्पकाल की है, अतः वह इन छूटो के विना हो सकती है

है। व्रतधारी मध्यम पात्र है और स्वधर्मी (सम्यक्त्वी) जघन्य निम्न पात्र है।

प्र० : दीन-दुःखियो को दान देना इस व्रत मे आता है या नही ?

उ० : दीन-दुखी अनुकम्पा-दान के पात्र हैं। अनुकपा से पुण्य कर्म का बध होता है। धर्म का उद्देश्य कर्मबन्ध को तोडना है, अतः जिन्हे दान देने से मुख्यतया निर्जरा होती है, उन साधु-साध्वी आदि को दान देना ही इस व्रत मे लिया है।

प्र० : आधाकर्म आदि दोष किसे कहते है ?

उ० साधु के लिए अशनादि बनाना, उनके लिए खरीदना आदि को। विशेष के लिए 'समिति गुप्ति का स्तोक' देखो।

प्र० · क्या प्रासुक एषणीय दान ही देना चाहिए ?

उ० : जो जैसा पात्र हो, उसके अनुसार उसे दान दिया जाता है। निर्दोष अशनादि लेने वाले को निर्दोष ही देना चाहिए।

प्र० · क्या देय वस्तुएँ चौदह ही है ?

उ० ये चौदह वस्तुएँ प्राय काम मे आती हैं, अत इनका उल्लेख किया है। इनसे अन्य भी धर्मोपयोगी सूई, कैंची, पुस्तक आदि समझ लेने चाहिएँ।

प्र० : 'सचित्त निक्षेप' के उदाहरण दीजिए।

उ० : जैसे रोटी-पात्र को लवण-पात्र पर रखना, धोवन-पात्र को सचित्त जल के घडे पर रखना, खिचडी आदि को चूल्हे पर रखना, मिठाई आदि को हरी पत्तल पर रखना आदि।

प्र० : 'सचित्त निक्खेवणया और पिहणया' से **और क्या समझना चाहिए ?**

उ० : साधु दान के योग्य पदार्थों को जहाँ पर, जिस स्थिति मे रखने से साधु उन्हे न ले सके, ऐसे स्थान और स्थिति मे रखना। जैसे अचित्त अशनादि को सचित्त पदार्थों से छुआ-कर या सचित्त पदार्थों मे मिलाकर रखना, नाले मे या ऊँचे आले मे रखना आदि।

प्र० : **कालाइक्कमे** मे और क्या सम्मिलित है ?

उ० : भोजन के समय द्वार बन्द रखना, स्वय घर के बाहर रहना, रात्रि के समय दान की भावना भाना, साधुओ को सडी हुई वस्तुएँ देना आदि।

प्र० **'परोवएसे'** मे और क्या सम्मिलित है ?

उ० : अपनी वस्तु पराई बताना, कोई दान का उपदेश दे, तो उसे कहना—आप ही दीजिए—इत्यादि।

प्र० : **मत्सरदान** किसे कहते है ?

उ० : अपने से अधिक दानी के प्रति जलते हुए दान देना, विशिष्ट दानी कहलाने के लिए दान देना, दान देकर पछताना आदि को।

'अतिथि संविभाग व्रत' निबंध

१. **सूक्त** : वेश और गुणयुक्त साधु-श्रावक को दान देने वाला उन्हें समाधि उत्पन्न करता है, फलस्वरूप वह भी भविष्य मे समाधि प्राप्त करता है—भग०। २ वेश और गुणयुक्त साधु-श्रावक को दान देने वाला सम्यक्त्व प्राप्त करता है, यावत् सब दुःखो का

अन्त करता है—भग०। ३. वेश और गुणयुक्त साधु-श्रावक को दान देना उत्तम खेत मे अपना बीज बोना है—उत्तरा०।

२. उद्देश्य : वेश और गुणयुक्त साधु-श्रावक को दान देकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व अनुमोदना प्रकट करना, उनके धर्म पालन मे सहायक बनना तथा धर्मदान गुण को जीवनगत बनाना।

३. स्थान : पहले के ग्यारह व्रत कठिन हैं, क्योकि उनको धारण करने मे स्वय को हिंसादि का त्याग करना होता है। परन्तु यह व्रत सरल है, क्योकि इसमे स्वय को कुछ भी त्याग नही करना पडता, केवल त्यागियो को दान ही देना पडता है। अतः सबसे सरल होने के नाते इस व्रत को सभी व्रतो के अन्त मे बारहवाँ स्थान दिया है।

४. कर्त्तव्य : साधुओ को कौनसी वस्तुएँ आवश्यक होती है ? वे शुद्ध (सुभती) कैसे रह सकती है ? साधुओ का योग कब कैसे मिल सकता है ? आदि बातो का ध्यान रखना। योग मिलने पर स्वागत करके निर्दोष वस्तुएँ स्वय उलट भाव से देना। उन्हे चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, माता-पिता आदि के समान समझना। श्रावक-श्राविकाओ को भाई-बहन ज्यो समझना। चतुर्विध सघ के प्रति पूरा अनुराग रखना।

५. भावना : सूक्तादि पर विचार करना। 'धन्य हैं, वे जो ससार त्याग कर आत्म-साधना कर रहे है। मैं अधन्य हूँ कि ससार-कीच मे फँसा हूँ। कम-से-कम मुझे उन्हे दान देने का स्वर्ण अवसर कब मिलेगा ? इसका मनोरथ करना।

साधुदान का योग न बैठे, तो उसका खेद करना। दान देने वाले सुबाहुकुमार, शालीभद्र आदि के चरित्र पर ध्यान देना।

पाठ २० वाँ

१८ 'संलेखना' 'तप का पाठ'

अह, भते- : अब, हे भगवन्।
अपच्छिम- : इस जीवन मे सबसे पश्चात्
मारणांतिय- : मरण-रूप अन्तिम समय मे
सलेहणा : सलेखना, (शरीर व कषाय को कृश बनाने वाले, आलोचना सहित तप) को
झूसणा : (स्वीकार कर) सेवन करता हूँ (तथा)
आराहणा। : अन्तिम समय तक पालन करता हूँ।

सलेखना विधि

पौषधशाला : पौषधशाला का
पूंजकर : (रजोहरणादि से) प्रमार्जन कर
उच्चार-पासवण : मल-मूत्र (परठना पडे, इसलिए
भूमिका : उसकी) भूमि
पडिलेहकर : का प्रतिलेखन कर
गमणागमणे : इर्यापथिक का प्रतिक्रमण कर,
पडिक्कम कर (तिक्खुत्तो, नमस्कार मत्र, 'इच्छाकारेण' 'तस्सउत्तरी' 'इच्छाकारेण' या 'लोगस्स' का ध्यान तथा प्रकट लोगस्स कह कर

दर्भादिक : दर्भ (तृण विशेष) आदि से बना
संथारा संथार कर : बिछौना बिछाकर
दर्भादिक संथारा : उस दर्भादि के सथारे पर
दुरूहकर : चढकर

पूर्व या उत्तर (या ईशानकोण) सन्मुख पल्यंकादिक आसन से बैठकर

करयल : दोनो हथेलियो को
संपरिग्गहियं : (विधिपूर्वक) जोडकर
सिरसावत्तं : शिर पर तीन प्रदक्षिणावर्त लगा कर
मत्थए अंजलि कट्टु : मस्तक पर अञ्जलि को स्थापन करके
एव वयासि : इस प्रकार कहता हूँ।

सलेखना के लिए नमस्कार मगल

नमोत्थुणं : नमस्कार हो
अरिहताणं : अरिहन्त
भगवताणं : भगवन्तो को
जाव सपत्ताणं : यावत् मोक्ष-प्राप्त हुओ को

ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके 'नमोत्थुणं अरिहताण भगवताणं

जाव संपाविउकामाणं' : यावत् मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा वालो को

ऐसे जयवन्त वर्त्तमान काल मे महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हुए तीर्थंकर भगवान् को नमस्कार करके

नमोत्थुणं मम : नमस्कार हो, मेरे
धम्मायरियस्स : धर्माचार्य
धम्मोवदेसगस्स : धर्मोपदेशक (साधुजी) को

ऐसे अपने धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हूँ। साधु-प्रमुख चारो तीर्थ को खमा (क्षमायाचना) कर सर्व जीव-राशि को खमा कर, पहले जो व्रत आदरे हैं, उनमे जो (आज तक) अतिचार दोष लगे है, वे सर्व आलोच (न) कर, पडिक्कम (प्रतिक्रमण) कर, निन्दकर, निःशल्य हो कर

अनशन का व्रत पाठ

सव्वं पाणाइवायं	: सब (सम्पूर्ण) १ प्राणातिपात (हिंसा)
पच्चक्खामि	: पच्चक्खता हूँ (प्रत्याख्यान करता हूँ)
सव्व मुसावायं	: सब २ मृषावाद (झूठ)
पच्चक्खामि	: पच्चक्खता हूँ
सव्वं अदिण्णादाणं	: सब ३ अदत्तादान (चोरी)
पच्चक्खामि	: पच्चक्खता हूँ
सव्वं मेहुणं	: सब ४. मैथुन (अब्रह्मचर्य)
पच्चक्खामि	: पच्चक्खता हूँ
सव्वं परिग्गहं	: सब ५ परिग्रह (नव प्रकार का)
पच्चक्खामि	: पच्चक्खता हूँ
सव्वं कोहं माणं जाव	: सब ६ क्रोध, ७ मान, यावत्
मिच्छा-दंसण-सल्लं	: १८ मिथ्यादर्शन शल्य (मिथ्यात्व) यो
सव्वं अकरणिज्जं	: सभी अकरणीय (सावद्य)
जोग पच्चक्खामि	: योगो का प्रत्याख्यान करता हूँ
जावज्जीवाए	: यावज्जीवन के लिए
तिविहं तिविहेणं	: तीन करण तीन योग से
न करेमि	: (अट्ठारह ही पाप स्वय) न करता हूँ
न कारवेमि	: न कराता हूँ

करतंपि अन्नं : करते हुए अन्य का
न समणुजाणामि : अनुमोदन भी नही करता हूँ ।

ऐसे अट्ठारह पाप पच्चक्ख कर

सव्व असणं : सब अशन
पाण खाइमं साइमं : पान, खाद्य और स्वाद्य—यों
चउव्विहंपि : चारो ही
आहार पच्चक्खामि : आहार पच्चक्खता हूँ

ऐसे चारो आहार पच्चक्ख कर

†जं पि य इमं : और जो यह
सरीरं, इट्ठं : शरीर (मुझे) इष्ट (इच्छनीय) था
कंतं : कान्त (कमनीय) था
पियं : प्रिय (प्रेम का करण) था
मणुण्णं : मनोज्ञ (मनोहर) था
मणामं : मनाम (मनोरम) था
धिज्जं : (मुझे इससे) धैर्य
विसासियं : (मुझे इस पर) विश्वास था
संमयं : (मेरे लिए यह) समत (माननीय) था
अणुमयं : अनु (दोष दिखने पर भी) मत (माननीय) था
बहुमयं : बहुमत (बहुत ही माननीय) था
भण्डकरण्डसमाणं : आभूषण के करण्डिये समान था

---

†यहां से लेकर 'तिकट्टु' तक पाठ पादोपगमन (वृक्षमूल के समान एक निश्चल आसन से किये जाने वाले अनशन) से अन्य अनशन करते समय न पढ़ें ।

रयण-करण्डगभूयं	: रत्नो के करण्डिये (पेटी के) समान था
मा णं सीयं	: (कही इसे) शीत (सर्दी) न हो
मा णं उण्हं	· उष्णता (गर्मी) न हो
मा णं खुहा	: भूख न लगे
मा ण पिवासा	: प्यास न लगे
मा णं वाला	: सर्प (आदि) न काटे
मा णं चोरा	चोर आदि का भय न हो
मा णं दंस-मसगा	: डास, मच्छरादि न सतावे
मा णं वाइयं	: न वात (वायु) रोग हो
पित्तियं, कप्फियं,	: न पित्त रोग हो, न कफ रोग हो
संभीम	: न भयकर
सण्णिवाइयं	: सन्निपात (दो या तीन दोष) हो
विविहा	: (यो) अनेक प्रकार के
रोगायका	: (विलम्ब से या शीघ्र मारने वाले) रोगातक
परीसहा	: (तथा भूख-प्यास के) परीसह
उवसग्गा	: (और देव आदि के) उपसर्ग (कष्ट)
फासा फुसन्तु	स्पर्श न करे। (ऐसा मै चाहता था ऐसे उस शरीर को भी)
चरमेहिं	: अन्त के
उस्सासनिस्सासेहिं	: उच्छ्वास निच्छ्वास (श्वासोच्छ्वास) तक
वोसिरामि	: त्याग करता हूँ
त्तिकट्टु	: ऐसे शरीर को वोसिरा के
कालं, अणवकंखमाणे,	: मृत्यु की चाह (तथा भय) न करते
विहरामि	: हुए विहार करता हूँ (विचरता हूँ)

मनोरथ पाठ

ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, संलेखना का अवसर आये, सलेखना करूँ, तब फरसना करके शुद्ध होउं।

अतिचार पाठ

ऐसे अपच्छिम मारणांतिय सलेहणा भूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते- आलोउ –	अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना, भूषणा, आराधना के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ —
१. इह-लोगा-ससप्प ओगे	: इस (मनुष्य) लोक के राजा चक्रवर्ती आदि सुखो की इच्छा की हो,
२ परलोगा-ससप्पओगे	: पर (मनुष्य से अन्य) लोक के देवता इन्द्र आदि सुखो की इच्छा की हो,
३. जीविया-संसप्पओगे	: (शाता और सेवा-प्रशसा देखकर) बहुत काल जीने की इच्छा की हो,
४. मरण-ससप्पओगे	: (अशाता और असेवा-अकीर्ति देखकर) शीघ्र मरने की इच्छा की हो,
५. काम-भोगा-सस पओगे	: (आहार आदि की या देवप्रदत्त) काम भोगो की इच्छा की हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारों मे से मुझे जो कोई दिन संबंधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'सलेखना' प्रश्नोत्तरी

प्र० : यहाँ सलेखना के व्रत पाठ से क्या समझना चाहिये ?

उ० 'सलेखना सब तपो मे मुख्य है, तथा उसका श्रावक

को नित्य मनोरथ करना चाहिए। इसलिए उसका यहाँ उल्लेख किया है। उससे यहाँ सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र के पश्चात् उपवास आदि सभी प्रकार के सम्यक्तप समझ लेने चाहियें। उपवासादि के प्रत्याख्यान-पाठ छठे 'प्रत्याख्यान आवश्यक' मे आयेगे।

प्र० : **तप के अतिचार** बताइए।

उ० : जो सलेखना के अतिचार हैं, प्रायः वे ही तप के अतिचार हैं—जैसे १. इस लोक के सुख की इच्छा करना २. परलोक के सुख की इच्छा करना ३. प्रशसा के लिए अधिक तप करना ४. अशाता देखकर (तप क्यो किया ? तप शीघ्र पूरा हो, आदि) चिन्ता करना ५. (आहारादि की या देव प्रदत्त) कामभोगो की इच्छा करना।

प्र० : **तप के फल** बताइए।

उ० : इहलोक दृष्टि से बाह्य तप से शरीर के रोग तथा विकार नष्ट होते हैं, शरीर दृढ बनता है। आभ्यन्तरतप से लोगो मे प्रीति, आदर, विनय आदि होता है। आध्यात्म दृष्टि से आत्मा के कर्म रोग तथा कर्म विकार नष्ट होकर आत्मा सशक्त बनती है, लब्धियाँ प्राप्त होती हैं, देव सेवा करते है, इत्यादि तप के कई फल हैं।

प्र० **नित्य रात्रि को सलेखना** कैसे करनी चाहिए ?

उ० : उसकी विधि भी मारणान्तिक सलेखना के समान ही है। विशेष 'विहरामि' इस पाठ से आगे 'यदि उठूं, तब तक जीऊँ, तो मुझे अनशन पारना कल्पता है अन्यथा यावज्जीवन अनशन है।' इतना और कहना चाहिए। तथा प्रातः

काल उठने के पश्चात् सामायिक पालने के समान विधि करके 'एयस्स नवमस्स' के स्थान पर 'सलेखना के अतिचार का पाठ' कहना चाहिए।

कई 'आहार शरीर उपाधि, पच्चक्खू पाप अठार। मरण आवे तो वोसिरे, जीउ तो आगार।१। इस एक दोहे से सथारा लेते हैं और नमस्कार मत्र गिन कर पार लेते हैं।

प्र० : **मारणान्तिक सलेखना** के समय के लिए कुछ **विशेष विधि** बताइए।

उ० : सलेखना के योग्य अवसर पर सलेखना की भावना होने पर जहाँ तक सभव हो, साधु-साध्वियो की सेवा मे या उनके अभाव मे जानकार अनुभवी श्रावक-श्राविका के पास जाना चाहिए अथवा उन्हे अपने स्थान पर निमन्त्रण देना चाहिए। उन्हे वन्दन कर अपने व्रत मे लगे अतिचारो की निष्कपट आलोचना करके उनसे प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए। फिर उनसे भावना और अवसर के अनुसार यावज्जीवन के लिए या कुछ काल के लिए आगार सहित अनशन लेना चाहिए। यदि किसी का भी योग न बैठे, तो स्वय आलोचना कर के 'जितना इसका प्रायश्चित होता है, वह मुझे स्वीकार है।' यह कहना चाहिए तथा स्वय अनशन लेना चाहिए। यदि तिविहाहार अनशन करना हो, तो 'पाण' शब्द नही बोलना चाहिए तथा 'ऐसे तीनो आहार पचक्ख कर' यो बोलना चाहिए। यदि गादी पलग आदि पर सोना पडे, खुले गृहस्थो से वैयावृत्य करानी पडे, सम्मूर्च्छिम विराधना टल न सके या और भी जो पाप न छूट सकें, उनका आगार रखना चाहिए।

प्र० : **उपसर्ग के समय संलेखना कैसे करनी चाहिए ?**

उ० जहाँ उपस्थित हो, वहाँ की भूमि का प्रतिलेखन कर 'नमोत्थुरण से ('जपि' से त्तिकट्टु का पाठ छोडकर) विहरामि' तक पाठ बोलना चाहिए। आगे 'यदि उपसर्ग से बचूं, तो मुझे अनशन पारना कल्पता है अन्यथा यावज्जीवन अनशन है।' इतना पाठ और कहना चाहिए। पालने की विधि पूर्ववत् है। पूर्ववत् दोहे से अनशन ग्रहण और नमस्कार मत्र से पारण भी किया जाता है।

प्र० . सलेखनायुक्त अनशन **आत्मघात है क्या ?**

उ० पहले तो यह समझ लेना आवश्यक है कि 'शरीरघात और आत्मघात दोनो पृथक्-पृथक् हैं।' जिससे शरीर का अन्त हो, वह देहघात है तथा जिससे आत्मा की अधोगति हो, अवनति हो, ससार-चक्र बढता हो, वह आत्मघात है।' इतनी बात समझ लेने पर यह समझना सरल है कि सलेखनायुक्त समाधिमरण से शरीरघात होता है, आत्मघात नही होता, क्योकि सलेखनायुक्त समाधिमरण मे आत्मा की उच्चगति होती है, उन्नति होती है तथा ससार-चक्र घटता है। जिस प्रकार राष्ट्रवादी के लिए स्वराष्ट्र के लिए देहोत्सर्ग करना अपराध नही, वरन् श्रेष्ठतम गौरव है, उसी प्रकार आत्मवादी के लिए, आत्मा के लिए शरीर-त्याग करना विराधना नही, वरन् श्रेष्ठतम आराधना है।

अब यदि शरीरघात भी देखें, तो शरीर एक दिन अवश्य ही नष्ट होने वाला है और कइयो की स्थिति तो ऐसी हो जाती है कि 'वे औषध आदि किसी भी उपाय से बचते हुए दिखाई नही देते।' ऐसी स्थिति मे पाप करते हुए, औषधि लेते हुए, इहलोक तथा शरीर-विदाई के प्रति आँसू बहाते हुए शोकाकुल

अवस्था मे ही मरना क्या कोई बुद्धिमानी है ? बुद्धिमान नास्तिक भी उस समय औषधि आदि छोडकर शोकरहित होकर शान्त भाव से मरना उचित समझेगा। अत समाधिमरण किसी भी दृष्टि से अनुपयुक्त नही, वरन् सर्वथा उपयुक्त है।

'संलेखना' निबन्ध

१. सूक्त : १ एक बार बाल मरण से मरने वाला जीव चार गति सम्बन्धी भावी अनन्त मरण की परम्परा खडी करता है और एक बार सलेखनायुक्त समाधिमरण से मरने वाला जीव चार गति सम्बन्धी भावी अनन्त मरण परम्परा से आत्मा को बचा लेता है।—भग०। २. समाधिमरण के मनोरथ मात्र से जीव पूर्व कर्मों की महा निर्जरा करता है और ससार का महा अन्त करता है।—स्थानाग। ३. एक घडी का सथारा कोटि-कोटि वर्ष के सयम से भी बढकर है। ४. इस विश्व मे तीर्थंकर भी अमर नही रहे, अतः अवश्यभावी मृत्यु से भय क्या खाते हो ? पुनर्जन्म से भय खाओ, जो मरण को अवश्यभावी बनाता है।

२. उद्देश्य : आराधना के अन्तिम मुख्य मरण अवसर को शान्ति और वीरतापूर्वक सफल बनाना।

३. स्थान : सम्यग्ज्ञान द्वारा अज्ञान, सम्यग्दर्शन द्वारा मिथ्यात्व और सम्यक्चारित्र द्वारा राग-द्वेष (अव्रत) को नष्ट करने के पश्चात् आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मों को नष्ट करना आवश्यक है। सम्यक्तप कर्मबन्ध को नष्ट करता है। सलेखना सम्यक्तपो मे सबसे शीर्ष स्थानीय है (और यह जीवन के भी शीर्ष समय मे की जाती है)। अत इसे आगमे-तिविहे दर्शन-सम्यक्त्व और १२ व्रतो के पश्चात् अन्तिम चौथा स्थान दिया है।

४. फल : मृत्यु का दु ख न हो। मृत्यु के समय शान्ति बनी रहे। देह, स्त्री, परिवार, परिग्रह छूटने का शोक न हो। 'आगे कैसी योनि मिलेगी ?' इसकी चिन्ता न हो। यहाँ से काल करके वैमानिक देव बने। जन्मान्तर मे अपमृत्यु न हो। बोधि तथा धर्म-प्राप्ति मे विरह न पडे। शीघ्र मोक्ष प्राप्त हो।

५. कर्त्तव्य : सलेखना करने के पश्चात् पाप के फल का, आत्मा की अनाहारिकता का, देह और आत्मा की पृथक्ता का तथा 'सभी सयोगो का वियोग निश्चित होता है।' इसका चिन्तन करे। सलेखना के पाँच अतिचारो का वर्जन करे। मरण को जीवन की सम्पूर्ण आराधना की सफलता-विफलता का प्रश्न समझ कर सलेखना मे अत्यन्त शान्त, वीर, दृढ और सावधान रहे।

६. भावना : सूक्तादि पर विचार करे। 'मै कब समाधिमरण मरूँगा ?' इसका मनोरथ करे। अब तक हुए बालमरण का खेद करे। समाधिमरण से मरने वाले गज-सुकुमाल, धर्मरुचि, थावच्चा पुत्र आदि का स्मरण करे।

❖

पाठ २१ इक्कीसवाँ

विधि : श्रावक सूत्र पढने वाले **सलेखना का अतिचार पाठ** (छोटी सलेखना) पढकर **'अट्ठारह पाप'** (इच्छामि ठामि) और **'तस्स सव्वस्स'** का पाठ पढे।

श्रमण सूत्र पढने वाले (बडी) **सलेखना** पढकर यह **समुच्चय का पाठ, अट्ठारह पाप, पच्चीस मिथ्यात्व और सम्मूर्च्छिम मनुष्य का पाठ** पढे।

श्रावक सूत्र और श्रमण सूत्र की विधि आगे देखे।

'समुच्चय का पाठ'

इस प्रकार १४ चौदह ज्ञान के, ५ पाँच दर्शन (सम्यक्त्व) के, ६० साठ बारह व्रतो के, १५ पन्द्रह कर्मादानो के (कुल ७५ चारित्र के) और ५ पाँच संलेखना (तप) के, इन ९९ निन्यानवे अतिचारो मे से किसी अतिचार का जानते-अजानते मन-वचन-काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को अनुमोदन दिया हो, (भला जाना हो), तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

'समुच्चय' प्रश्नोत्तरी

प्र० सम्यग्ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप जिस क्रम से कहे हैं, क्या उन्हे **उसी क्रम से अपनाना** चाहिए ?

उ० इस लोक के लाभ या परलोक के लाभ की दृष्टि से आरम्भ मे ही चारित्र और तप को अपनाया जा सकता है,

पर मोक्षार्थी को सबसे पहले सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) अपनाना चाहिए, क्योंकि उसके बिना तीनो मिलकर भी मोक्ष देने मे समर्थ नही है। सम्यग्दर्शन अपनाने के पश्चात् तीनों मे से किसी को भी अपनाया जा सकता है। जैसे अर्जुनमाली के समान किसी से ज्ञान विशेष न हो सके, तो वह ज्ञानी की निश्रा मे बिना ज्ञान सीखे सीधे ही व्रत अपना सकता है अथवा किसी से व्रतो का पालन कठिन हो और वह सीधे ही कदाचित् अनशन जैसे महातप को भी अपनाना चाहे, तो भी वह अर्हन्नक मुनि के समान सीधे ही तप भी अपना सकता है (तप अपनाने वाले मे चारित्र भी होता तो है, पर उसकी गौणता और तप की मुख्यता होती है, अतः ऐसा कहा है) पर यथा सम्भव ज्ञान, चारित्र और तप तीनो साथ मे अपनाना चाहिए, जिससे आत्म-विकास मे सुविधा रहे।

प्र० बारह व्रत जिस क्रम से बताये है, क्या उन्हे उसी क्रम से अपनाना चाहिए ?

उ० सभी को साथ मे क्रम से अपनाना अधिक उत्तम है। पर यदि किसी को कोई मध्य का व्रत अपनाने मे कठिनता हो या उसे पूरा अपनाने मे कठिनता हो, तो वह उस व्रत को छोडकर या उसे अश से अपना कर अगला व्रत अपना सकता है।

प्र० . उदाहरण देकर समझाइए।

उ० जैसे कई लोग, जो बारह व्रत क्रम से नहीं अपना पाते, वे सप्त व्यसन का त्याग करते है। जिसमे सबसे पहले १ मासाहार और २. मद्यपान छोडते है, जो सातवे व्रत के उपभोग-परिभोग का आंशिक त्याग है तथा ३ शिकार छोड़ते हैं,

जो पहले अणुव्रत का अश से प्रत्याख्यान है। फिर बिना दूसरा व्रत लिए खात खनन आदि से की जाने वाली मात्र प्रसिद्ध ४ चोरी छोड़ते हैं, जो तीसरे अणुव्रत का अश से प्रत्याख्यान है। फिर ५ जूआ छोडते हैं, जो सातवें व्रत के कर्मादान का आंशिक-त्याग है तथा ६. वेश्या, ७. परस्त्री छोडते हैं, जो चौथे व्रत का आंशिक प्रत्याख्यान है। इस प्रकार सप्त व्यसन के त्यागी दूसरा, पाँचवा, छठा—ये तीन व्रत सर्वथा छोडकर पहले से सात व्रत अश मात्र अपनाते हैं। यदि कोई राजपुत्र आदि सप्त व्यसन भी न त्याग सके और साधु को निवास दानादिक रूप सीधा बारहवाँ व्रत ही अश से अपनाना चाहे, तो वह सीधे बारहवाँ व्रत को भी अश से मार्गानुसारी के रूप मे अपना सकता है।

प्र० : तो, क्या ये व्रत कक्षा या सीढो के समान क्रम वाले नही हैं?

उ० : नही, यदि ये कक्षा या सीढी के समान होते, तो पहले-पहले के व्रत अपनाये बिना कोई पिछला-पिछला व्रत अपना नही पाता। पर पहले भी इस प्रकार लोगो ने व्रत अपनाये है और वर्त्तमान मे भी ऐसे अपनाने वाले मिलते हैं।

प्र० : तब व्रतों का ऐसा क्रम क्यों रक्खा गया?

उ० : १. कौन व्रत मुख्य है और कौन व्रत गौण है? २ कौन व्रत अपनाने से किस व्रत को सहायता मिलती है? ३. कौन व्रत अपनाने मे सरल और कौन व्रत अपनाने में कठिन है? ४. कौन व्रत अल्पकाल का और कौन व्रत दीर्घकाल का है? इत्यादि बताने के लिए।

प्र० : बारह व्रतो मे मूल व्रत कितने और उत्तर व्रत कितने ?

उ० : पाँच अणुव्रत मूल व्रत है, क्योंकि वे बिना समिश्रण से बने हुए हैं। शेष व्रत उत्तर व्रत है, क्योकि वे मूल व्रतों के सम्मिश्रण से या उन्ही के विकास से बने हैं ?

प्र० : उदाहरण देकर बताइए।

उ० : जैसे सामायिक व्रत पाँचो अणुव्रतो के सम्मिश्रण से बना है, क्योकि उसमे सभी अणुव्रतो का पालन होता है। तथा पाँचो अणुव्रतो के विकास से बना है, क्योंकि उसमे स्थूल हिसादि के साथ सूक्ष्म हिसादि भी त्याग होता है।

प्र० : व्यसन किसे कहते है ?

उ० जो स्वभाव एक बार लगने पर पुनः कठिनता से छूटता हो, ऐसा अशुभ स्वभाव 'व्यसन' कहलाता है। उससे पाप मे अत्यन्त गृद्धि रहती है और इस भव तथा परभव में बहुत कष्ट होते हैं।

प्र० व्यसन से इस भव परभव के कष्ट बताइए।

उ० : यदि पूर्व का पुण्य न हो, तो इन व्यसनो से इस भव मे प्रायः १. प्राणी का शरीर नष्ट हो जाता है। २. स्वभाव बिगड जाता है। ३ घर के स्त्री-पुत्रो को दुरवस्था हो जाती है। ४ व्यापार चौपट हो जाता है। ५. धन का सफाया हो जाता है। ६ घर द्वार नीलाम हो जाते हैं। ७ प्रतिष्ठा धूलमे मिल जाती है। ८ राज्य से दण्डित होते हैं। ९. कारागृह मे जीवन निकलता है। १०. फाँसी पर लटकना पडता है। ११. आत्मघात करना पडता है। आदि कई इहलौकिक

कष्ट भोगने पडते हैं। परभव मे भी वह नरक निगोद आदि मे उत्पन्न होता है। वहाँ उसे नरक तिर्यञ्च दशा मे बहुत कष्ट उठाने पडते हैं। यदि कदाचित् वहाँ से मनुष्य बन भी जाय, तो हीन जाति कुल मे जन्म लेता है। अशक्त, रोगी, हीनाग, नपुसक और कुरूप बनता है। वह मूर्ख, निर्धन, शासित और दुर्भागी रहता है। अत, इन सप्त व्यसनो का त्याग करना अतीव लाभप्रद है।

प्र० : बिना व्रत लिए भी पाप तो लगता ही है, पर **'व्रत लेकर तोड़ना महापाप है'** और प्राय व्रत मे कोई न कोई अतिचार लग ही जाता है, अत व्रत लिया ही क्यो जाये ?

उ० : महापाप तब लगता है, जब वही का वही व्रत बार-बार लेकर उस व्रत के प्रति अनादर और प्रमाद रखकर उसे तोडा जाय। परन्तु जो व्रत लेकर व्रतके प्रति आदर रखता है तथा उसे पालने की सावधानी रखता है, परन्तु परिस्थितिवश कुछ अतिचार लग जाता है, उसे महापाप नही लगता। वरन् वह व्रत धारण न करने वाले से महालाभ मे रहता है। लिए हुए व्रत मे अतिचार न लगे, इसके लिए पाप का भय रखना उचित है, क्योकि इससे व्रत की सुरक्षा होती हैं। परन्तु अतिचार के भय से व्रत ही नही लेना बालकपन है। जैसे वस्त्र पहनने के पश्चात् उसमे मैल न लगे, इसके लिए सावधानी रखना उचित है, क्योकि इससे वस्त्र अधिक शुद्ध रहता है परन्तु मैल लग जाने के भय से वस्त्र धारण ही न करें, तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा ?

❖

पाठ २२ बाईसवाँ

१९. अट्ठारह पाप

१. प्राणातिपात २. मृषावाद ३. अदत्तादान ४. मैथुन ५. परिग्रह ६. क्रोध ७. मान ८. माया ९. लोभ

१० राग	: प्रेम,(माया और लोभजन्य परिणाम)
११. द्वेष	: वैर, (क्रोध और मानजन्य परिणाम)
१२. कलह	: क्लेश, झगडा (वचन से होने वाला)
१३. अभ्याख्यान	: (मुह के सामने) कलग लगाना
१४. पैशुन्य	: (पीठ पीछे) चुगली खाना
१५. परपरिवाद	: दूसरे की (अहितकर) निन्दा करना
१६ रति	: शुभ विषयो मे आनन्द होना
अरति	: अशुभ विषयो मे खेद होना,
१७. माया-मृषा	: कपट सहित झूठ बोलना (एक साथ दो पाप करना)
१८. मिथ्या-दर्शन-शल्य	: देव गुरु, धर्म, सबधी श्रद्धा का अभाव होना या मिथ्या श्रद्धा होना; जो मोक्ष मार्ग के लिए काँटे के समान है।

ऐसे अट्ठारह प्रकार के पाप मे से किसी पाप का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, तो दिन सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स, सव्वस्स	: उन सभी
देवसियस्स, अइयारस्स	: दिन सबधी अतिचार ोका

दुब्भासिय-दुच्चितिय-	: जो दुष्ट भाषण, दुष्ट चिन्तन और
दुच्चिट्ठियस्स,	: दुष्ट काय प्रवृत्ति से लगे है,
आलोयन्तो-	: आलोचना करता हुआ—
पडिक्कमामि ।	: उनसे प्रतिक्रमण करता हूँ ।

तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स	: उस (जैन) धर्म की
केवलि-पण्णत्तस्स	: जो केवली प्ररूपित है,
अब्भुट्ठिओमि	: उठ कर खडा होता हूँ
आराहणाए,	: आराधना करके लिए ।
विरओमि	: विरत होता (हटता) हूँ
विराहणाए	: विराधना (करने) से ।
तिविहेण पडिक्कतो	: अब तक हुई विराधना का मन-वचन-काया से प्रतिक्रमण करता हुआ
वदामि	वन्दना करता हूँ
जिण चउव्वीस	: चौबीस तीर्थकरो को ।

पाठ २३ तेईसवां

२०. 'पच्चीस मिथ्यात्व' का पाठ

१. जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व	: जीव तत्व न माना हो, या जड से उत्पन्न माना हो, या स्थावर जीव न माने हो,
२. अजीव को जीव	: विश्व को भगवद्रूप माना हो, सूर्यादि

श्रद्धे तो मिथ्यात्व — को मूर्ति, चित्रादि को भगवान माना हो,

३. धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व : जैन धर्म को धर्म अर्थात् केवली भाषित शास्त्र को सुशास्त्र न माना हो,

४. अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व : अन्य धर्मों को धर्म अर्थात् अज्ञानी भाषित शास्त्र को सुशास्त्र माना हो,

५. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व : ५. महाव्रत ५. समिति ३ गुप्तिधारी साधु को सुसाधु न माना हो,

६. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व : महाव्रतादि रहित स्त्री परिग्रह सहित साधु को सुसाधु माना हो,

७. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व : सम्यग्ज्ञान दर्शन, चारित्र, तप को या संवर-निर्जरा को या दानशील तप भाव को संसार-मार्ग माना हो,

८. संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व : मिथ्याश्रुत, मिथ्यादृष्टि, अव्रत और बाल तप को या आश्रव-बंध को मोक्ष मार्ग माना हो,

९. मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व : अरिहंत-सिद्ध को कर्ममुक्त सुदेव न माना हो या, मोक्षतत्व न माना हो,

१०. अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व : कुदेवो को सुदेव माना हो, मोक्ष से पुनरागमन या अवतार माना हो,

११. आभिग्रहिक मिथ्यात्व : गुण-दोष की परीक्षा किये बिना, किसी मिथ्या देवादि का पक्ष किया हो,

१२. अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व : गुण-दोष की परीक्षा किये बिना सभी देव गुरु धर्मों को समान समझे हो,

१३ आभिनिवेशिक : अपने देवादि को असत्य जानते हुए

मिथ्यात्व	भी उनका दुराग्रह या स्थापना की हो,
१४. सांशयिक मिथ्यात्व	: 'न जाने ये सच्चे है या दूसरे ?' यों सच्चे देवादि मे सन्देह किया हो,
१५. अनाभोगिक मिथ्यात्व	: विशेष ज्ञान-विकलता से देवादि संबंधी विचार ही न किया हो,
१६. लौकिक मिथ्यात्व	: लौकिक देव, लक्ष्मी आदि, गुरु, राजा आदि व धर्म-विवाह आदि को सच्चे देवादि माने हो,
१७. लोकोत्तर मिथ्यात्व	: गोशाला, प्रतिमा आदि को तीर्थंकर, मात्र जैन वेश से जैन साधु या उत्सूत्र प्ररूपणा को धर्म माना हो,
१८ कुप्रावचनिक मिथ्यात्व	: अन्य सदोष देव, गुरु, धर्म को सच्चे देव, गुरु, धर्म माने हो,
१९. जिन मार्ग से न्यून श्रद्धे तो मिथ्यात्व	: जैन देव, गुरु, धर्म मे थोडी भी कमी मानी हो, एक अक्षर पर भी अश्रद्धा की हो या रक्षा आदि की कम प्ररूपणा की हो,
२०. जिन मार्ग से अधिक श्रद्धे तो मिथ्यात्व	: इतर कुदेव, कुगुरु, कुधर्म मे थोडी भी विशेषता समझी हो, या दिगबरत्व आदि की अधिक प्ररुपणा की हो,
२१ जिन मार्ग से विपरीत श्रद्धे मिथ्यात्व	: जैन देव, गुरु, धर्म से किञ्चित् भी विपरीत श्रद्धा की हो या अपवाद आदि की विपरीत प्ररूपणा की हो,
२२ अक्रिया मिथ्यात्व	: क्रिया व्यर्थ है, जडता या दभ है आदि श्रद्धा या कहा हो,

२३. अज्ञान मिथ्यात्व	: 'ज्ञान व्यर्थ है, जाने वह ताने, भोले का भगवान है' आदि श्रद्धा या कहा हो,
२४. अविनय मिथ्यात्व	: विनय को दासता मानी हो, आज्ञा भग की हो, वचन उत्थापे हों,
२५. आशातना मिथ्यात्व	: सुदेवादि की हीलना, निन्दना की हो उन्हे 'चूक गये' आदि कहा हो।

ऐसे पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व में से किसी मिथ्यात्व का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, तो दिन सबंधी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'मिथ्यात्व' प्रश्नोत्तरी

प्र० मिथ्यात्व प्रतिपादन का उद्देश्य क्या है ?

उ० : जैसे वन से नगर का मार्ग बतलाने वाला मार्गज्ञ पथिक को यह बताता है कि, 'तुम्हारा नगर पूर्व की ओर है, इसलिए इन पश्चिमादि दिशाओ को जाने वाले मार्ग छोड दो तथा ये पूर्व दिशा को जाने वाले तीन मार्ग है। जिसमे यह पहला मार्ग बहुत काँटेयुक्त है और पुन पूर्व से अन्य दिशा मे घूम जाने वाला है, उसे भी छोड दो, और यह पूर्व दिशा को जाने वाला दूसरा मार्ग प्राय कटकरहित तो है, परन्तु वह भी पुन: अन्य दिशा मे घूम ने वाला है, उसे भी छोड दो। यह तीसरा पूर्व मे जाने वाला मार्ग पूर्ण शुद्ध है, राजमार्ग है और ठेठ नगर तक पहुँचता है, मेरे कथन पर विश्वास रख कर इस मार्ग से जाओ।' और हाँ, इस मार्ग को उचित रूप न

जानने वाले तथा कुछ स्वार्थी लोग पथिको को अशुद्ध मार्ग बता देते हैं। उनके लक्षण ये हैं। उनके कहने में भी न आना।' और अशुद्ध मार्ग से चलने वालो का भी विश्वास मत करना।

ऐसा बताने या कहने में जैसे उस मार्गज्ञ के हृदय मे पथिक को नगर मे सुखपूर्वक पहुँचाने का एकान्त हितमय उद्देश्य है, वैसे ही अरिहन्तो ने जो मिथ्यात्व प्रतिपादन किया है, उसका यही उद्देश्य है कि '**भव्य जीव सुखपूर्वक मोक्षनगर में पहुँचे। १ हिंसादि मय कुमार्ग,** २. हिंसामिश्रित कुमार्ग या ३. लौकिक सुखप्रद पुण्यमार्ग में भटक न जावे या अन्य इन्हे भटका न दे।' मिथ्यात्व प्रतिपादन का इससे अन्य कोई उद्देश्य नहीं है।

प्र० : मिथ्यात्व प्रतिपादन से जीवो में एक के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है, अतः इसका **प्रतिपादन उचित कैसे ?**

उ० 'मिथ्यात्व प्रतिपादन के पहले जीव वीतराग हों और मिथ्यात्व प्रतिपादन से बाद जीव राग-द्वेषयुक्त बनते हो,' यह धारणा शुद्ध नही है। उनका राग किसी न किसी ओर रहता अवश्य है या राख से दबी अग्नि के समान दबा हुआ हो सकता है पर रहता अवश्य है। मिथ्यात्व प्रतिपादन से जीवों के राग-द्वेष को एक नई मोड मात्र मिलती है। वे मोक्ष-प्रद सच्चे देव गुरु धर्म के रागी बनते हैं और मोक्ष देने मे असमर्थ अशुद्ध देव गुरु धर्म के प्रति विमुख बनते हैं। परन्तु यह मोड प्रशस्त (शुभ) ही है, क्योंकि उस मोड से वे मन्द राग-द्वेष वाले होते हुए एक दिन वीतराग ही बनते हैं। अतः मिथ्यात्व प्रतिपादन करना उचित ही है।

प्र० . देखा यह जाता है कि 'मिथ्यात्व प्रतिपादन से कुछ लोगो मे राग-द्वेष तीव्र बनते हैं।

उ० : जिनमें ऐसा हुआ है, उनको मिथ्यात्व प्रतिपादन का वास्तविक उद्देश्य बता कर उन्हे अशुद्ध देवादि के प्रति सहिष्णु बनाना चाहिए व वैर-विरोध व असत्य निन्दा आदि से बचाना चाहिए। अच्छे-से-अच्छे पदार्थ का दुरुपयोग हो सकता है, उसका सुधार ही एक मात्र उपाय है। दुरुपयोग के भय से अच्छे पदार्थ छोडे नही जा सकते या उनके प्रतिपादन को त्यागा नही जा सकता।

प्र० : मिथ्यात्व प्रतिपादन के द्वारा राग-द्वेष को नई मोड मिले बिना सीधे हो राग-द्वेष को नष्ट करने का अन्य उपाय नही है क्या ?

उ० : नहीं, क्योकि जीव अनादि काल से राग-द्वेषग्रस्त रहा हैं, अत. सीधे ही उसका राग-द्वेष नष्ट होना संभव नही।

प्र० : व्यवहार मे सत्य के प्रति राग और असत्य के विमुखता होने को राग-द्वेष की सज्ञा दी जा सकती है क्या ?

उ० नहीं, जैसे सोना और पीतल, केतकी और कणिकार, सूर्य और पतगिये मे यदि लोगो का स्वर्ण, केतकी और सूर्य के प्रति अनुराग तथा पीतल, कणिकार और पतगिये के प्रति विमुखता हो, तो उसे व्यवहार मे राग-द्वेष न कह कर गुणज्ञता ही कही जाती है।

प्र० · मिथ्यात्व कितने हैं ?

उ० : वैसे तो मिथ्यात्व एक ही है और वह है 'मिथ्या श्रद्धा, परन्तु 'मिथ्या श्रद्धा किन बातो पर और किस प्रकार

होती है ?' यह समझना कठिन है, पर इसे समझना अत्यन्त आवश्यक भी है। क्योकि मिथ्यात्व अट्ठारह ही पापो मे सबसे बडा व भयकर पाप है। यदि इस मेरु पर्वत के समान अकेले पाप के सामने हिंसादि १७ ही पाप मिलाकर रख दिये जायँ, तो भी वे इसके तुल्य नही हो सकते, राई-वत् ही रहते हैं। अत इसे स्पष्ट समझाने के लिए पहले 'जीव को अजीवश्रद्धे' इत्यादि मिथ्यात्व के दश भेद किये हैं, फिर आभिग्रहिक आदि पाँच भेद किये हैं, फिर लौकिक आदि तीन, पुनः न्यूनादि तीन और पुन अक्रिया, अज्ञान ये दो और पुनः अविनय, आशातना ये दो भेद किये हैं। इस प्रकार सब भेद २५ किये हैं।

पाठ २४ चौबीसवाँ

२१. 'चौदह सम्मूर्च्छिम' का पाठ

१ उच्चारेसु वा	: (मनुष्य के) उच्चार (विष्ठा) में
२. पासवणेसु वा	: प्रश्रवण (मूत्र) में
३. खेलेसु वा	: खेल (मुख के खेकार) में
४ सिंघाणेसु वा	: सिंघाण (नाक के सेडे) में
५. वंतेसु वा	: वमन (सामान्य उल्टी) में
६. पित्तेसु वा	: पित्त (की विशिष्ट उल्टी) में
७. सोणिएसु वा	: शोणित (सामान्य रक्त, लोही) में
८. पुइएसु वा	: पू (सडे हुए लोही) मे
९. सुक्केसु वा	: शुक्र (रज-वीर्य) मे

१० सुक्क-पुग्गल-परिसाडिएसु वा	: (रज) वीर्य के सूखे पुद्गल पुनः गीले होवे, उसमे
११. विगय-जीव-कलेवरेसु वा	: मरे हुए मनुष्य के कलेवर (शव) मे
१२ इत्थी-पुरिस संजोगेसु वा	: स्त्री-पुरुष के (रज तथा वीर्य इन दोनो के) सयोग मे
१३. नगर-निधमणेसु वा	: नगर की नालियो मे (जहाँ उच्चारादि के साथ अन्य द्रव्य भी मिल जाते हैं)
१४. सव्वेसु चेव असुइ-ठाणेसु वा	: और सभी अशुचि स्थानो मे (जहाँ केवल ये या अन्य द्रव्य भी मिलते हो)

इन चवदह स्थानों मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्छिम मनुष्यो की विराधना की हो, तो दिन संबंधी तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

'सम्मूर्च्छिम' प्रश्नोत्तरी

प्र० . मनुष्य सम्मूर्च्छिम की जानकारी दीजिए।

उ० : शरीर से मल-मूत्र आदि पृथक् होने के पश्चात् शारीरिक उष्णता के अभाव मे जब वे शीतल हो जाते है और गीले रहते हैं, तब उनमे कभी-कभी एक मुहूर्त्त (४८ मिनिट) से भी पहले मनुष्य की ही जाति और मनुष्य की ही आकृति के, पर अगुल के असख्य भाग जितनी अवगाहना (लम्बाई-चौड़ाई-जाडाई) वाले असख्य छोटे जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वे बिना मन के होने से सम्मूर्च्छिम कहलाते है। उनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त जितना छोटा होता है।

प्र० . उनकी रक्षा के लिए मल-मूत्रादि कहाँ डालने चाहिएँ ?

उ० : १. खुली २. धूप वाली, ३. रेत आदि वाली ४. जो पाना आदि से भीगी हुई न हो ५. पहले जहाँ मल-मूत्रादि न किया हो तथा ६. एकात हो, ऐसी भूमि मे डालना चाहिए ।

प्र० ऐसी भूमि मे **क्यो** डालना चाहिए ?

उ० १ खुली भूमि मे वायु लगने से, २. धूपवाली मे धूप लगने से, ३ रेत आदि वाली मे रेत आदि मिल जाने से तथा ४ सूखी भूमि मे गीलापन न मिलने से, वे मल-मूत्र आदि शीघ्र सूख जाते हैं, अत उनमे जीवोत्पत्ति नही होती । ५ अन्य मल-मूत्रादि पर न डालने से पहले के मल-मूत्र के जीवो की विराधना नही होती तथा उन्हे सूखने मे बाधा नही पडती । ६. एकात मे डालने से लोगो के स्वास्थ्य मे बाधा तथा विचारो मे घृणा उत्पन्न नही होती । अन्य का उस पर पैर भी नही पडता ।

प्र० : उन्हे **कैसे डालना** चाहिये ?

उ० : मूत्रादि के पात्र मे मूत्र करके उसे फैलाकर डालना चाहिए। स्थडिल भूमि मे वार-वार आगे बढ़ते हुए मल त्यागना चाहिए। कफादि त्यागने के पश्चात् उन पर राख, धूल आदि डालनी चाहिए ।

प्र० : थूक आदि मे समूर्च्छिम मनुष्य **जीव उत्पन्न होते हैं या नहीं ?**

उ० : नही, जैसे आँख का मल, कान का मल, पसीना आदि मनुष्य की अशुचि होते हुए भी शरीर से पृथक् होकर दूर हो जाने पर उन मे अन्य जीव भले ही उत्पन्न होते है, पर सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नही होते । वैसे ही थूक मे भी वे उत्पन्न नही होते ।

प्र० : तब 'सब **अशुचि स्थान** मे समूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं।' इस **कथन का उद्देश्य** क्या है ?

उ० : स्त्री-योनि, नगर नाली आदि के समान जितने भी उकरडे आदि अशुचि स्थान हैं, चाहे वहाँ केवल मल-मूत्रादि ही परस्पर सयुक्त होते हो या अन्य सामान्य सैकडो वस्तुओ का सयोग हो जाता हो, वहाँ भी सम्मूर्च्छिम जीवोत्पत्ति होती है। परन्तु जैसे अन्य कुछ सचित्त पदार्थ परस्पर मिल जाने से या उनमे तीसरी वस्तु मिल जाने से वे सचित्त भी अचित्त हो जाते है, तो 'ये मूल से अचित्त परस्पर मिल जाने से या उनमे तीसरी वस्तु मिल जाने से सचित्त नही बनते होगे, यह धारणा अशुद्ध है। यह बताना इस कथन का उद्देश्य है।

प्र० : 'मुह पर **'मुख-वस्त्रिका'** बाँधने से बोलते समय उस पर थूंक लग कर **उसमे मनुष्य संमूर्च्छिम जीवो की उत्पत्ति** होती है।' इस पक्ष का उत्तर क्या है ?

उ० : वर्त्तमान मे यह पक्ष रखने वालो के पूर्वज 'मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधते थे' और 'बाँधना चाहिए' ऐसी आम्नाय भी रखते थे। ऐसा कुछ ऐतिहासिक चित्रो, लेखो और ग्रन्थो से सिद्ध है। यह तो प्रासगिक जानकारी है। वैसे उत्तर यह है कि—१. 'चाहे कोई मुखवस्त्रिका मुख पर न बाँधे, चाहे कोई मुख पर न भी रक्खे, पर सिद्धान्त से 'वायुकाय की यतना के लिए मुखवस्त्रिका मुह पर रहनी चाहिए।' यह तो वे भी मानते ही हैं। उसे मुह पर रखने पर यदि वक्ता का इस सबध मे स्वास्थ्य उत्तम नही है, तो मुखवस्त्रिका पर थूक लगेगा ही। थूंक लगने **पर** यदि उस मे 'मनुष्य समूर्च्छिम जीवो की उत्पत्ति होती है।' ऐसा माना जाय, तो सूत्रो मे जो मुखवस्त्रिका को

उपकरण अर्थात् जीवरक्षा और सयमरक्षा आदि का साधन माना गया है, उस मान्यता मे आपत्ति पहुँचेगी। अत थूंक से मनुष्य सम्मूर्च्छिम जीवोत्पत्ति का पक्ष सगत नही लगता।

२ दूसरे मे जब सूत्रकार ने मनुष्य समूर्च्छिम जीवो की उत्पत्ति के स्थान बताते हुए नाक का सेडा मुख का श्लेष्म आदि, जो थूक की अपेक्षा कम और देरी से होते है, उन्हे भी बताया है। रज-वीर्य के सयोग और नगर की नालियो मे भी मनुष्य समूर्च्छिम पैदा होते है, इतनी स्पष्टता को है, तो यदि थूंक से मनुष्य समूर्च्छिम जीवोत्पत्ति होती, तो वे अवश्य ही थूक मे उनकी उत्पत्ति का कथन करते। क्योकि थूक अधिक और शीघ्र होता है और मुखवस्त्रिका पर लगने की अपेक्षा वह विशेष सावधानी का विषय भी बन जाता है। पर उन्होने कथन नही किया, इस कारण भी उक्त पक्ष वास्तविक नही लगता।

पाठ २५ पच्चीसवाँ

'श्रमण सूत्र' चर्चा

प्र० श्रमण सूत्र किसे कहते है ?

उ० १. इच्छामि ण भंते २ नमस्कारमत्र ३. करेमि भंते ४. चत्तारि मगलं ५ इच्छामि ठाएमि (पडिक्कमिउ) ६ इच्छाकारेणं (इरियावहियाए) ७ पगामसिज्जाए ८ गोयरग्ग-चरियाए ९ चाउक्काल सज्झायस्स १०. तेंतीस

बोल (एगविहे असजमे) ११. नमो चउवीसाए—इन ग्यारह पाठ और 'खामेमि सव्वे जीवा' आदि गाथाओ को 'श्रमण सूत्र' कहते है।

किन्तु आजकल कई स्थानो पर १. पगामसिज्जाए २. गोयरग्ग-चरियाए ३. चाउक्काल सज्झायस्स ४. तैतीस बोल और ५. नमो चउव्वीसाए—इन पाँच पाठो को श्रमण सूत्र कहा जाता है।

प्र० : श्रमण सूत्र पढने वाले और श्रावक सूत्र पढने वाले किन्हे कहते हैं ?

उ० जो श्रावक, प्रतिक्रमण मे 'पगामसिज्जाए' आदि पाँच पाठ पढे, उन्हे **श्रमण सूत्र पढने वाले** कहते हैं तथा जो इन स्थानो पर आगमे तिविहे, दसण सम्मत्त, बारह व्रत अतिचार सहित, (बडी) सलेखना, समुच्चय का पाठ, अट्ठारह पाप (इच्छामि ठामि) व तस्स धम्मस्स का पाठ पढते हैं, उन्हे **श्रावक सूत्र पढने वाले** कहते है।

प्र० : प्रतिक्रमण मे **कौन** से श्रावक **श्रमण सूत्र पढते** हैं **और कौन नहीं पढते** है ?

उ० . मारवाड की सम्प्रदाये, पन्जाब की सम्प्रदाये, और गुजरात की दरियापुरी सम्प्रदाय के श्रावक, प्रतिक्रमण मे श्रमण सूत्र बोलते नही है।

काठियावाड गुजरात की सब छह कोटि सप्रदाये, मालवा के पूज्य धर्मदासजी की सप्रदाये, मारवाड के पूज्य ज्ञानचन्दजी की सप्रदाय, मालवा तथा दक्षिण की ऋषि सम्प्रदाय के श्रावक प्रतिक्रमण मे श्रमणसूत्र बोलते है।

—धी० के० तुरखिया.

प्र० : श्रावको को प्रतिक्रमण मे श्रमणसूत्र पढना या नहीं ? इस सम्बन्ध में पक्ष विपक्ष के तर्क बताइये।

उ० : पक्ष-विपक्ष इस प्रकार है—

विपक्षकार—'श्रमणसूत्र' का अर्थ—'साधु का सूत्र' होता है, अत. श्रमणसूत्र 'साधु' को ही पढना चाहिए, श्रावक को नही पढना चाहिए।

पक्षकार - प्राय· 'श्रमण' का अर्थ 'साधु' ही होता है, परन्तु कहीं-कही 'श्रमण' का अर्थ 'श्रावक' भी होता है। जैसे भगवती शतक २० उद्देशक ८ में, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चारो को 'श्रमण' मानकर चारो के सघ को 'श्रमण-सघ' कहा है। इसी प्रकार यहाँ भी 'श्रमणसूत्र का' अर्थ 'साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इन चारो का सूत्र' है। अतः श्रमणसूत्र श्रावक का भी सूत्र होने से, उसे भी प्रतिक्रमण मे श्रमणसूत्र पढना चाहिए।

विपक्षकार—भगवती मे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारो को 'श्रमण' मान कर चारो के सघ को 'श्रमण सघ' नहीं कहा है, परन्तु भगवान् महावीर को 'श्रमण' मान कर उनके संघ को 'श्रमण-सघ कहा है।

पक्षकार—'श्रमण-संघ' का अर्थ 'भगवान महावीर का सघ' ऐसा कहीं नही किया गया है। सर्वत्र 'श्रमण-सघ' का अर्थ 'साधु-सघ' 'मुनि-सघ' आदि ही किया है, जिससे किसी अपेक्षा श्रावक भी 'श्रमण' है, यही सिद्ध होता है।

विपक्षकार—'श्रमण-सूत्र' साधुओ को बोलना उपयोगी है, श्रावको को नही। अत. श्रमण-सूत्र श्रावको को प्रतिक्रमण मे नही बोलना चाहिए।

पक्षकार—श्रमण-सूत्र श्रावकों को भी उपयोगी है। जिसका प्रबल प्रमाण यह है कि—'श्रमण-सूत्र के ११ पाठ में ६ पाठ और श्रमण-सूत्र की 'खामेमि सव्वे जीवा' आदि की गाथाएँ तो श्रमण-सूत्र का निषेध करने वाले भी बोल ही रहे हैं। जिसमे नमस्कार मन्त्र, मांगलिक और इच्छाकारेण-श्रमण-सूत्र के ये तीन पाठ और खामेमि सव्वे जीवा आदि गाथाएँ तो ज्यों के त्यो बोली जाती हैं और शेष इच्छामिणं भंते, करेमि भंते व इच्छामि ठाएमि—ये श्रमण-सूत्र के तीन पाठ श्रावक योग्य कुछ ही परिवर्तन करके बोले जाते हैं। शेष पाँच पाठ, जिन्हे नही बोलते हैं, वे भी श्रावको को उपयोगी हैं ही।

प्र० : पगामसिज्जाए' का पाठ किसलिये उपयोगी है?

उ० श्रावक जब पौषध करता है, तब रात्रि को सोता है। उस समय शय्या मे लगे अतिचारो के प्रतिक्रमण के लिए यह पाठ उपयोगी है।

विपक्षकार—शय्या के अतिचार का प्रतिक्रमण 'पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया' के ध्यान से हो सकता है।

पक्षकार—नही, जैसे पौषध मे गमना-गमन के अतिचारो का प्रतिक्रमण 'इच्छाकारेणं' के पाठ के ध्यान से किया जाता है, 'पोसहस्स सम्म अणणुपालणया' के ध्यान से नही। इसी प्रकार पौषध मे शय्या के अतिचारो का प्रतिक्रमण 'पोसहस्स सम्म अणणुपालणया' के ध्यान से नही हो सकता, उसके लिए पगामसिज्जाए के ध्यान की पृथक् आवश्यकता है।

प्र० : गोयरग्गचरियाए का पाठ किसलिए उपयोगी है?

उ०. श्रावक जब गौचरी की दया करता है, तब भिक्षा मे लगे अतिचारो के प्रतिक्रमण के लिए यह पाठ उपयोगी है।

विपक्षकार—ग्यारहवी प्रतिमा के धारी श्रावक से अन्य श्रावक को गौचरी करना ही नही चाहिए।

पक्षकार—ऐसा सूत्र मे कही निषेध नही है, पर उपासक दशाग सूत्र मे यह उल्लेख अवश्य है कि 'आनद श्रावक ने पहली प्रतिमा भी धारण नही की थी कि उससे भी पहले से वे गौचरी करने लग गये थे।

इसके अतिरिक्त दो करण तीन योग (आठ कोटि) की दया से गौचरी स्पष्ट सिद्ध होती है, क्योंकि दो करण तीन योग (आठ कोटि) से दया करने वाला अपने लिए बना हुआ भोजन कर नही सकता। कारण यह है कि 'अपने लिए भोजन भोगने से उसे 'पाप का काया से अनुमोदन' का दोष लगता है।' अतः वह गौचरी करके ही आहार करता है।

प्र० . **'चाउक्कालं सज्झायस्स' का पाठ किसलिए उपयोगी है ?**

उ० : श्रावक जब पौषध करता है, तब उसे चारो प्रहर स्वाध्याय करनी चाहिए तथा प्रातः-सध्या उभय-काल प्रतिलेखन करना चाहिए। उस समय स्वाध्याय तथा प्रतिलेखन मे लगे अतिचारो के प्रतिक्रमण के लिए यह पाठ उपयोगी है।

विपक्षकार—'स्वाध्याय के अतिचार का प्रतिक्रमण' 'आगमे तिविहे' से और 'प्रतिलेखन के अतिचारो का प्रतिक्रमण' 'अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सिज्जासथारए' आदि से हो सकता है।

पक्षकार—'आगमे तिविहे' का पाठ साधुओ के लिए भी है, फिर भी उसके रहते हुए भी जैसे साधुओ के लिए 'चाउक्काल सज्झायस्स' का पाठ उपयोगी है तथा जैसे साधुओ

को चौथी 'आदान-भाण्ड-निक्षेपणा समिति' होते हुए भी उन्हें यह पाठ उपयोगी है। वैसे ही श्रावको के लिए 'आगमे तिविहे' तथा 'अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सिज्जा संथारए' आदि का पाठ होते हुए यह पाठ श्रावक को उपयोगी है।

प्र० : श्रावको को ये तीनो पाठ प्राय काम में नही आते, अत ये पाठ श्रावक न बोले, तो क्या आपत्ति है ?

उ० : मारणातिक सलेखना जीवन के अन्तिम समय मे एक बार ही की जाती है, अतएव सलेखना पाठ एक बार ही काम आता है। फिर भी जब श्रावक नित्य सलेखना पाठ बोलता है, तो ये तीनो पाठ तो पौषध मे अनेको बार काम आते है। तब श्रावक इन पाठो को बोलना कैसे छोड़ सकता है ?

प्र० : जिस दिन श्रावक पौषध करे, उसी दिन ये तीनों पाठ बोल लिए जायँ, अन्य दिन न बोले जायँ, तो क्या आपत्ति है ?

उ० : जैसे जिस दिन श्रावक पौषध नही करता, उस दिन भी वह पौषध व्रत का पाठ बोलता है, तो वह पौषधोपयोगी इन तीनो पाठो को अन्य दिन क्यो न बोले ?

प्र० : तैतीस बोल का पाठ किसलिए उपयोगी है ?

उ० : इस पाठ से श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना मे लगे अतिचारो का प्रतिक्रमण किया जाता है। और इससे जानने योग्य, त्यागने योग्य और आदरने योग्य बोलो की जानकारी होती है, अतः यह पाठ श्रावक को ही क्या, अविरत सम्यग्दृष्टि को भी उपयोगी है।

विपक्षकार—तीन गुप्ति, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, १२ भिक्षु प्रतिमा आदि, जिसे श्रावक धाररण ही नहीं करता, उनका वह क्या प्रतिक्रमरण करे ?

पक्षकार—तीन गुप्ति, पाँच समिति तो सामयिक पौषध आदि मे श्रावक धाररण करता ही है। यदि धाररण नही करता, तो श्रावक योग्य 'इच्छामि ठाएमि' मे 'तिण्ह गुत्तीरण' पाठ नही रहता। अत उनका प्रतिक्रमरण तो स्पष्ट आवश्यक है ही।

शेष महाव्रत, भिक्षु प्रतिमा आदि का उनकी श्रद्धा प्ररूपरणा मे दोष लगे हो, उस दृष्टि से प्रतिक्रमरण आवश्यक है। जैसे साधु, श्रावक प्रतिमा या कई साधु भिक्षु प्रतिमा धाररण नही करते, वे भी उनकी श्रद्धा प्ररूपरणा मे लगे दोषो के निवाररणार्थ प्रतिक्रमरण करते है।

प्र० : **'नमो चउवीसाए'** का पाठ किसलिए **उपयोगी** है ?

उ० . यह पाठ भी तैंतीस बोल के समान सब के लिए उपयोगी है और विशेष उपयोगी है। क्योकि इसमे जैन धर्म के प्रवर्तक २४ तीर्थंकरो को नमस्कार, जैन धर्म के गुरण, जैन धर्म के फल, जैन धर्म स्वीकृति आदि ऐसी बाते है, जो प्रत्येक जैन के लिए बहुत काम की वस्तु है। भगवतीसूत्र के जमाली अधिकार से भी यह बात पुष्ट होती है कि इसकी उपयोगिता के काररण इस पाठ को बहुत से जैन श्रावक-श्राविकाएँ जानते थे। इसकी उपयोगिता इस बात से भी सिद्ध है—'तस्स धम्मस्स' तस्स सव्वस्स' आदि पाठ, जो इसी 'नमो चउवीसाए' के कुछ भावो का वहन करते है, श्रमरणसूत्र की उपयोगिता न स्वीकारने वाले भी पढ़ते हैं।

विपक्षकार—श्रावक, 'श्रावक' है, अतः उसे 'श्रावकसूत्र' पढना चाहिए, श्रमण सूत्र नही।

पक्षकार—साधु प्रतिक्रमण के साथ श्रावक प्रतिक्रमण की तुलना करके इस विषय को सोचा जाय, तो श्रमणसूत्र से भिन्न श्रावक के लिए कोई 'श्रावक सूत्र' रहता नही है। साधु सतियाँ कायोत्सर्ग मे अतिचार आलोचना करने के पश्चात् चौथे आवश्यक मे सीधे ही व्रत, समिति, गुप्ति और अतिचार सम्मिलित पढते है। वैसे ही यदि श्रावक भी अतिचार कायोत्सर्ग के पश्चात् चौथे आवश्यक मे सीधे ही श्रमणसूत्र पढने वाले श्रावको के समान व्रत अतिचार सम्मिलित पढ ले, तो उनके लिए भिन्न श्रावकसूत्र कहाँ रह जाता है? इस प्रकार भिन्न श्रावकसूत्र का अभाव भी इस बात को सिद्ध करता है कि श्रावक को श्रमण सूत्र पढना चाहिए।[†] यहाँ यह बात भी ध्यान मे लेना योग्य है कि—अतिचारो का तीन बार पाठ करना उपयोगी भी नही है।

पाठ २६ छब्बीसवाँ

विधि : वदना करके 'श्रावक सूत्र' या 'श्रमण सूत्र' पढने की आज्ञा है।' कहकर श्रावक सूत्र या श्रमण सूत्र पढने की आज्ञा ले। फिर जैसे काँटा निकलवाने वाला अपने पैर को वीरतापूर्वक दूसरे के सामने कर देता है या शल्य क्रिया

[†]यह पक्ष-विपक्ष हमारी जानकारी के अनुसार है। विशेष पक्ष-विपक्ष उन उन पक्ष-विपक्षकारों के जानकारों मे जान लेना चाहिए।

कराने वाला वीरतापूर्वक अपने देह को शल्यकर्त्ता के सामने प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार अपने अतिचारो की आलोचना के लिए वीरतासूचक दाहिने घुटने को मोडकर खडा रक्खे और बाये घुटने को मोडकर भूमि पर लगा दे। फिर **'इच्छामि भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसिय णाण दंसण चरित्ता-चरित्त तव अइयार आलोएमि'** (आलोचना करता हूँ) यह पाठ पढे। फिर **नमस्कार मत्र** और **करेमि भते** पढे। फिर निम्न **मांगलिक का पाठ** पढे। फिर **'इच्छामि पडिक्कमिउं' जो मे देवसिओ'** इत्यादि 'इच्छामि ठामि' का पूरा पाठ कहे। फिर **'इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए** इत्यादि **इच्छाकारेणं** का पूरा पाठ कहे।

फिर श्रावक सूत्र पढने वाले **आगमे तिविहे, अरिहन्तो महदेवो** व **बारह व्रत** कहे। फिर बैठकर (बडी **सलेखना, समुच्चय का पाठ, अट्ठारह** पाप व (इच्छामि ठामि) कहे। फिर **तस्स धम्मस्स केवलि पण्णत्तस्स** बोलकर अगला पाठ खडे होकर कहे।

तथा श्रमण सूत्र पढने वाले **'पगामसिज्जाए'** आदि चार पाठ पढे और वे भी **नमो चउवीसाए के तस्स धम्मस्स केवलि पण्णत्तस्स** तक का पाठ बोलकर अगला पाठ खडे होकर कहे। फिर दोनो ही पूर्ववत् दो वार **इच्छामि खमासमणो** दे।

२२. 'चत्तारी मंगलं' मांगलिक का पाठ

चत्तारि मगल	: चार मगल (विघ्नविनाशक) है।
१. अरिहता मंगल	: सभी अरिहन्त मगल हैं।

२. सिद्धे सरणं पवज्जामि	: मैं सभी सिद्धो की शरण ग्रहण करता हूँ।
३. साहू सरणं पवज्जामि	: मैं सभी (आचार्य उपाध्याय) साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ।
४ केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि	: मैं केवली प्ररूपित (जैन) धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ।

अरिहन्तों की शरण, सिद्धों की शरण, साधुओं की शरण, केवली प्ररूपित दया धर्म की शरण। चार शरण, दुख हरण, और शरण न कोय। जो भव्य प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय ॥१५

पाठ २७ सत्ताईसवाँ

२३. 'पगामसिज्जाए' शय्या के अतिचारों का प्रतिक्रमण पाठ[1]

इच्छामि पडिक्कमिउं	: चाहता हूँ, प्रतिक्रमण करना,

---

[1] प्रतिमाधारी श्रावक तथा पौषध, संवर या दया करने वाले श्रावकों को रात्रि में सोकर उठने के पश्चात् शय्या के अतिचारों का प्रतिक्रमण करने के लिए 'इच्छाकारेण' 'तस्स उत्तरी' पढ़कर, १ या ४ 'लोगस्स' का तथा इस 'पगामसिज्जाए' के पाठ का कायोत्सर्ग अवश्य करना चाहिए।

निद्रावस्था के अतिचार

पगाम-सिज्जाए	: मर्यादा (१ से २ प्रहर) उपरांत निद्रा ली हो या गाढी निद्रा ली हो,
निगाम-सिज्जाए	: वार-वार मर्यादा उपरात निद्रा ली हो या लम्बी-चौडी-मोटी मृदु शय्या की हो,

जागृतावस्था के अतिचार

संथारा-उवट्टणाए	: शय्या मे विना पूजे अयतना से एक वार या एक पसवाडा उलटा हो,
परियट्टणाए	: वार-वार या दोनो पसवाडे पलटे हों,
आउंटणाए पसारणाए	: विना पू जे अयतना से हाथ-पैर आदि सिकोडे हो या फैलाये हो,
छप्पइय-संघट्टणाए	: जू (खटमल, मच्छर आदि) की विराधना की हो,
कुइए	: काया या वाणी से भण्ड कुचेष्टा की हो, या अयत्ना से खाँसा हो,
कक्कराइए	: शय्या सथारे की निन्दा की हो या अयत्ना से बोला हो,
छीए, जंभाइए	: खुले मुह छीक या जभाई ली हो,
आमोसे	: विना पू जे खुजाला हो, (सचित्त)
ससरक्खामोसे	: रजवाले शय्यादि का स्पर्श किया हो,

अर्धनिद्रावस्था के अतिचार

आउलमाउलाए	: परिचारणादि व्याकुलता के
सुवण-वत्तियाए	: दु स्वप्न देखे हो, जैसे—

इत्थी (पुरिस)-विप्परियासियाए : स्वप्न मे स्त्री (पुरुष) के साथ काय (या स्पर्श) परिचारणा (काम भोग) की हो.
दिट्ठि-विप्परियासियाए . दृष्टि (या शब्द) परिचारणा की हो,
मण-विप्परियासियाए : मन परिचारणा की हो,
पाण-भोयण-विप्परि० : स्वप्न मे रात्रि भोजन किया हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ : इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई दिन सबधी अतिचार लगा हो तो,

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'पगामसिज्जाए' प्रश्नोत्तरी

प्र० · निद्रावस्था जब कि आत्मा स्ववश नही रहती, तब **अधिक निद्रा** आ जाय या **गाढ़ निद्रा** आ जाय, तो उसमे आत्मा का दोष क्या ? और उसका प्रतिक्रमण आवश्यक क्यो ?

उ० · जिन आत्माओ में शीघ्र जगने की भावना, शीघ्र जगने का सकल्प और प्रमाद की कमी होती है, उन्हे अधिक निद्रा या जगाने पर भी न जागे, ऐसी गाढ़ निद्रा नही आती। जिन आत्माओ मे शीघ्र जगने की भावना की मन्दता, सकल्प की मन्दता तथा प्रमाद की अधिकता होती है, जो अति आहार करते है, मृदु मोटी शय्या पर सोते हैं, प्राय उन्हे ही अधिक निद्रा तथा गाढ निद्रा आती है। अत', 'अधिक निद्रा आना व गाढ़ निद्रा आना' आत्मा का ही दोष है और इसलिए उन दोषों को मिटाने के लिए अधिक निद्रा और गाढ़ निद्रा का प्रतिक्रमण भी आवश्यक है।

प्र० : रात्रि मे जब कि, नीद गाढी आ रही हो, तब पसवाडा (करवट) बदलने आदि के समय यतना के लिए पूँजने आदि की क्रिया करना सरल कैसे हो ?

उ० मुख्य बात यह है कि, निद्रा को मर्यादित और अल्प कर देने पर पसवाडे को वदलने आदि के प्रसग ही कम हो जाते हैं। उसके पश्चात् 'जूं, खटमल, मच्छर, सचित्त रज, सचित वायु आदि को भी मेरे ही समान जीवन प्रिय है।' जब निद्रा मे थोडी बाधा भी मुझे अप्रिय लगती है, तो उन्हे मरण कितना अप्रिय होगा ? 'इन विचारो को निरन्तर भावना से बल देने पर, निद्रा मे भी सावधानी और यतना का विवेक सरल हो जाता है।

प्र० : अर्द्ध निद्रावस्था मे जब कि, आत्मा स्ववश नहीं रहती, तब भोगादि आकुलता-व्याकुलता के दुःस्वप्न आ जायँ, तो उसमें आत्मा का दोष क्या ? और उसका प्रतिक्रमण आवश्यक क्यो ?

उ० : जो जागृत अवस्था मे मन को, इन्द्रियों को तथा देह को वश मे रखते हैं, ज्ञान ध्यान मे मन-वचन-काया के योगो को लगाते हैं, उत्तम साधु-श्रावकों की पर्युपासना करते हैं, शुभ योग प्रवृत्ति वालो का अनुमोदन करते हैं तथा आहार व निद्रा मर्यादित रखते हैं, उन्हे भोगादि आकुलता-व्याकुलता के स्वप्न नही आते। जिनमे उपर्युक्त बाते नही होती, उन्हे ही प्रायः दुःस्वप्न आते हैं। अतः दु स्वप्न आना आत्मा का ही दोष है, और इसलिए उन दोषो को मिटाने के लिए दु.स्वप्न प्रतिक्रमण भी आवश्यक है।

प्र० व्रतधारी या प्रतिमाधारी श्रावक को दिन मे सोना नही चाहिए, अतः उन्हे **दैवसिक प्रतिक्रमण मे** इस पाठ को **बोलने की क्या आवश्यकता** है ?

उ० · १. 'अर्द्ध निद्रित, पूर्ण निद्रित आदि अवस्थाओ के अतिचार भी आत्मा के दोषो से ही लगते हैं।' आदि सिद्धान्तो की श्रद्धा प्ररूपणा मे अन्तर आया हो, तो उसके प्रतिक्रमण के लिए। जैसे कि—जिस दिन पौषध न किया हो, उस दिन भी ग्यारहवे पौषध व्रत का पाठ, ग्यारहवे पौषध व्रत की श्रद्धा प्ररूपणा मे अन्तर आया हो, तो उसके प्रतिक्रमण के लिए बोला जाता है। २. दिन मे बैठे-बैठे भी कभी नीद आ सकती है, ऐसे समय मे लगे अतिचारो के प्रतिक्रमण के लिए। ३. उपसर्ग से रात्रि को नीद न आई हो, या दूसरो की रात्रि मे अधिक सेवा करनी पडी हो, उससे नीद न आई हो, विहार अति उग्र हुआ हो, आदि कारणो मे दिन मे भी किसी को सोना पड जाता है। ऐसे समय मे लगे अतिचारो के प्रतिक्रमण के लिए भी यह पाठ दैवसिक प्रतिक्रमण मे बोलना आवश्यक है। ४. 'दिन मे अकारण नही सोना' इस मर्यादा का उल्लघन करके दिन मे सो जाने पर तो यह पाठ दैवसिक प्रतिक्रमण मे बोलना आवश्यक है ही।

❖

पाठ २८ अट्ठाईसवाँ

२४. 'गोयरग्गचरियाए' गौचरी के अतिचारों का प्रतिक्रमण पाठ†

पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
गोयरग्ग-चरियाए	: गोचरी (गाय चरने) के समान
भिक्खायरियाए	: भिक्षाचरी मे अतिचार लगाये हो,

अविधि प्रवेश के अतिचार

उग्घाड-कवाड-उग्घाडणाए	: आधे खुले हुए या अर्गला-शृखला आदि रहित कपाट उघाडे हो,
साणा-वच्छा-दारा-संघट्टणाए	: श्वान-बछडे-बच्चे को ठोकर दी हो या उनका स्पर्श-उल्लघन किया हो,

अप्रासुक-अनेषणीय ग्रहण के अतिचार

मडि-पाहुडियाए	. दूसरे को दिया जाने वाला अग्रपिड, या उसे हटवा कर शेष पिंड लिया हो,
बलि-पाहुडियाए	: बलि के लिए बना हुआ नैवेद्य या नैवेद्य लगने से पहले पिण्ड लिया हो,

† प्रतिमाधारी श्रावक तथा गौचरी की दया करने वाले श्रावकों को गौचरी लाने के पश्चात् ईर्यापथिक तथा गौचरी के अतिचारों का प्रतिक्रमण करने के लिए 'इच्छाकारेणं' 'तस्स उत्तरी' पढ़कर 'इच्छाकारेण' तथा इस 'गोयरग्गचरियाए' के पाठ का कायोत्सर्ग अवश्य करना चाहिए।

ठवणा-पाहुडियाए : भिखारी या साधु के लिए स्थापित भिक्षा ली हो,

संकिए : निर्दोषता मे शकावाली भिक्षा ली हो,

सहसागारे : सहसा अनेषणीय भिक्षा ली हो,

अरणेसरणाए : कल्प्य-अकल्प्य की गवेषणा न की हो,

पाण-भोयणाए : प्राण (त्रस) युक्त रसचलित भिक्षा ली हो,

बीय-भोयणाए : बीजयुक्त या बीजमय भिक्षा ली हो,

हरिय-भोयणाए : हरीयुक्त या हरीमय भिक्षा ली हो,

पच्छा-कम्मियाए : दाता पीछे नया आरम्भ (भोजन) करे, हाथ-पाँव धोवे, ऐसी भिक्षा ली हो,

पुरे-कम्मियाए : पहले हाथ पात्र धोवे, ऐसी, भिक्षा ली हो,

अदिट्ठ-हडाए : दृष्टि न पहुँचे वहाँ से, अंधेरे मे से या दूर से लाई हुई भिक्षा ली हो,

दग-संसट्ठ-हडाए : सचित्त पानी सहित, भिक्षा ली हो या ऐसे हाथ पात्र से भिक्षा ली हो,

रय-ससट्ठ-हडाए : सचित्त रज सहित भिक्षा ली हो या ऐसे हाथ पात्र से भिक्षा ली हो,

परिसाडणियाए : गिराते हुए लाई गई या दी जाती हुई भिक्षा ली हो,

परिट्ठावणियाए : परठने योग्य, भिक्षा ली हो या, दाता शेष द्रव्य फेक दे, ऐसी भिक्षा ली हो,

ओसाहरण-भिक्खाए : वार-वार या दीनतापूर्वक भिक्षा माँगी हो, या उत्तम पदार्थ माँगे हो,

ज उग्गमेणं	: यो जो उद्गम के आधाकर्मादि १६
उप्पायणेसणाए	: उत्पाद के धात्री आदि १६ दोष तथा एषणा के शंकितादि १० दोष लगाये हो,
अपडिसुद्धं	: लगाकर अप्रति शुद्ध (अकल्पनीय)
पडिग्गहियं	: आहार ग्रहण किया हो,

परिभोगैषणा का अतिचार

परिभुत्तं वा	: करके भोग भी लिया हो,
जन परिट्ठविय	: किन्तु परिस्थापनीय न परठा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

'गोयरग्ग-चरियाए' प्रश्नोत्तरी

प्र० : अनेषणीय भिक्षा आ जाने के पश्चात् उसे परठना (त्यागना) आवश्यक क्यों ? इससे भिक्षा का अपव्यय नहीं होता ?

उ० : जो अनेषणीय जीवसहित हो और जिसमे से जीवों का निकालना अशक्य हो, तो उसे जीव रक्षा के लिए परठना आवश्यक है । जीव रक्षा के लिए देहत्याग भी अपव्यय नहीं है, तो भिक्षा त्याग अपव्यय कैसे हो सकता है ?

२. व्रती के लिए गृहस्थ ने भिक्षा बनाई हो और व्रती उसे ग्रहण कर भोग ले, तो इससे गृहस्थ के दोष का व्रती द्वारा अनुमोदन होता है, उस अनुमोदन के निवारण के लिए भी उसे परठना आवश्यक है ।

३. अनेषणीय आहार लेकर भोग लेने पर गृहस्थ को यह विचार होता है कि 'मुझे थोड़ा दोष अवश्य लगा, पर मेरी भिक्षा व्रती ने भोगी, इससे मुझे बहुत धर्म हुआ' इन विचारो से उसमे दोषी आहार बनाने की प्रवृत्ति चल पड़ती है और यदि व्रती उसे परठ देता है, तो गृहस्थ को यह भाव उत्पन्न होता है कि —'यदि मैंने भिक्षा मे दोष लगाकर किसी प्रकार उन्हें दे भी दिया, तो वे उसे भोगते तो हैं नही, परठ देते है, तो मुझे व्यर्थ दोष क्यो लगाना ?' इस प्रकार उसमें भविष्य मे दोषी भिक्षा बनाने की प्रवृत्ति नहीं चल पाती। **'भविष्य में उसकी दोषी प्रवृत्ति न चले।'** इसलिए भी अनेषणीय भिक्षा परठ देना आवश्यक है। इन आवश्यकताओ को देखते हुए भिक्षा परठना अपव्यय नही माना जा सकता।

प्र० : आधाकर्म आदि ४२ दोष बताइए।

उ०. इसके लिए समिति गुप्ति सार्थ देखिये।

प्र० : व्रतधारी तथा प्रतिमाधारी श्रावक को 'रात्रि को गोचरी लाना नही चाहिए।' अत इस पाठ को रात्रि **प्रतिक्रमण में पढ़ने की क्या आवश्यकता है ?**

उ० १. श्रद्धाप्ररूपणा की शुद्धि के लिए २. अब तक सूर्य उदय नही हुआ, या अब सूर्य अस्त हो चुका है', अति-प्रकाश, बादल आदि के कारण इसका ध्यान न रहे और गोचरी हो जाय, तो उसकी शुद्धि के लिए ३. मर्यादा उल्लघन हो जाय, तो उसकी शुद्धि के लिए तथा ४. रात्रि को स्वप्न मे गोचरी की हो और उसमे अतिचार लगे हो, तो उसकी शुद्धि आदि के लिए।

❖

पाठ २९ उन्तीसवाँ

२५. 'चाउक्कालं सज्झायस्स' स्वाध्याय और प्रतिलेखना के अतिचारों का प्रतिक्रमण पाठ[†]

पडिक्कमामि : प्रतिक्रमण करता हूँ
चाउक्कालं : चारो काल (चारो प्रहर, प्रतिलेखन
सज्झायस्स काल, स्वाध्याय काल, भिक्षा काल,
अकरणयाए अकाल आदि को छोड कर) स्वाध्याय न की हो,
उभओ कालं : (प्रातः और सध्या) दोनों काल
भण्डोवगरणस्स : भण्डोपकरण, (रजोहरण वस्त्र, पात्र, शय्या-सथारा उच्चार-प्रश्रवण-भूमिका आदि का
अप्पडिलेहणाए : प्रतिलेखन न किया हो,
दुप्पडिलेहणाए : या विधि से प्रमार्जन न किया हो,
अप्पमज्जणाए प्रमार्जन न किया हो,
दुप्पमज्जणाए या विधि से प्रतिलेखन न किया हो,
अइक्कमे, वइक्कमे, : उससे जो अतिक्रम, व्यतिक्रम,
अइयारे, अणायारे : अतिचार, अनाचार लगा हो, यो

[†] प्रतिमाधारी श्रावक तथा पौषध, संवर या दया करने वाले श्रावकों को चारों काल स्वाध्याय करने के पश्चात् 'चाउक्कालं' (या 'आगमे तिविहे) का पाठ अवश्य पढना चाहिए तथा उभयकाल प्रतिलेखना करने के पश्चात् भी 'चाउक्कालं' का पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए।

जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: मुझे जो कोई दिन संबधी अतिचार लगा हो,

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'चाउक्कालं' प्रश्नोत्तरी

प्र० : दोनों काल प्रतिलेखन क्यो आवश्यक है ?

उ० : जैसे दिन भर मे और रात भर मे आत्मा में कोई न कोई दोष लग जाने की सभावना रहती है, और आत्मा मे लगे उन दोषो को दूर करने के लिए दो बार प्रतिक्रमण आवश्यक है, वैसे ही दिन भर मे और रात भर मे वस्त्र, पात्र, रजोहरणादि मे जीवो के प्रवेश हो जाने की सभावना रहती है, अत. उन प्रविष्ट जीवो की रक्षा के लिए उभयकाल प्रतिलेखन आवश्यक है।

प्र० : अनाचार से तो व्रत भग हो जाता है। क्या व्रत भग का पाप 'मिच्छा मि दुक्कड' से दूर हो जाता है ?

उ० : अनजान आदि से जो स्वाध्याय-प्रतिलेखन आदि उत्तरगुण सबधी (छोटे) नियमो का भंग होता है, वह 'मिच्छा मि दुक्कड' इस हार्दिक प्रतिक्रमण से दूर हो जाता है। और जो जानते हुए नियमो का भग होता है, वह नवकारसी (नमस्कार सहित) तप आदि करने से दूर होता है।

❖

पाठ ३० तीसवाँ

२६. 'तैंतीस बोल' 'विस्तृत प्रतिक्रमण'

पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ, (समुच्चय)
एगविहे असंजमे	: एक प्रकार का असयम किया हो
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
दोहिं बंधणेहिं	: कर्म बाधने वाले दो बन्धन
राग-बंधणेणं	: राग बन्धन
दोस-बंधणेणं	: द्वेष बन्धन किये हों
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं दंडेहिं	: दण्डित करने वाले तीन दण्ड
मण-दंडेणं वय-दंडेणं	: मनदण्ड वचनदण्ड
काय-दंडेणं	: कायदण्ड किये हो
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं गुत्तीहिं	: रक्षा करने वाली तीन गुप्ति
मण-गुत्तीए वय-गुत्तीए	: मनगुप्ति वचनगुप्ति
काय-गुत्तीए	: कायगुप्ति न की हों
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं सल्लेहिं	: मोक्ष रोकने वाले तीन शल्य
माया-सल्लेणं नियाणसल्लेणं	: माया शल्य, निदान शल्य
मिच्छा दंसण सल्लेणं	: मिथ्या दर्शन शल्य लगाये हों
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं गारवेहिं	: भारी बनाने वाले तीन गर्व
इड्ढी गारवेणं रस गारवेणं	: १. ऋद्धि गर्व २ रसगर्व

साया गारवेणं	:	साता गर्व किये हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं विराहणाहिं	:	तीन विराधनाएँ
णाण-विराहणाए	:	ज्ञान विराधना
दंसण-विराहणाए	:	दर्शन विराधना
चरित्त-विराहणाए	:	चारित्र विराधना की हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
चउहिं कसाएहिं	:	ससार वर्धक चार कषाये
कोह कसाएणं माण कसाएणं	:	क्रोध कषाय मान कषाय
माया कसाएणं	:	माया कषाय
लोह-कसाएण	:	लोभ कषाय की हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
चउहिं सण्णाहिं	:	अभिलाषा रूप चार संज्ञाएँ
आहार-सण्णाए भय-सण्णाए	:	आहार सज्ञा, भय सज्ञा
मेहुण-सण्णाए	:	मैथुन सज्ञा
परिग्गह सण्णाए	:	परिग्रह सज्ञा की हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
चउहिं विकहाहिं	:	धर्म विरोधी चार विकथाएँ
इत्थी कहाए भत्त कहाए	:	स्त्री-कथा, भक्त-कथा
राय कहाए देस कहाए	:	राज-कथा, देश-कथा की हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
चउहिं झाणेणं	:	योग एकाग्रता रूप चार ध्यान
अट्टेणं झाणेणं	:	आर्त-ध्यान
रुद्देणं झाणेणं	:	रौद्र-ध्यान ध्याया हो
धम्मेणं झाणेणं	:	धर्म-ध्यान
सुक्केणं झाणेणं	:	शुक्ल-ध्यान न ध्याया हो

पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं किरियाहिं	:	कर्म बाँधने वाली पाँच क्रियाएँ
काइयाए अहिगरणियाए	:	कायिकी, अधिकरणिकी
पाउसियाए	:	प्राद्वेषिकी
पारितावणियाए	:	पारितापनिकी
पाणाइवाइयाए	:	प्राणातिपातिकी क्रिया की हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं कामगुणेहिं	:	इन्द्रियों के पाँच काम गुण
सद्देणं रूवेणं, गंधेणं	:	शब्द, रूप, गंध
रसेण फासेणं	:	रस, स्पर्श भोगे हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं †महव्वएहिं	:	पाँच महाव्रत
सव्वाओ †पाणाइवायाओ वेरमणं	:	सर्व प्राणातिपात से विरमण
सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं	:	सर्व मृषावाद से विरमण
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं	:	सर्व अदत्तादान से विरमण
सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं	:	सर्व मैथुन से विरमण
सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं	:	सर्व परिग्रह से विरमण सम्यक् न श्रद्धा हो
पडिक्कमामि	:	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं समिएहिं	:	यत्ना प्रवृत्ति रूप पाँच समितियाँ
इरिया-समिए भासा-	:	ईर्या समिति, भाषा

†कोई 'अणुव्वएहिं' 'थूलाओ' बोलते हैं ।

समिए एसरगा-समिए		समिति, एषरगा समिति
श्रायाएा-भेंड-मत्त-	:	श्रादान भाण्ड मात्र
निक्खेवरगा-समिए		निक्षेपरगा समिति
उच्चार-पासवरग-खेल-	:	उच्चार प्रश्रवरग खेल
जल्ल-सिघारग-परिट्ठा वरिगया		जल्लसिघारग परिस्था पनिका
समिए		समिति न की हो
पडिक्कमामि,	:	प्रतिक्रमरग करता हूँ,
छहिं जीव-निकाएहिं		छह जीवकाय
पुढवि-काएरगं श्राउ-काएरगं	:	पृथ्वीकाय, श्रप्काय,
तेउ-काएरगं वाउकाएरग	:	तेजस्काय, वायुकाय,
वरगस्सइ-काएरगं तस-काएरगं		वनस्।तिकाय, त्रस काय सम्यक् न श्रद्धे हो
पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं	:	प्रतिक्रमरग करता हूँ, कर्म-
	:	चिपकाने वाली यह लेश्याएँ
१. किण्ह-लेसाए २. नील-लेसाए ३ काउ-लेसाए	:	१ कृष्णलेश्या, २ नील लेश्या ३ कापोत लेश्या की हो
४. तेउ-लेसाए ४. पउम-लेसाए ६ सुक्क लेसाए	:	४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६. शुक्ल-लेश्या न की हो
सत्तहिं भय-ट्ठारगेहिं	:	सात भय-स्थान

१. जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४. रूपमद, ५. तपमद, ६ श्रुतमद, ७ लाभमद, ८ ऐश्वर्यमद किया हो,

नवहिं बंभचेर-गुत्तीहिं	:	नव ब्रह्मचर्य गुप्ति (बाड)

पहली वाड मे ब्रह्मचारो पुरुष, स्त्री (रिरगी स्त्री, पुरुष) पशु नपुसक रहित स्थान मे रहे, सहित स्थान मे नही रहे। यदि रहे, तो चूहे को बिल्ली का दृष्टान्त। दूसरी वाड मे ब्रह्मचारी

पुरुष स्त्री की कथा करे नही, करे, तो जीभ को नीबू और इमली का दृष्टान्त। **तीसरी वाड मे** ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नही, बैठे, तो आटे को कोले का दृष्टान्त तथा घी के घडे को अग्नि का दृष्टान्त। **चौथी वाड मे** ब्रह्मचारी स्त्री के अगोपाग का निरीक्षण करे नही, करे, तो कच्ची आँख को सूर्य का दृष्टान्त। **पाँचवीं वाड में** ब्रह्मचारी टाटी भीत आदि के अन्तर मे स्त्री-पुरुष के विषयकारी शब्द सुने नही, सुने, तो मयूर को मेघध्वनि का दृष्टान्त। **छठी वाड में** ब्रह्मचारी पहले के काम भोगो का चिन्तन करे नही, करे, तो जिनरक्षित को रत्नादेवी का दृष्टान्त तथा परदेशी को छाछ का दृष्टान्त। **सातवीं वाड में** ब्रह्मचारी पुरुष प्रतिदिन सरस आहार करे नही, करे, तो सन्निपात के रोगी को दूध और मिश्री का तथा राजा को आम का दृष्टान्त। **आठवीं वाड मे** ब्रह्मचारी पुरुष सरस-नीरस आहार मर्यादा उपरात करे नही, करे, तो सेर की हाडी मे सवासेर का दृष्टान्त। **नववीं वाड में** ब्रह्मचारी पुरुष शरीर आदि की सुश्रूषा-विभूषा करे नही, करे, तो रेक के हाथ मे रत्न का दृष्टान्त। ये नववाड़ सम्यक् न श्रद्धी (पाली) हो

दसविहे समण-धम्मे　　: दश श्रमण धर्म (यति धर्म)

१. खती (क्षमा) २. मुत्ती (निर्लोभता) ३. अज्जवे (ऋजुता, सरलता) ४. मद्दवे (मृदुता, कोमलता) ५. लाघवे (लघुता) ६. सच्चे (सत्य) ७. सजमे (सयम) ८ तवे (तप) ९ चियाए (त्याग) १० बभचेर वासे (ब्रह्मचर्य वास) ये दश श्रमण धर्म सम्यक् न श्रद्धे (पाले) हो।

एगारसहिं उवासग-पडिमाहिं　　: ग्यारह उपासक (श्रावक) प्रतिमाएँ सम्यक् न पाली हो,

बारसहिं भिक्खू-पडिमाहिं	: बारह भिक्षु (साधु) प्रतिमाएँ सम्यक् न श्रद्धी हो,
तेरसहिं किरिया-ठाणेहिं	: तेरह (मे से बारह क्रियाएँ छोडी न हो तथा तेरहवी) क्रिया सम्यक् न श्रद्धी हो
चोद्दसहिं भूयग्गामेहिं	: जीव के १४ भेद या १४ गुणस्थान सम्यक् न श्रद्धे हो,
पण्णरसहिं परमाहम्मिएहिं	: पन्द्रह परमाधर्मी बनने जैसे पाप किये हों,
सोलसहिं गाहा-सोलसएहिं	: श्री सूत्रकृतांग सूत्र के १६ अध्ययन सम्यक् न श्रद्धे हो
सत्तरसविहे असंजमे	: सत्रह प्रकार का असंयम किया हो,
अट्ठारसविहे अबंभे	: अट्ठारह प्रकार का अब्रह्मचर्य सेवन किया हो
एगूणवीसाए णाय-ज्झयणेहिं	: श्री ज्ञाता सूत्र के १९ अध्ययन सम्यक् न श्रद्धे हो
वीसाए असमाहि-ठाणेहिं	: बीस असमाधि (उत्पन्न करने वाले) स्थान सेवन किये हों
एगवीसाए सबलेहिं	: इक्कीस शबल (बडे) दोष सेवन किये हों
बावीसाए परिसहेहिं	: धर्म दृढता और निर्जरा के लिए बावीस परीषह न जीते हो
तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं	: श्री सूयकृतांग सूत्र के (१६+७) २३ अध्ययन सम्यक् न श्रद्धे हो
चोवीसाए देवेहिं	: चौवीस तीर्थंकर या २४ देव सम्यक् न श्रद्धे हो

पणवीसाए भावणाहिं	: पाँच महाव्रत की पच्चीस भावनाएँ सम्यक् न श्रद्धी हो
छव्वीसाए दसा-कप्प-ववहाराणं उद्देसण कालेहिं	: दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प और व्यवहार के (१०+६+१०) २६ अध्ययन सम्यक् न श्रद्धे हो
सत्तावीसाए अणगार-गुणेहिं	: सत्तावीस अनगार (साधु) गुण सम्यक् न श्रद्धे हो
अट्ठावीसाए आयार-प्पकप्पेहिं	: आचाराग निशीथ के (२३+५) २८ अध्ययन सम्यक् न श्रद्धे हों
एगूणतीसाए पावसुय-प्पसंगेहिं	: उनतीस पापश्रुत का प्रयोग किया हो,
तीसाए महा-मोहणीय-ट्ठाणेहिं	: तीस महामोहनीय स्थानो का सेवन किया हो
एगतीसाए सिद्धाइ-गुणेहिं	: इकत्तीस सिद्ध के गुण सम्यक् न श्रद्धे हों
बत्तीसाए जोग-सगहेहिं	: बत्तीस योग-संग्रह न किये हो
तेत्तीसाए असायणाहिं	: तेतीस आशातनाएँ की हो। या निम्न
अरिहन्ताणं आसायणाए	: अरिहन्तो की आशातना की हो
सिद्धाण आसायणाए	: सिद्धों की आशातना की हो
आयरियाण आसायणाए	: आचार्यों की आशातना की हो
उवज्झायाण ,,	उपाध्यायो की आशातना की हो
साहूणं आसायणाए	: साधुओ की आशातना की हो
साहूणीण आसायणाए	: साध्वियो की आशातना की हो
सावयाणं आसायणाए	: श्रावको की आशातना की हो
सावियाण आसायणाए	: श्राविकाओ की आशातना की हो
देवाणं असायणाए	: देवो की आशातना की हो

देवीण आसायणाए	: देवियो की आशातना की हो
इहलोगस्स असायणाए	: इस लोक की आशातना की हो
परलोगस्स आसायणाए	: परलोक को आशातना की हो
केवलि-पण्णत्तस्स धम्मस्स आसायणाए	: केवली प्ररूपित धर्म की आशातना की हो
सदेव-मणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए	: देव मनुष्य असुर सहित सारे लोक की आशातना की हो।
सव्व-पाण-भूय-जीव सत्त ण आसायणाए	: सब प्राण भूत जीव सत्त्वो की आशातना की हो
कालस्स आसायाणाए	: काल की आशातना की हो
सुयस्स आसायणाए	: श्रुत की आशातना की हो
सुयदेवस्स आसायणाए	: श्रुतदेव (तीर्थंकर या गणधर) की आशातना की हो
वायणारियस्स आसायणाए	: वाचनाचार्य (शास्त्र पढाने वाले) की आशातना की हो
ज वाइद्ध, वच्चामेलियं	: यदि व्याविद्ध, व्यत्ययाम्रेडित
हीणक्खर, अच्चक्खर	: हीनाक्षर, अतिअक्षर
पयहीण, विणयहीण	: पदहीन, विनयहीन
जोगहीण, घोसहीण	: योगहीन या घोषहीन पढा हो
सुट्ठु ? (ऽ) दिण्णं	: सुष्ठु ? (न) दिया हो
दुट्ठु पडिच्छियं	: दुष्टु लिया हो
अकाले कओ सज्झाओ	: अकाल मे स्वाध्याय की हो
काले न कओ सज्झाओ	: काल मे स्वाध्याय न की हो
असज्झाए सज्झाइय	: अस्वाध्याय मे स्वाध्याय की हो
सज्झाए न सज्झाइयं	: स्वाध्याय मे स्वाध्याय न की हो

इन तेतीस बोल मे जानने योग्य को नही जाने हों, छोडने योग्य को नही छोडे हो और आदरने योग्य को नहीं आदरे हो तथा जिन महापुरुषो ने जानने योग्य को जाने हो, छोड़ने योग्य को छोडे हो और आदरने योग्य को आदरे हो उनकी आशातना की हो तो,

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'तेतीस बोल' प्रश्नोत्तरी

प्र० : यह पाठ किसलिए है ?

उ० : श्रद्धा प्ररूपणा एव स्पर्शना मे आये हुए दोषो की निवृत्ति के लिए है।

प्र० : श्रद्धा का दोष किसे कहते है ?

उ० : असयम आदि जो त्याग योग्य है, उन्हे त्यागने योग्य न समझना या आदरने योग्य समझना तथा गुप्ति आदि जो आदरने योग्य हैं, उन्हे आदरने योग्य न समझना या त्यागने योग्य समझना, एवं छह काय की विराधना से हटने के लिए और उनकी रक्षा के लिए जो छह काय आदि का ज्ञान आवश्यक है, उस ज्ञान को आवश्यक न समझना, श्रद्धा का दोष है।

प्र० : प्ररूपणा का दोष किसे कहते है ?

उ० : 'असंयम त्यागने योग्य नही—आदरने योग्य है' इत्यादि प्ररूपणा करना, प्ररूपणा का दोष है।

प्र० : स्पर्शना का दोष किसे कहते हैं ?

उ० : पाँच महाव्रत, ग्यारह उपासक प्रतिमा आदि जिन्हे स्वीकार किया है, उसका सम्यक्स्पर्श न करना, उसमे अतिचार लगाना, स्पर्शना का दोष है।

प्र० : क्या त्यागने योग्य और आदरने योग्य बोल, 'जानने योग्य' नही हैं ?

उ० : हैं। यदि उन्हे पहले जाना नही जायगा, तो उन्हे त्यागा या आदरा कैसे जायगा ?

प्र० : यदि ऐसा है, तो कुछ ही बोलो को जानने योग्य और शेष बोलो को त्यागने योग्य या आदरने योग्य क्यो कहा जाता है ?

उ० : इसलिए कि १. कुछ बोलो मे केवल जानने की मुख्यता है, क्योकि वे जानने के पश्चात् त्यागे या आदरे नही जाते। शेष बोलो मे जानने की मुख्यता नही है, पर जानकर या तो त्यागने की मुख्यता है या आदरने की मुख्यता है।

प्र० : इन तैतीस बोलो मे **जानने योग्य** बोल कितने हैं ?

उ० : १. छह जीव निकाय २. चउदह जीव के भेद या गुणस्थान ३. पन्द्रह परमाधर्मिक ४. सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययन ५. ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन ६. बावीस परीषह ७. सूत्रकृतांग के तेवीस अध्ययन ८. चौवीस देव ९. दशा कल्प व्यवहार के २६ अध्ययन और १०. आचाराग, निशीथ के अट्ठावीस अध्ययन —ये दस बोल जानने योग्य हैं।

प्र० : इन तैतीस बोलो मे **त्यागने योग्य** बोल कितने हैं ?

उ० : १ एक असयम २ दो बध ३. तीन दण्ड ४ तीन शल्य ५. तीन गर्व ६. तीन विराधना ७. चार कषाय ८. चार

सज्ञा ९ चार विकथा १०. पाँच कामगुण ११ सात भय १२. आठ मद १३ सत्रह असयम १४. अट्ठारह अब्रह्म १५. वीस असमाधि १६ इक्कीस शवल दोष १.. उनतीस पापश्रुत १८. तीस महामोहनीय और १९. तेंतीस आशातना—ये उन्नीस वोल त्यागने योग्य है

प्र० : इन तैंतीस वोलो मे **आदरने योग्य** वोल कितने हैं ?

उ० : १. तीन गुप्ति २ पाँच (अणुव्रत) महाव्रत ३. पाँच समिति ४. नव ब्रह्मचर्य गुप्ति ५. दश यति धर्म ६. ग्यारह उपासक प्रतिमा ७. वारह भिक्षु प्रतिमा ८ पच्चीस भावना ९ सत्तावीस अनगार गुण १०. इकत्तीस सिद्धादि गुण और ११ वत्तीस योग सग्रह—ये ११ ग्यारह वोल आदरणीय है।

प्र० : इन तैंतीस वोलो मे, जिनमे कुछ त्यागने योग्य और कुछ आदरने योग्य, यो दोनो प्रकार के बोल हो, ऐसे मिश्र **बोल** कितने है ?

उ० : १ चार ध्यान २ छह लेश्या और ३. तेरह क्रिया स्थान, ये तीन वोल मिश्र हैं। क्योकि चार ध्यान मे १. आर्त, २. रौद्र, ये दो ध्यान त्यागने योग्य और १. धर्म २ शुक्ल, ये दो ध्यान आदरने योग्य हैं। लेश्या मे १ कृष्ण २ नील, ३ कापोत, ये तीन लेश्याएँ छोडने योग्य और १. पीत २. पद्म ३ शुक्ल, ये तीन लेश्याएँ आदरने योग्य हैं तथा तेरह क्रियाओ मे पहली अर्थदण्ड आदि १२ क्रियाएँ त्यागने योग्य और शेष तेरहवी ईर्यापथिक क्रिया आदरने योग्य है।

प्र० : सव वोलो का योग कितना हुआ ?

उ० · दश ब ल जानने योग्य, उन्नीस बोल त्यागने योग्य, ग्यारह बोल आदरने योग्य और तीन बोल मिश्र, सब बोल (१०+१९+११+३=४३) त्रयालीस हुए।

प्र० तैंतीस बोल, त्रयालीस बोल कैसे हुए ?

उ० · तीन के बोल, चार अधिक तथा चार और पाँच के बोल, तीन-तीन अधिक, यो सब (४+३+३)=१० बोल अधिक होने से।

प्र० · आशातना किसे कहते है ?

उ० : १ गुण होते हुए भी गुण-रहित बताना, २. दोष न होते हुए भी दोष-सहित बताना, ३. न्यून, अधिक या विपरीत प्ररूपणा करना, ४. अविनय अपकीर्ति करना, १५ विरुद्ध कार्य करना, ६. अशाता देना आदि।

पाठ ३१ इकतीसवाँ

२७. 'नमोचउवीसाए' 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का पाठ

जैन धर्म के २४ चौबीस प्रवर्तकों को नमस्कार

णमो चउवीसाए	: नमस्कार हो (इस अवसर्पिणी काल
तित्थयराण	के) चौबीस तीर्थंकर
उसभाइ-महावीर	श्री ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी
पज्जवसाणाणं	तक को। (क्योंकि—जिनका)

जैन धर्म के १४ गुण

इणमेव निग्गंथं	: यही निर्ग्रन्थ (तीर्थंकरों का)
पावयणं	: प्रवचन (जैनधर्म)
१ सच्चं	: सत्य (हितकर व यथार्थ) है
२. अणुत्तरं	: अनुत्तर (सबसे बढकर) है
३. केवलियं	: केवल (अद्वितीय-बेजोड) है
४. पडिपुण्णं	: प्रतिपूर्ण (सर्वगुणयुक्त) है
५ नेयाउय	: न्याय (स्याद्वाद सिद्धात) सहित है
६ संसुद्ध	: संशुद्ध (शत प्रतिशत शुद्ध) है
७ सल्लगत्तणं	: तीनो शल्यो को काटने वाला है
८. सिद्धिमग्गं	: सिद्धिमार्ग (सिद्धिदाता) है
९. मुत्तिमग्ग	: मुक्तिमार्ग (८ कर्म खपाने वाला) है
१० निज्जाणमग	: निर्याणमार्ग (मोक्ष पहुँचाने वाला) है
११ निव्वाणमग्गं	: निर्वाण मार्ग (सच्ची शाति देने वाला) है
१२. अवितह	: अवितथ (कभी झूठा न होने वाला या एक समान रहने वाला) है
१३. अविसंधि	: अविसंधि (महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा सदैव अमर) है
१४. सव्व दुक्ख प्पहीण मग्गं	: सभी दुखो का (सदा के लिए पूर्ण) नाश करने वाला है।

जैन धर्म के ५ पाँच फल

इत्थं ठिया जीवा	: इसमे स्थित (इस जैन धर्म की श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना करने वाले जीव
१. सिज्झंति	: सिद्ध (कृतकृत्य-सफल) बनते हैं

२. बुज्झति	: बुद्ध (केवलज्ञानी बनते हैं)
३. मुच्चति	: मुक्त (आठ कर्म रहित) बनते हैं
४. परिनिव्वायंति	: परिनिर्वाण (सच्ची शाति) पाते हैं
सव्व-दुक्खाण-अंत करेंति	: सभी (कायिक-मानसिक) दुखो का (सदा के लिए पूर्ण) अत करते हैं।

जैन धर्म की स्वीकृति

तं धम्मं	: ऐसे उस (तीर्थंकर कथित, गुणयुक्त फलवान जैन) धर्म की
१. सद्दहामि	: श्रद्धा (विश्वास) करता हूँ
२. पत्तियामि	: (उसके प्रति) प्रीति (प्रेम) करता हूँ
३. रोएमि	: (उसे ग्रहण करने की) रुचि करता हूँ
४. फासेमि	: (प्रत्याख्यान लेकर) स्पर्श करता हूँ
५. पालेमि	: (अन्त तक निरतिचार) पालता हूँ
६ अणुपालेमि	: (बार बार या पूर्व पुरुषो ने जैसे उसे पाला तदनुसार) अनुपालता हूँ
तं धम्मं सद्दहतो	: उस धर्म की श्रद्धा करते हुए
पत्तियंतो	: प्रीति (या प्रतीति) करते हुए
रोयतो, फासतो	: रुचि करते हुए, स्पर्श करते हुए
पालतो, अणुपालंतो	: पालते हुए, अनुपालते हुए

जैन धर्म के प्रति अभ्युत्थान

तस्स धम्मस्स	: उस (जैन) धर्म की
केवलि पण्णत्तस्स	: जो केवली प्ररूपित है
अब्भुट्ठिओमि	: उठ कर खडा होता हूँ
आराहणाए	: आराधना (करने) के लिए

विरओमि	: विरत होता (हटता) हूँ
विराहणाए	: विराधना (करने) मे
१. असंजमं परियाणामि	: (१७ प्रकार के) असयम को त्यागने योग्य जानकर देश से त्यागता हूँ
संजमं उवसंपवज्जामि	: (१७ प्रकार के) सयम को देश से स्वीकार करता हूँ
२. अबंभ परियाणामि	: (१८ प्रकार के) अब्रह्मचर्य को त्यागने योग्य जानकर देश से त्यागता हूँ
बंभं उवसंपवज्जामि	: (१८ प्रकार के) ब्रह्मचर्य को देश से स्वीकार करता हूँ
३. अकप्पं परियाणामि	: अकल्पनीय को त्यागने योग्य जान-कर देश से त्यागता हूँ
कप्पं उवसंपवज्जामि	: कल्पनीय को देश से स्वीकार करता हूँ
४. अण्णाणं परियाणामि	: अज्ञान (ज्ञानअभाव व मिथ्या ज्ञान) को त्यागने योग्य जानकर त्यागता हूँ
नाणं उपसंपवज्जामि	: सम्यग्ज्ञान को स्वीकार करता हूँ
५. अकिरियं परियाणामि	: अक्रिया (क्रिया अभाव व मिथ्या क्रिया) को त्यागने योग्य जानकर त्यागता हूँ
किरिय उवसंपवज्जामि	: सम्यक् क्रिया को स्वीकार करता हूँ
मिच्छत्त परियाणामि	: मिथ्यात्व (श्रद्धाअभाव व मिथ्याश्रद्धा) को त्यागने योग्य जानकर त्यागता हूँ
सम्मत्त उवसंपवज्जामि	: सम्यक्त्व (सम्यक्श्रद्धा) को स्वीकार करता हूँ
अबोहि परियाणामि	: आगामी भवो मे बोधि (सम्यक्त्व) दुर्लभ हो, ऐसी क्रिया को त्यागता हूँ

बोहिं	: आगामी भवों में बोधि (सम्यक्त्व)
उवसपवज्जामि	सुलभ हो, ऐसी क्रिया स्वीकारता हूँ
उम्मग्ग	: उन्मार्ग (ससार मार्ग और कुमार्ग)
परियाणामि	को त्यागने योग्य जानकर त्यागता हूँ
मग्ग	: (सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र तप
उवसंपवज्जामि	रूप मोक्ष के सम्यग्) मार्ग को स्वीकारता हूँ।

अशेष (सम्पूर्ण) सक्षिप्त प्रतिक्रमण

जं संभरामि	: जिन अतिचारो का स्मरण हो रहा है
जं च न सभरामि	: और जिन का स्मरण नही हो रहा है
जं पडिक्कमामि	: जिनका प्रतिक्रमण कर रहा हूँ
ज च न पडिक्कमामि	: और जिनका प्रतिक्रमण नही कर रहा हूँ।
तस्स सव्वस्स	: उन सभी
देवसियस्स अइयारस्स	: दिन सबधो अतिचारो का
पडिक्कमामि	: प्रतिक्रमण करता हूँ

क्योंकि मैं

समणो ऽहं	: मैं श्रमण (श्रावक हूँ)
संजय-	: क्योकि (पाप कर्म छोडकर) सयत (श्रावक) बना हूँ, वह ऐसे
विरय-	: वर्त्तमान का सवर कर विरत बना हूँ
पडिहय-	: भूत का प्रतिक्रमण कर प्रतिहत बना हूँ
पच्चक्खाय-	: भविष्य का प्रत्याख्यान कर

पावकम्मे	: प्रत्याख्यात पापकर्म वाला बना हूँ
अणियाणो	: मैं निदान (मोक्ष के अतिरिक्त अन्य फल की कामना से) रहित हूँ
दिट्ठि संपन्नो	: सम्यग्दृष्टिसंपन्न हूँ
मायामोसं विवज्जिओ	: कपट झूठ से रहित हूँ

ऐसी दशा मे किये हुए किसी पाप को छुपाना, उसका प्रतिक्रमण न करना या विस्मृत पाप के प्रति अनादर करना मेरे लिए कैसे उचित है ? अतः मैं सभी पापो की आलोचना करके उनका प्रतिक्रमण करता हूँ।

जैन धर्म पालको को नमस्कार

अड्ढाइज्जेसु दीव	: अढाई द्वीप
समुद्देसु	: (और दो) समुद्रो की
पण्णरससु	: पन्द्रह
कम्मभूमिसु	· कर्मभूमियो मे (मुझ से छोटे या वडे)
जावंति केइ साहू	: जितने भी कोई साधू है
रयहरण-गुच्छग-	: (जो वेश से) रजोहरण, गोच्छा-पूजणी
(मुह पोत्तिय)	: ('मुखवस्त्रिका' गुच्छग का पाठान्तर)
पडिग्गह-धारा	: पात्र आदि के धारी हैं (तथा गुण से या कारणवश वेश रहित केवल)
पंच-महव्वय-धरा	: पाँच महाव्रत धारी हैं
अट्ठारस-सहस्स	: अट्ठारह सहस्र (हजार)
सीलंग-रह-धारा	: शीलाग रूप रथ के धारी हैं
अक्खयायार	: अक्षत (निरतिचार) आचार वाले

चरित्ता	: चारित्रवान् है
ते सव्वे-	: (ऐसे वेश-गुण युक्त) उन सभी को
सिरसा मणसा	: शिर (काया) से, मन से और
'मत्थएणवदामि'	: वचन से 'मत्थएण वदामि' कहते हुए तीनो योगो से वन्दना करता हूँ ।

'नमो चउव्वीसाए' प्रश्नोत्तरी

प्र० : श्रद्धा आदि को दृष्टान्त से समझाइए ।

उ० : जैसे किसी विश्वसनीय पुरुष के इस कथन पर कि 'यह वैद्य 'सर्वश्रेष्ठ' है ।' वैद्य को सर्वश्रेष्ठ मानना 'श्रद्धा' है । उस वैद्य के द्वारा सभी रोगियो को पूर्ण नीरोग होते देखकर वैद्य की सर्वश्रेष्ठता का निश्चय होना 'प्रतीति' है । स्वय नीरोग बनने के लिए उसकी औषधि लेने की भावना होना 'रुचि' है । उसकी औषधि को हाथ मे लेना और मुँह मे रखना 'स्पर्शना' है । उसकी औषधि को पेट मे उतारना 'पालना' है । पथ्य का पालन करना तथा नीरोग न होने तक औषध लेते रहना 'अनुपालना' है ।

प्र० : अट्ठारह सहस्र शीलांग रथ क्या है ?

उ० : क्षमा आदि दश श्रमण धर्म (यति धर्म) है । इनके पालक साधु पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अजीव, इन दश का असयम नही करते, अत. दश को दश से गुणने पर सौ १०×१०=१०० हुए । वे पाँच इन्द्रियो को वश करके इनका असयम नही करते, अतः सौ को पाँच से गुणा करने पर पाँच सौ १००×५=५०० हुए । तथा वे चार सज्ञा का निरोध करके इनका असयम नही करते, अतः पाँच सौ को

चार से गुणा करने पर दो सहस्र ५००×४=२००० हुए। तथा साधु तीन करण व तीन योग से इनका असयम नही करते, अत. दो सहस्र को दो बार तीन-तीन गुणा करने पर अट्ठारह सहस्र हुए २,०००×३=६,०००×३=१८,००० । इन्ही को 'अट्ठारह सहस्र शीलांग रथ' कहते है।

प्र० : नमस्कार मत्र मे 'नमो लोए सव्व साहूण' द्वारा लोक के सभी साधुओ को नमस्कार किया गया है। वहाँ रजोहरणादि जैन वेश और महाव्रतादि जैन गुण वाले साधु को नमस्कार और जैन वेश और जैन गुण रहित साधु को नमस्कार नही करना, ऐसा भेद नही किया है। फिर यहाँ **ऐसा भेद क्यो** किया है ?

उ० : 'नमो लोए सव्व साहूण' मे रजोहरणादि जैनवेश और पाँच महाव्रतादि जैन गुण युक्त जैन साधुओ को तथा जैन वेश और जैनगुण रहित अजैन साधुओ को, सभी को नमस्कार किया गया है।' ऐसी श्रद्धा या प्ररूपणा सत्य नही है। 'नमो लोए सव्व साहूण' मे जो सभी साधु लिए है, वे रजोहरणादि जैन वेश और पाँच महाव्रत आदि जैन गुणधारी जितने भी साधु है, उन्ही सव साधुओ को लिया है। नमस्कार मत्र 'मत्र' है। मत्र मे भाव अधिक और शब्द अल्प होते है, अतः वहाँ शब्दो मे यह भेद नही किया हैं। परन्तु उन अल्प शब्दो मे भी भाव यही है कि 'जो जो भी जैन वेश व जैन गुणयुक्त साधु है या कारणवश जैन वेश न भी हो, पर जैन गुणयुक्त अवश्य हो, उन्ही सव साधुओ को नमस्कार हो।' अत. नमस्कार मत्र मे और इस पाठ मे कोई भेद नही है।

प्र० : ऐसे कौन से कारण हैं, जव जैन गुण युक्त साधु जैन वेश युक्त नही होता ?

उ० : १ मरुदेवी माता के समान जिन्हें भाव साधुत्व आने के पश्चात् मुक्तिगमन मे अधिक विलम्ब न होने के कारण वेश, पहनना आवश्यक न हो, २ भरतजी के समान जिन्हे भाव साधुत्व आने के पश्चात् वेश पहनने मे कुछ समय लग गया हो, ३ किसी चोर ने वस्त्र चुरा लिये हो, या ४ जहाँ जैन वेशधारी का विचरण निषद्ध हो, वह प्रदेश पार करना हो, आदि कारण ऐसे हैं, जब जैनगुण युक्त साधु जैनवेश युक्त नही होता।

प्र० : जैन साधु गुण किसे कहते है ?

उ० : सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वरो ने वास्तविक सुसाधु के जो गुण माने हो।

पाठ ३२ बत्तीसवाँ

विधि : पाठ ३३ मे आनेवाली **'खामेमि सव्वे जीवा'** आदि गाथाएँ, भूतकाल मे श्रावक सूत्र या श्रमण सूत्र के अन्त मे दिये जाने वाले **'इच्छामि खमासमणो' से पहले** बोली जाती थीं। अब भी कई लोग उसी स्थान पर उन गाथाओ को बोलते हैं। उन गाथाओ के पश्चात् 'इच्छामि खमासमणो' देने पर **चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक** समाप्त हो जाता है। पर भूतकालीन आचार्यादिको ने वन्दना और क्षमापना का अधिक सयोजन किया है।

निम्न वन्दना के लिए 'वन्दना की आज्ञा है।' कहकर वन्दना की आज्ञा ली जाती है। फिर दोनो घुटनो को मोडकर

भूमि पर लगाये जाते हैं। फिर नमस्कार मंत्र पढकर निम्न वदनाएँ वोली जाती है।

पाँच पदों की वन्दनाएँ

पहले पद में श्री अरिहन्त भगवान्। (ये एक काल मे) जघन्य (कम से कम) (महाविदेह क्षेत्र मे) वीस, उत्कृष्ट (अधिक-से-अधिक) (महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा) एक सौ साठ १६० तथा (पन्द्रह कर्म भूमि की अपेक्षा) एक सौ सित्तर देवाधिदेव तीर्थंकर होते हैं। अभी वर्त्तमान काल में वीस विहरमान (विचरते हुए) तीर्थंकर महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हैं। (अरिहन्त भगवान) एक हजार आठ १००८ लक्षण के धारक, चौंतीस अतिशय व पेंतीस अतिशययुक्त वाणी से विराजमान, चौंसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अट्ठारह दोष रहित,

१. अनन्त ज्ञान : केवलज्ञान-सम्पूर्ण ज्ञान
२. अनन्त दर्शन . केवलदर्शन-सम्पूर्णदर्शन
३ अनन्त चारित्र : क्षायिक सम्यक्त्व व यथाख्यात चारित्र
४. अनन्त बलवीर्य : अनन्त शक्ति (ये चार गुण आत्मिक और आभ्यन्तर हैं, जो चार घाति कर्म क्षय होने से उत्पन्न होते हैं।)
५. दिव्यध्वनि : जो सभी को अपनी अपनी भाषा मे परिणमती है और ४ कोस तक सुनाई देती है
६. भा-मण्डल : चारों ओर प्रकाश का घेराव
७. स्फटिक सिंहासन : जिस पर विराजने से भगवान अधर दिखाई देते हैं।

८ अशोक वृक्ष	: जो भगवान के ऊपर छाया रहता है।
९. कुसुमवृष्टि	: जो देव कृत, घुटने प्रमाण और अचित होती है
१०. देव दुन्दुभि	: जिसे देवता विहार के समय भगवान के आगे-आगे बजाते चलते हैं।
११ तीन छत्र	: जो भगवान के एक के ऊपर एक होते हैं
१२. दो चमर	: जिसे दो देव दोनों ओर वीजते हैं। (ये पौद्गलिक और बाह्य गुण हैं, जो तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से होते हैं।

ये आठ गुण सहित व पुरुषाकार-पराक्रम के धारक हैं। तथा सामान्य केवली जघन्य दो करोड़ और उत्कृष्ट नव करोड़ (होते हैं) जो **१. केवल ज्ञान २ केवल दर्शन के धारक, सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के ज्ञाता** (३. क्षायिक सम्यक्त्व-यथाख्यात चारित्र और ४. अनन्त बलवीर्य—ये चार आत्मिक गुण सहित) हैं।

सवैया नमो श्री अरिहन्त, करमों का किया अन्त,
हुआ सो केवलवंत, करुणा भण्डारी है।
अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार,
समझावे नर नार, पर उपकारी है।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार,
गुण है अनन्तसार, दोष परिहारी है।
कहत है तिलोकरिख, मन वच काया करी,
लुली लुली (झुक-झुक कर) वार वार, वन्दना हमारी है ॥१॥

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्। आपको दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो, तो हे अरिहन्त भगवन्! मेरा अपराध वार वार क्षमा करिये।

हाथ जोड, मान मोड, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

'तिक्खुत्तो आयाहिणं ... मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो। हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, परभव, भव-भव मे सदा काल शरण हो।

दूसरे पद मे सिद्ध श्री भगवान्

१ वे तीर्थसिद्ध	: जो तीर्थ के सद्भाव मे सिद्ध हुए
२. अतीर्थ सिद्ध	: जो तीर्थ स्थापना के पहले या तीर्थ विच्छेद के पीछे तीर्थ के अभाव में सिद्ध हुए
३ तीर्थङ्कर सिद्ध	: जो तीर्थ की स्थापना करके सिद्ध हुए
४. अतीर्थङ्कर सिद्ध	: जो सामान्य केवली होकर सिद्ध हुए
५. स्वयंबुद्ध सिद्ध	: जो गुरू या वृषभादि निमित्त के बिना स्वयं बोध पाकर सिद्ध हुए
६. प्रत्येकबुद्ध सिद्ध	: जो निमित्त से बोध पाकर सिद्ध हुए
७. बुद्धबोधित सिद्ध	: जो गुरु से बोध पाकर सिद्ध हुए
८. स्त्रीलिङ्ग सिद्ध	: जो स्त्री का शरीर पाकर सिद्ध हुए
९ पुरुषलिङ्ग सिद्ध	: जो पुरुष का शरीर पाकर सिद्ध हुए
१०. नपुंसक लिङ्ग सिद्ध	: जो नपुंसक शरीर पाकर सिद्ध हुए
११ स्वलिङ्ग सिद्ध	: जो जैन साधु के वेष मे सिद्ध हुए
१२. अन्यलिङ्ग सिद्ध	: जो अजैन साधु के वेश मे सिद्ध हुए
१३ गृहस्थलिङ्ग सिद्ध	: जो गृहस्थ वेष मे सिद्ध हुए
१४. एकसिद्ध	: जो अपने समय में अकेले सिद्ध हुए
१५. अनेक सिद्ध	: जो अपने समय मे स्वयं को मिलाकर दो या तीन या यावत् १०८ सिद्ध हुए

इन पन्द्रह भेद या अन्य चौदह भेद से अनन्त सिद्ध हुए हैं।

जहाँ जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकुर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, वहाँ (एक)**ज्योति में** (अन्य) **ज्योति** (ज्यो, एक क्षेत्र मे अनन्त सिद्ध) **विराजमान है। सकल कार्य सिद्ध करके** (अर्थात्) **आठ कर्म खपाकर** (क्षय कर) **मोक्ष पहुँचे हैं।**

१. **अनन्त ज्ञान**	: ज्ञानावरणीय क्षय से उत्पन्न हुआ
२ **अनन्त दर्शन**	: दर्शनावरणीय क्षय से उत्पन्न हुआ
३ **अनन्त सुख**	: वेदनीयकर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ
४. **क्षायिक सम्यक्त्व**	: मोहनीयकर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ
५. **अटल अवगाहना**	: आयुष्यकर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ
६. **अमूर्ति**	: नामकर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ
७. **अगुरुलघु**	: गोत्रकर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ
८. **अनन्तवीर्य**	: अन्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ

—ये आठ (आत्मिक) **गुण सहित हैं।**

सवैया सकल करम टाल, वश कर लियो काल, मुगति मे रह्या माल (आनद मे झूलना), आत्मा को तारी है। देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव (राजा) सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी हैं। अटल अचल रूप, आवे नही भव कूप, अनूप स्वरूप ऊप, ऐसे सिद्ध (पद) धारी है। कहत है तिलोक रिख, बताओ ए वास प्रभु, सदा ही उगते सूर, वदना हमारी है ॥२॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्! ··· क्षमा करिये।
हाथ जोड़ मान मोड़ ··· नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुतो आयाहिण ... ... मत्थएण वंदामि।
आप मागलिक हो ... ... सदा काल शरण हो।

तीसरे पद में श्री आचार्यजी महाराज। १-५ पाँच महाव्रत पालते हैं, ६-१० पाँच आचार (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार तपाचार, वीर्याचार) **पालते हैं, ११-१५ पाँच इन्द्रिय जीतते हैं १६-१९ चार कषाय टालते हैं, २०-२८ नव वाड सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पालते हैं, २९-३६ पाँच समिति-तीन गुप्ति विशुद्ध आराधते हैं, यो छत्तीस गुण सहित हैं।**

अथवा आठ सम्पदा	: सम्पत्ति, ऋद्धि,
१. आचार सम्पदा	: १ सयम मे ध्रुव योगी २ निरभिमान ३. विचरते हुए और ४. बडपन्न युक्त
२. श्रुत सम्पदा	: १ बहुश्रुत, २ परिचित्त श्रुत ३. विचित्र श्रुत और ४. विशुद्धघोष युक्त,
३. शरीर सम्पदा	: भरे पूरे, अलज्जनीय, स्थिर सहनन और पाँचो इन्द्रिय युक्त शरीर वाले
४. वचन सम्पदा	: आदेय वचन, मधुर वचन, निष्पक्ष वचन और असदिग्ध वचन युक्त
५ वाचना सम्पदा	: सम्यक् पढाते हैं, स्थिर कराते हैं, पूरा पढाते है और रहस्य समझाते हैं।
६. मति सम्पदा	: १. अवग्रह, २. ईहा, ३. अपाय, और ४. धारणा सम्पन्न
७. प्रयोगमति सम्पदा	: १. निजी योग्यता, २. परिषदा, ३. क्षेत्र और ४ विषय, को देखकर वाद करते हैं।

८. संग्रह परिज्ञा	: १ चातुर्मास योग्य क्षेत्र का, २ पीठादि के सग्रह का, ३ यथा समय कार्य का और ४. गुरुओ के मान का ध्यान रखते हैं।
और ९. शिष्य को योग्य बनाना	: १. आचार से, २. श्रुत से, ३. धर्म प्रभावना से और ४. दोष विशुद्धि से

इन नव बोलों के प्रत्येक के चार भेद, यों छतीस गुण सहित हैं।

सवैया गुण है छतोसपूर, धरत धरम ऊर, मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है। शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त, भण्या है सब ही सिद्धान्त, वाचणो सुप्यारी है। अधिक मधुर वेण, कोई नही लोपे केण (कथन), सकल जीवो का सैण, (स्वजन) किरति अपारी है। कहत है तिलोकरिख, हितकारी देते सीख, ऐसे आचारज ताकू वन्दना हमारी है ॥३॥

ऐसे आचार्यजी महाराज ! न्याय पक्ष वाले, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय अचित्त वस्तु को लेने वाले सचित्त के त्यागी, वैरागी महागुणी, गुणो के अनुरागी, सौभागी हैं।

ऐसे श्री आचार्य जी महाराज ·· ·· · क्षमा करिये।
हाथ जोड मान मोड ·· ······ नमस्कार करता हूँ।
तिक्खुत्तो आयाहिण · ··· · ·· मत्थएण वदामि।
आप मांगलिक हो ······· ·· ··· सदा काल शरण हो।

चौथे पद में श्री उपाध्यायजी महाराज

ग्यारह (बारह) अंग : हाथ आदि अगो के समान मुख्य सूत्र

बारह उपांग	: अगुली आदि उपागो के समान, अंग सूत्रो के किसी एक अश के विवेचक गौण सूत्र
चरण सत्तरी	: चरण (चारित्र) के ७० सित्तर बोल†
करण सत्तरी	: करण (क्रिया) के ७० सित्तर बोल‡

ये (११+१२+१+१=२५ या १२+१२+१=२५) पच्चीस गुण सहित हैं।

ग्यारह अंग के पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जानते हैं, १४. पूर्व (बारहवे दृष्टिवाद नामक अग*) के (भी) पाठक हैं (वर्तमान काल की अपेक्षा) निम्नोक्त बत्तीस सूत्रो के ज्ञाता हैं।

ग्यारह अंग

१. आचारांग	: जिसमे आचार का वर्णन है
२. सूत्रकृतांग	: जिसमे विचार (मत) का वर्णन है

---

†'पांच महाव्रत पालते हैं, चार कषाय टालते हैं, ज्ञान दर्शन चारित्र सम्पन्न हैं, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य पालते हैं, दस प्रकार यति (साधु) धर्म पालते हैं दश प्रकार की वैयावृत्य करते हैं, बारह भेद से तपश्चर्या करते हैं, सत्रह भेद से संयम पालते हैं।' ये चरण के (५+४+३+६+१०+१०+१२+१७=७०) सित्तर बोल हुए।

‡पांच इन्द्रियं जीतते हैं, पांच समिति, तीन गुप्ति विशुद्ध आराधते हैं, चारों प्रकार का पिण्ड (आहार, शय्या, वस्त्र, पात्र,) विशुद्ध (४२ दोष टाल कर) ग्रहण करते हैं; चार प्रकार का अभिग्रह (द्रव्य से क्षेत्र से, काल से, भाव से) करते हैं. बारह साधु प्रतिमाएं धारण करते हैं, बारह भावनाएं भाते हैं, २ पच्चीस भेद से प्रतिलेखन करते हैं। ये करण के (५+५+३+४+४+१२+१२+२५=७०) सित्तर बोल हुए।

*जिसमे जैन-अजैन सभी शुद्ध-अशुद्ध दृष्टियो का कथन था।

३ स्थानांग(ठाणांग)	: जिसमे नव तत्वो की स्थापना हैं
४. समवायांग	: जिसमे नव तत्वो का निर्णय है
५. भगवती	: जिसमे नव तत्वो की व्याख्या है
६. ज्ञाताधर्म कथा	: जिसमे दृष्टांत व धर्मकथाएँ है
७. उपासक दशांग	: जिसमे दश श्रावकों का वर्णन है
८. अंतकृत (अतगड)	: जिसमें मोक्ष गये हुए साधुओं का वर्णन है
९. अनुत्तरोप-पातिक (अणुत्तरोववाई)	: जिसमे अनुत्तर विमान मे गये हुए साधुओं का वर्णन है।
१०. प्रश्नव्याकरण	: जिसमे आश्रव सवर का वर्णन है
११. विपाक सूत्र	: जिसमे शुभ-अशुभ कर्मफल का वर्णन है।
बारह उपांग	
१. औपपातिक (उववाइ)	: जिसमे देवलोक में कौन कहाँ पैदा होता है ? इसका वर्णन है
२. राजप्रश्नीय	: जिसमे राजा प्रदेशी के आत्मवाद सबधी प्रश्न और केशीमुनि के उत्तर हैं।
३. जीवाभिगम	: जिसमे जीव सबधी विविध वर्णन है।
४. प्रज्ञापना	: जिसमे विविध विषयो का वर्णन है।
५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	: जिसमे जम्बूद्वीप सबधी वर्णन है।
६. चन्द्रप्रज्ञप्ति	: जिसमे चन्द्र सबधी वर्णन है
७. सूर्यप्रज्ञप्ति	: जिसमे सूर्य सबधी वर्णन है
८. निरयावलिका	: जिसमे नरक गये, उनका वर्णन हैं
९. कल्पावतंसिका	: जिसमे देवलोक गये, उनका वर्णन हैं
१०. पुष्पिका	: जिसमे सम्यक्त्व आदि की विराधना करके देवलोक मे देव बने, उनका वर्णन है।

१९. वैराग्यवान्	: राग द्वेष रहित होते हैं,
२०. मन समाहरणता	: मन वश मे रखते हैं,
२१. वचन समाहरणता	: वचन वश मे रखते है,
२२. काय समाहरणता	: काया वश मे रखते हैं,
२३. ज्ञानसम्पन्नता	: सम्यग्ज्ञान सहित होते है,
२४. दर्शन सम्पन्नता	: सम्यग्दर्शन सहित होते है,
२५ चारित्र सम्पन्नता	: सम्यक्चारित्र सहित होते है,
२६ वेयण-अहियासणया	: (भूख, प्यास, रोग, आतंक आदि) अशाता वेदनीय को अति सहन करते हैं
२७. मारणांतिय-अहियासणया	: मरणांतिक कष्ट को भी अति सहन करते हैं या मारने वाले के प्रति भी द्वेष नही करते है।

पाँच आचार पालते हैं, छह काय की रक्षा करते हैं, सात कुव्यसन छोड़ते हैं, आठ मद छोड़ते हैं, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य पालते हैं, दश प्रकार यति (साधु) धर्म पालते हैं, बारह भेद से तपश्चर्या करते हैं, सत्रह भेद से सयम पालते है, अट्ठारह पापों को त्यागते है, बावीस परीषह जीतते हैं, तीस महामोहनीय कर्म निवारते हैं, तेंतीस आशातना टालते हैं, बयालीस दोष टाल कर आहार-पानी लेते है, सेतालीस दोष टाल कर भोगते हैं, बावन अनाचार टालते हैं, बुलाने से आते नहीं है, निमन्त्रण से जीमते नहीं हैं, सचित्त के त्यागी हैं, अचित्त के भोगी हैं, केशो का हाथ से लोच करना, नंगे पैर चलना आदि कायक्लेश करते हैं और मोह ममता रहित हैं।

सवैया—आदरी सयम भार, करणी करे अपार, समिति-गुपति धार, विकथा निवारी है। जयणा करे छह-काय, सावद्य

न बोले वाय, बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है। ज्ञान भरणे आठो याम, लेवे भगवन्त नाम, धरम को करे काम, ममता कूं मारी है। कहत है तिलोकरिख, करमो का टाले विख, ऐसे मुनिराज ताकूं वन्दना हमारी है ॥५॥

ऐसे साधु जी महाराज ······ क्षमा करिये।
हाथ जोड मान मोड ···· नमस्कार करता हूँ।
तिक्खुत्तो आयाहिरण ··· मत्थएण वदामि।
आप मागलिक हो ······· सदा काल शरण हो।

विधि : पाँच पदो की वन्दना के पश्चात् कोई-कोई धर्माचार्य की और कोई-कोई पाँच परमेष्ठि की समुच्चय तथा धर्माचार्य की वन्दना निम्न पाठो से करते है।

पाँचो पद मे पाँच परमेष्ठि भगवान्। १. अरिहन्त देव १२ बारह गुरण सहित, २. सिद्धदेव ८ आठ गुरण सहित, ३. आचार्यजी ३६ छत्तीस गुरण सहित ४ उपाध्यायजी २५ पच्चीस गुरण सहित और ५. साधुजी २७ गुरण सहित—यो सब १०८ गुरण सहित।

सवैया—नमूं १ अरिहन्त, नमूं २ सिद्ध, ३. नमूं ३ आचारज।
नमूं ४ उवज्झाय, नमूं ५. साधु अरणगार ने।
नमूं सब केवली ने, थविर ने, तपसी ने।
नमूं कुल, गरण, सघ, साधु गुरणधार ने।
नमूं सब गुरणवन्त, ज्ञानवन्त ध्यानवन्त।
शीलवन्त तपवन्त, क्षमा गुरण सार ने।
ऋषि लालचद कहे, नमूं पाँचो पद ही को।
१नमूं, २. नमूं, ३ नमूं ४. नमूं, ५. नमूं श्री नवकार ने ॥
ऐसे श्री पच परमेष्ठि भगवान् ·· सदा काल शरण हो।

११ पुष्पचूलिका　　: जिसमे देवियाँ बनी, उनका वर्णन है
१२. वृष्णिदशा　　: जिसमे यदुवशी साधुओ का वर्णन है

चार मूलसूत्र

१. उत्तराध्ययन　　: जिसमे भगवान की अन्तिम वाणी है
२. दशवैकालिक　　: जिसमे संक्षिप्त साध्वाचार है
३. नन्दीसूत्र　　: जिसमे पाँच ज्ञान का वर्णन है
४. अनुयोगद्वार　　: जिसमे शास्त्र प्रवेश की पद्धति है

चार छेद सूत्र

१. दशाश्रुतस्कध　　: जिसमें असमाधि आदि का वर्णन है
२. बृहत्कल्प　　: जिसमे साधुओ के कल्प का वर्णन है
३. व्यवहार　　: जिसमे साधुओ के व्यवहार का वर्णन है
४. निशीथ　　: जिसमे अतिचारो का प्रायश्चित्त है

और बत्तीसवाँ 'आवश्यक सूत्र' तथा अन्य अनेक ग्रन्थ के ज्ञाता

सात, नय　　: मुख्य रूप से एक धर्म का ग्राही विचार
चार, निक्षेप　　: समझने के लिए विषयो का विभाग
निश्चय　　: भीतरी वास्तविक दृष्टि
व्यवहार　　: बाहरी औचित्य की दृष्टि
चार प्रमाण　　: प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम

और स्वमत परमत के ज्ञाता मनुष्य या देवता कोई भी विवाद मे जिनको छलने मे समर्थ नहीं, जिन नहीं, पर जिन समान, केवली नहीं, पर केवली समान हैं।

सवैया पढत ग्यारह अग, करमो सू करे जग (युद्ध), पाखडी (वादी) को मान भग, करण हुशियारी है।

चवदे पूरब धार, जानत आगमसार, भवियन (जन) के सुखकार, भ्रमता निवारी है। पढावे भविक जन, स्थिर कर देत मन, तप कर तावे (तपावे) तन, ममता को मारी है। कहत है तिलोकरिख, ज्ञान भानु परतिख, (प्रत्यक्ष) ऐसे उपाध्याय ताकू वन्दना हमारी है ॥४॥

ऐसे उपाध्यायजी महाराज, मिथ्यात्वरूप अन्धकार के नाशक, समकित रूप उद्योत के कर्त्ता, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करने वाले, **सारए** (विस्मृत पाठ का स्मरण कराने वाले) **वारए** (पाठ की अशुद्धि का निवारण करने वाले) **धारए** (नये पाठ को धराने वाले) इत्यादि अनेक गुण सहित हैं।

ऐसे उपाध्यायजी महाराज ! ··········क्षमा करिये।
हाथ जोड मान मोड ········ नमस्कार करता हूँ।
तिक्खुत्तो आयाहिण ···· ·· ·· मत्थएण वंदामि।
आप मांगलिक हो · ·· ··· ·· सदा काल शरण हो।

पाँचवें पद में श्री सर्व साधूजी महाराज।

अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक मे जघन्य दो सहस्र (हजार) करोड़, उत्कृष्ट नव सहस्र (हजार) करोड़ जयवन्त विचरते हैं।

१-५ पाँच महाव्रत पालते हैं, ६-१० पाँच इन्द्रिय जीतते हैं ११-१४ (उदय मे आई हुई) **चार कषाय टालते हैं**

१५. भाव के सच्चे : संयम को अन्तरात्मा से पालते हैं,
१६. करण के सच्चे : तीनो करणो से पालते हैं,
१७. योग के सच्चे : तीनो योगो से पालते हैं,
१८ क्षमावान् : कषाय उदय मे आने नही देते हैं,

१६. वैराग्यवान्	: राग द्वेष रहित होते हैं,
२०. मन समाहरणता	: मन वश मे रखते हैं,
२१. वचन समाहरणता	: वचन वश मे रखते है,
२२. काय समाहरणता	: काया वश मे रखते है,
२३. ज्ञानसम्पन्नता	: सम्यग्ज्ञान सहित होते है,
२४. दर्शन सम्पन्नता	: सम्यग्दर्शन सहित होते है,
२५ चारित्र सम्पन्नता	: सम्यक्चारित्र सहित होते है,
२६ वेयण-अहियासणया	: (भूख, प्यास, रोग, आर्तंक आदि) असाता वेदनीय को अति सहन करते हैं
२७. मारणांतिय-अहियासणया	: मरणांतिक कष्ट को भी अति सहन करते हैं या मारने वाले के प्रति भी द्वेष नहीं करते है।

पाँच आचार पालते हैं, छह काय की रक्षा करते हैं, सात कुव्यसन छोड़ते हैं, आठ मद छोड़ते हैं, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य पालते हैं, दश प्रकार यति (साधु) धर्म पालते हैं, बारह भेद से तपश्चर्या करते हैं, सत्रह भेद से सयम पालते हैं, अट्ठारह पापों को त्यागते हैं, बावीस परीषह जीतते हैं, तीस महामोहनीय कर्म निवारतें हैं, तेंतीस आशातना टालते हैं, बयालीस दोष टाल कर आहार-पानी लेते हैं, सेंतालीस दोष टाल कर भोगते हैं, बावन अनाचार टालते हैं, बुलाने से आते नहीं हैं, निमन्त्रण से जीमते नहीं है, सचित्त के त्यागी हैं, अचित्त के भोगी है, केशो का हाथ से लोच करना, नगे पैर चलना आदि कायक्लेश करते हैं और मोह ममता रहित हैं।

सवैया—आदरी सयम भार, करणी करे अपार, समिति-गुपति धार, विकथा निवारी है। जयणा करे छह-काय, सावद्य

न बोले वाय, बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है। ज्ञान भणे आठो याम, लेवे भगवन्त नाम, धरम को करे काम, ममता कूँ मारी है। कहत है तिलोकरिख, करमो का टाले विख, ऐसे मुनिराज ताकूँ वन्दना हमारी है ॥५॥

ऐसे साधु जी महाराज ····· क्षमा करिये।
हाथ जोड मान मोड ····· नमस्कार करता हूँ।
तिक्खुत्तो आयाहिण ····· मत्थएण वदामि।
आप मागलिक हो ····· सदा काल शरण हो।

विधि : पाँच पदो की वन्दना के पश्चात् कोई-कोई धर्माचार्य की और कोई-कोई पाँच परमेष्ठि की समुच्चय तथा धर्माचार्य की वन्दना निम्न पाठो से करते है।

पाँचों पद मे पाँच परमेष्ठि भगवान्। १. अरिहन्त देव १२ बारह गुण सहित, २. सिद्धदेव ८ आठ गुण सहित, ३. आचार्यजी ३६ छत्तीस गुण सहित ४ उपाध्यायजी २५ पच्चीस गुण सहित और ५. साधुजी २७ गुण सहित—यों सब १०८ गुण सहित।

सवैया—नमूँ १ अरिहन्त, नमूँ २ सिद्ध, ३. नमूँ ३ आचारज।
नमूँ ४ उवज्झाय, नमूँ ५. साधु अणगार ने।
नमूँ सब केवली ने, थविर ने, तपसी ने।
नमूँ कुल, गण, सघ, साधु गुणधार ने।
नमूँ सब गुणवन्त, ज्ञानवन्त ध्यानवन्त।
शीलवन्त तपवन्त, क्षमा गुण सार ने।
ऋषि लालचद कहे, नमूँ पाँचो पद ही को।
१नमूँ, २. नमूँ, ३ नमूँ ४. नमूँ, ५. नमूँश्री नवकार ने ॥
ऐसे श्री पच परमेष्ठि भगवान् ··· सदा काल शरण हो।

अरिहन्त आचार्य उपाध्याय साधु या श्रावक श्राविका पद में श्री धर्माचार्यजी (अपने धर्माचार्य का नाम ग्रहण करे। धर्म उपदेश के दाता, सम्यक्त्व रूप रत्न के दाता, ज्ञान रूप नेत्र के दाता, संसार सागर से तिराने वाले, मोक्ष मार्ग में लगाने वाले, हृदय के हार के समान, मस्तक के मुकुट के समान, कान के कुण्डल के समान, आँख की कोकी के समान, रत्न की पेटी के समान, कल्पवृक्ष के समान, चिन्तामणि के समान, आदि अनेक उपमा सहित अनन्त अनन्त उपकारी महापुरुष।

गुरु मित्र गुरु मात, गुरु सगा गुरु तात,
गुरु भूप गुरु भ्रात, गुरु हितकारी हैं।
गुरु रवि, गुरु चंद्र, गुरु देव गुरु इन्द्र,
गुरु दिया चिदानद, गुरु पद भारी है ॥
गुरु दिया ज्ञान ध्यान, गुरु दिया दान मान,
गुरु देवे मोक्ष स्थान, सदा उपकारी है।
कहत है तिलोक रिख, भली भली दिवी सीख,
पल पल गुरुजी को, वन्दना हमारी है।

ऐसे श्री धर्माचार्यजी .... सदाकाल शरण हो।

विधि : श्रावक सूत्र पढने वाले निम्न दोहे सीधे पल्यंकादिक आसन से वैठ कर पढते हैं तथा श्रमण सूत्र पढ़ने वाले खड़े होकर पढते है।

॥ दोहे ॥

अनन्त चौवीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्त करोड़।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दूँ युग कर जोड़ ॥१॥

दो करोड केवल धरा, विहर-मान जिन वीस।
सहस्त्र युगल कोटि तथा साधु नमूं निश-दीस ॥२॥
धन धन साधु साध्वी, धन धन है जिन धर्म।
जो सुमरण पालन करे, क्षय हो आठो कर्म ॥३॥
अरिहन्त सिद्ध समरू सदा, आचारज उवज्भाय।
साधु सकल के चरण को, वन्दूं शीश नमाय ॥४॥

वंदना प्रश्नोत्तरी

प्र० अरिहन्त उपकार की दृष्टि से ही बडे हैं, आत्मिक गुणो की दृष्टि से तो सिद्ध बडे है, फिर अरिहन्त के गुण अधिक क्यो ? **और सिद्ध के गुण कम क्यों ?**

उ० : अरिहन्त के जो बारह गुण है, उसमे, पहले के चार गुण ही आत्मिक गुण हैं, शेष बारह गुण तो उपकार सबधी हैं। और सिद्ध के सभी आठो ही गुण, आत्मिक गुण हैं, अतः अरिहन्त के आत्मिक गुणो से, सिद्धो के आत्मिक गुण अधिक ही हैं, कम नही।

प्र० : **आचार्य** श्री के जो पहले छत्तीस गुण बताए हैं, वे सामान्य साधुओ मे भो मिलते हैं, फिर उनमे **विशेषता क्या है ?**

उ० : आचार्य श्री मे वे गुण, सभी सामान्य साधुओ की अपेक्षा प्राय· अधिक विशुद्ध रूप मे मिलते हैं, अत वे विशेषतायुक्त होते हैं। दूसरी प्रकार के जो छत्तीस गुण बताए हैं, उनसे तो उनमे स्पष्टतया विशेषता दिखायी देती ही है।

प्र० उपाध्याय श्री, जब सामान्य साधुओ से विशिष्ट होते है, तब उनमे साधुओ से गुण कम क्यो ?

उ० · चरण सत्तरी, करण सत्तरी मे, बहुत गुणो को संग्रहित कर दिया है। उन बोलो को पृथक् रूप मे गिनने पर उपाध्याय श्री मे **साधुओ से गुण कम नहीं रहते।**

प्र० : **सिद्ध धर्माचार्य क्यों नहीं** होते हैं ?

उ० : क्योकि, वे, शरीर रहित, मोक्ष मे पधारे हुए होते हैं, अत: वे किसी को धर्म उपदेश नही देते; इस कारण वे किसी के धर्म आचार्य नही होते।

प्र० : श्रावक श्राविका धर्माचार्य कैसे हो सकते हैं ?

उ० : जो भी धर्म का उपदेश देकर सम्यक्त्व प्रदान करे, उन्हे यहाँ **धर्माचार्य** कहा है। धर्म उपदेश, श्रावक श्राविका भी अन्य को देते हैं, इसलिए वे भी धर्माचार्य हो सकते हैं।

प्र० : श्रावक धर्माचार्य का **शास्त्रीय उदाहरण** दीजिए।

उ० : औपपातिक सूत्र मे **अंबड** (सन्यासी) श्रावक के शिष्यों ने अपने धर्मोपदेशदाता अबड को 'धर्माचार्य' कहा है।

❖

पाठ ३३ तैंतीसवाँ

विधि : पिछले दोहे पढने के पश्चात् आगे भी **श्रावक सूत्र पढ़ने वाले** बैठे-बैठे ही 'आयरिय उवज्झाए' आदि तीन गाथाएँ, श्रावक-श्राविकाओ को खमाने का पाठ, चौरासी लाख जीव-योनि खमाने का पाठ, 'खामेमि सव्वे जीवा' आदि दो गाथाएँ और अट्ठारह पापस्थानक कहते हैं, तथा श्रमण सूत्र पढने वाले खड़े-खड़े ही निम्न पाठो को क्रमबद्ध पढते हैं।

'खामेमि सव्वे जीवा' खमाने का पाठ

[आयरिय उवज्झाए	: आचार्य उपाध्याय (आदि बडों पर)
सीसे	: शिष्य (आदि छोटो पर)
साहम्मिए	: (तथा) स्वधर्मी (समान पुरुषो पर)
कुल	: कुल (जो एक आचार्य परम्परा के)
गणे अ।	: या गण (अनेक आचार्य परम्परा के हैं उन) पर
जे मे केई	: जो मैंने कोई भी
कसाया	: क्रोध आदि कषाये की हो (तो)
सव्वे	: (उसके लिए मैं उन) सभी को
तिविहेण	: (मन वचन काया इन) तीनो योगो से
खामेमि ॥१॥	: खमाता हूँ (क्षमायाचना करता हूँ)
सव्वस्स	: (इसी प्रकार) सम्पूर्ण
समण-	: श्रमण (साधु-साध्वी श्राविक-श्राविका)
संघस्स; भगवओ	: संघ भगवान् को
अंजलिं करिअ सीसे।	: अजलि करके सिर पर

सव्वे खमावइत्ता,	: सभी को खमाकर,
खमामि	: खमता हूँ (क्षमा प्रदान करता हूँ)
सव्वस्स	: सभो (आचार्य से संघ पर्यन्त) को
अहयपि ॥२॥	: मै भी ॥२॥
सव्वस्स जीवरासिस्स,	: (इसी प्रकार) सम्पूर्ण जीवराशि को
भावओ	: भाव सहित
धम्म-निहिय	: (क्षमा) धर्म मे रखकर
नियचित्तो ॥	: अपने चित्त को
सव्वे खमावइत्ता,	: सभी को खमाकर
खमासि	: खमता हूँ (क्षमा प्रदान करता हूँ)
सव्वस्स अहय पि ॥३॥]	: सभी (जीव राशि) को मै भी ॥३॥
खामेमि सव्वे जीवा	: खमाता हूँ, सभी जीवो को (इसलिए)
सव्वे जीवा खमंतु मे	: सभी जीव खमे मुझे (मुझे क्षमा दें)
मित्ती मे	: (क्योकि) मैत्री है मेरी
सव्व भूएसु	: सभी जीवों से (परन्तु।
वेर मज्झं ण केणई॥४॥	: वैर मेरा नही है किसी से भी ॥४॥
एवमहं, आलोइय-	: इस प्रकार मै अपनी आलोचना,
निंदिय- गरहिय-	: निन्दा, गर्हा और
दुगुंछिय सम्मं ।	: जुगुप्सा (घृणा) सम्यक् प्रकार से करके
तिविहेण	: (मन वचन काया इन) तीनो योगो से
पडिक्कंतो	: पापो से प्रतिक्रमण करके
वदामि	: वन्दना करता हूँ,
जिणे चउव्वीस ॥५॥	: चौवीसो जिनेश्वरो को ॥५॥

श्रावक-श्राविकाओं को खमाने का पाठ

अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र मे मनुष्य तिर्यञ्च श्रावक-श्राविका, बाहर तिर्यञ्च श्रावक-श्राविका दान देते हैं, शील पालते हैं,

तपस्या करते हैं, शुद्ध भावना भाते हैं, संवर करते हैं, पौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते है, तीन मनोरथ चिन्तवते हैं, चौदह नियम चितारते हैं, जीवादिक नव पदार्थ जानते हैं, श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त, एक व्रतधारी, यावत् बारह व्रतधारी, भगवान् की आज्ञा में विचरते हैं, ऐसे बड़ो से हाथ जोड़, पैरों में पड करके क्षमा मांगता हूं, आप क्षमा करें, आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सबसे समुच्चय क्षमा मांगता हूँ।

चौरासी लाख जीवयोनि खमाने का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेजस्काय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख द्वीन्द्रिय, दो लाख त्रीन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, चार लाख देवता, चौदह लाख मनुष्य—ऐसे चार गति में (७+७+७+७+१०+१४+२+२+२+४+४+४+१४=८४) चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्म बादर, अपर्याप्त-पर्याप्त जीवो मे से किसी जीव का हिलते-चलते, उठते-बैठते, सोते-जागते हनन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, तो अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस [१८,२४,१२०] प्रकार से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

कुल कोटि खमाने का पाठ

पृथ्वीकाय के बारह लाख, अप्काय के सात लाख, तेजस्काय के तीन लाख, वायुकाय के सात लाख, वनस्पतिकाय के अट्ठाईस लाख, द्वीन्द्रिय के सात लाख, त्रीन्द्रिय के आठ लाख, चतुरिन्द्रिय के नव लाख, जलचर के साढ़े बारह लाख, स्थलचर

के दश लाख, खेचर के बारह लाख, उरः परिसर्प के दश लाख, भुज परिसर्प के नव लाख, नारक के पच्चीस लाख, देवता के छब्बीस लाख, मनुष्य के बारह लाख, ऐसे (१२+७+३+७+२८;+७+८+६;+१२॥+१०+१२+१०+६; २५+२६+१२=१,६७,५०,०००) एक करोड़ साढे सत्यानवें लाख, कुल कोटि जीवों की विराधना की हो, तो दिन सबंधी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

॥चौथा आवश्यक समाप्त॥

'प्रश्नोत्तरी'

प्र० : यहाँ वन्दना किसे कहा है ?

उ० : अरिहन्त आदि गुणवान् जीवों के गुणों का स्मरण और स्तुति करते हुए नमस्कार करने को।

प्र० : वन्दना और क्षमापना मे क्या अन्तर है ?

उ० : यहाँ विशेष कोई अन्तर नही है। क्योकि दोनों में क्षमायाचना का भाव ही मुख्य है।

प्र० : तब दोनों को पृथक् क्यो किया गया ?

उ० : इसलिए कि, वन्दना में प्राय वन्दना के शब्द अधिक हैं और क्षमापना के शब्द अल्प हैं तथा क्षमापना मे प्राय क्षमापना के ही शब्द विशेष हैं।

प्र० : जब कि वन्दना में 'क्षमापना का ही भाव मुख्य है', तब उसमे 'क्षमापना के शब्द कम क्यो और वन्दना के शब्द अधिक क्यो ?'

उ० : 'अपने से बडे पूज्य पुरुषो से क्षमायाचना, उनके गुणगान करते हुए और उनका विनय करते हुए करनी चाहिए।' यह बताने के लिए।

प्र० : **'क्षमापना' प्रतिक्रमण आवश्यक में क्यों** रखी गई ?

उ० : हमने १. जो दूसरे जीवों का अविनय अपराध करके हिंसा का पाप किया तथा २ दूसरो के द्वारा हमारे प्रति अपराध किये जाने पर हममे जो क्रोध कषाय उत्पन्न हुई, वे दोनो पाप क्षमापना से दूर होते है, इसलिए।

प्र० : ये दोनो पाप तो अट्ठारह पाप के प्रतिक्रमण से ही दूर हो जाते हैं, तब **पृथक् क्षमायाचना क्यो** की जाती है ?

उ० '१. हिसा से हटना और कषाय का उपशम करना' ये दोनो जैन धर्म के आचार मे मुख्य हैं। इसलिए इन दोनो की प्राप्ति के लिए विशेष प्रतिक्रमण करना इष्ट है। क्षमापना मे, जीवो के हृदय से हिंसा से हटाने की और कषाय उपशम करने की अद्भुत शक्ति है। अतः उक्त दोनो की प्राप्ति के लिए पृथक् क्षमायाचना की जाती है।

प्र० : हम क्षमा याचना करे, पर **सामने वाले क्रोधी** जीव क्षमा न दे, तो ?

उ० : हार्दिक क्षमायाचना और बार-बार क्षमायाचना से प्रायः सामने वाले का क्रोध उपशान्त हो जाता है और वह क्षमा प्रदान कर देता है। कदाचित् वह क्षमा प्रदान न भी करे, तो क्षमायाचना करने वाला तो क्षमायाचना करने से पापमुक्त बनता ही है।

प्र० : नित्य क्षमायाचना करे, पर वैर विरोध करना, न छोड़ें, तो ?

'उ० : स्थूल (वडे) वैर विरोध तो छोडने ही चाहिएँ। अन्यथा क्षमायाचना का 'चाहिए उतना लाभ' नही हो सकता। यदि कदाचित् कर्म उदयवश न छूट सके, तो हार्दिक क्षमायाचना से लाभ ही है, क्योकि ऐसी क्षमायाचना करने वाले को वैर विरोध का पाप वँधेगा, पर चिकना पाप नही वँधेगा।

प्र० : जीव-योनि किसे कहते हैं ?

उ० : जीवो के उत्पत्ति स्थान को।

प्र० : पृथ्वी-कायादि के मूल भेद कितने हैं ?

उ० : चार स्थावर के ३५०-३५०, प्रत्येक वस्पति के ५००, साधारण वनस्पति और मनुष्य के ७००-७००, तीन विकलेन्द्रिय के १००-१०० तथा शेष नारक, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और देवता के २००-२००, मूल भेद है।

प्र० : मूल भेद ध्यान मे रखने का सरल उपाय क्या है ?

उ० : 'एक लाख के पीछे ५० मूल भेद होते हैं।' 'यह स्मरण रखना।

प्र० : पृथ्वीकाय आदि के ३५० आदि मूल भेद ७,००,००० आदि उत्तरभेद कैसे बनते हैं ?

उ० : इन मूल ३५० आदि भेदों को क्रमशः ५×२×५×२०००, से गुना करने पर, या इनके परस्पर गुणन से होने वाली ८×५ संख्या से गुणन करने पर वनते है।

प्र० : इस प्रकार गुणन क्यों किया जाता है ?

उ० : क्योकि, प्रत्येक मूल भेद के पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच सस्थान के भेद से नाना उत्तर भेद होते है।

प्र० : १८,२४, १२० प्रकार कैसे बनते है ?

उ० : ससारी जीवो के ५६३ भेदो को क्रमश. १०×२×३×३×३×६ से गुना करने पर या इनके परस्पर गुणन से होने वाली ३२४० सख्या से गुणन करने पर बनते हैं। (५०६३×३२४०=१८,२४,१२००)

प्र० **इस प्रकार गुणन क्यों** किया जाता है ?

उ० : क्योकि, जीवो की विराधना अभिहया इत्यादि दस प्रकारो से होती है, राग-द्वेष इन दो कारणो से होती है। तीन करण तीन योग से होती है और भूत, भविष्यत् वर्त्तमान-इन तीन काल मे होती है तथा इनकी विराधना अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और आत्मा इन छह की साक्षी से 'मिच्छा मि दुक्कड दिया जाता है।

प्र० : कुलकोटि किसे कहते है ?

उ० : नाना जीव-योनियो मे होने वाले जीवो के कुल (वश) के प्रकारो को।

❖

पाठ ३४ चौंतीसवा

पाँचवाँ आवश्यक

विधि : चौथा आवश्यक पूरा होने पर 'पहला सामायिक दूसरा चतुर्विंशतिस्तव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण—ये चार आवश्यक पूरे हुए, पाँचवे आवश्यक की आज्ञा है।' यह कहकर पाँचवे आवश्यक की आज्ञा ले। दो प्रतिक्रमण करने वाले चतुर्मासी और संवत्सरी के दिन पहले प्रतिक्रमण मे चार आवश्यक पूरे हो जाने पर पाँचवाँ और छठा आवश्यक नही करते, सीधे ही दूसरा प्रतिक्रमण आरम्भ करते हैं।

फिर निम्न कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा का पाठ पढ़ें। फिर **नमस्कार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठामि काउसग्गं और तस्स उत्तरी** पढकर **लोगस्स का कायोत्सर्ग करें।** कायोत्सर्ग मे कुछ की मान्यता अनुसार दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण मे चार, पाक्षिक प्रतिक्रमण में आठ, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे बारह तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण मे बीस लोगस्स का ध्यान करना चाहिए। और कुछ की मान्यतानुसार दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण मे चार, पाक्षिक प्रतिक्रमण मे बारह, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे बीस और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण मे चालीस लोगस्स और दो नमस्कार मंत्र का ध्यान करना चाहिए।[†]

[†] इस विषय मे वर्धमान श्रमण संघ के नियम के पालने वालों को ४, ८, १२, २० लोगस्स का ध्यान करना चाहिए।

फिर **नमस्कार मन्त्र** गिन कर कायोत्सर्ग पाले और पुनः एक प्रकट **नमस्कार मंत्र** और **लोगस्स** पढे। पीछे पहले बताई हुई विधि के अनुसार दो 'इच्छामि' खमासमणो पढे।

॥ पांचवा आवश्यक समाप्त ॥

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा का पाठ

इच्छामि णं भंते तुब्भेहिं	: चाहता हूँ, हे भगवन्! आपके द्वारा
अब्भणुण्णाए समाणे	: आज्ञा मिलने पर
देवसिय-	: दिन सबधी
पायच्छित्त-	: प्रायश्चित्त (स्थान, अतिचारो) की
विसोहणत्थं-	: विशुद्धि करने के लिए
करेमि, काउसग्गं।	: करता हूँ, कायोत्सर्ग।

'कायोत्सर्ग' प्रश्नोत्तरी

प्र० : कायोत्सर्ग आवश्यक में सदा समान संख्या में लोगस्स का ध्यान क्यो नही किया जाता ?

उ० इसलिए कि 'देवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण में पिछले लगभग १५ मुहूर्त (१२ घण्टे) जितने अल्प समय मे लगे अतिचारो की ही शुद्धि करनी होती है, अत उस शुद्धि के लिए मात्र चार लोगस्स का ही छोटा ध्यान पर्याप्त होता है। पर पाक्षिक प्रतिक्रमण मे पन्द्रह दिनो मे लगे अनिचारो की शुद्धि करनी होती है, अत चार लोगस्स से तीगुने या दूने (१२ या ८) लोगस्स-का बडा ध्यान आवश्यक होता है तथा चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे चार महीने मे लगे अतिचारो की शुद्धि करनी

होती है, अत चार लोगस्स से पाँच गुने या तिगुने (२० या १२) लोगस्स का विशेष बडा ध्यान आवश्यक होता है तथा सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे वर्ष भर मे लगे अतिचारो की शुद्धि करनी होती है, अत चार लोगस्स से दश गुने (दो नमस्कार मत्र रूप शिखर सहित) या पाँच गुने (२० या ४०) लोगस्स का बहुत बड़ा ध्यान आवश्यक होता है।

पाठ ३५ पैंतीसवाँ

छठा आवश्यक

पाँचवाँ आवश्यक समाप्त हो जाने पर वन्दन करके 'पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पाँचवाँ कायोत्सर्ग—ये पाँच आवश्यक पूरे हुए। छठे आवश्यक की आज्ञा है।' यह कह कर छठे आवश्यक की आज्ञा ले।

फिर मन में सूर्योदय उपरांत नमस्कारसहित (नवकारसी) आदि जो बन सके, उसे करने की धारणा करे। जहाँ तक हो सके, सम्पूर्ण रात्रि के लिए चतुर्विधाहार (चउविहाहार) की धारणा करें। यदि न बने, तो अल्प-से-अल्प आधी रात तक त्रिविधाहार (तिविहाहार) और शेष रात्रि के लिए चतुर्विधाहार की धारणा करे। प्रातःकाल के 'रात्रिक प्रतिक्रमण' मे, सध्या के 'दैवसिक प्रतिक्रमण' मे जो प्रत्याख्यान धारण किये थे, उनमें भावना और अवसर के अनुसार वृद्धि करे तथा १४ नियम या अहिंसादि सक्षेप के नियमो को धारण करे।

फिर यदि मुनिराज बिराजते हो, तो—'मत्थएण वंदामि।' 'पच्चक्खाण कराइये।' यह कहकर, प्रत्याख्यान मांगे। यदि वे न हो और बड़े श्रावकजी हो, तो 'बडे श्रावकजी! प्रत्याख्यान कराइये।' यह कहकर प्रत्याख्यान मांगें। यदि दोनो ही न हो, तो फिर 'अरिहत सिद्ध की साक्षी से तथा गुरुदेव की आज्ञा से' यह कहकर 'समुच्चय प्रत्याख्यान' के पाठ से स्वयं प्रत्याख्यान करें।

मुनिराज आदि प्रत्याख्यान करावें, तो जब वे प्रत्याख्यान के अन्त में 'वोसिरे' कहे, तब स्वय 'वोसिरामि' शब्द का उच्चारण करें। फिर 'तहत्' (तथेति=वैसा ही स्वीकार है।) यह कहकर पहली सामायिक आदि अन्तिम पाठ पढे। फिर नीचे दाहिना घुटना भूमि पर और बाया घुटना खड़ा रखकर विधि सहित दो 'नमोत्थुणं' दे।

॥ छठा आवश्यक समाप्त ॥

फिर मुनिराज बिराजते हो, तो बडे श्रावक वन्दना करलें, उसके पश्चात् क्रम से विधि सहित उन्हे वन्दना करे, सुखसाता पूछे और क्षमायाचना करें। यदि न हो, तो पूर्व या उत्तर दिशा मे मुह करके महावीर स्वामी या सीमधर स्वामी को तथा अपने धर्माचार्य को वन्दना करे। फिर सभी स्वधर्मी बन्धुओ से हाथ जोड शीश झुका क्षमापना करे। बाद मे चौबीसी आदि स्तवन का उच्चारण करे।

'समुच्चय प्रत्याख्यान' का पाठ

उग्गए सूरे : (रात्रि को तिविहाहार, चउविहाहार आदि जो किया, उस

	पश्चात् अगला पिछला काल मिला कर) सूर्य उदय से लेकर
१. गंठि-सहियं (ग्रन्थिसहित)	: जब तक मैं अपने कपड़े डोरी आदि की गाठ बधी रक्खूं, या
२. मुट्ठि-सहियं (मुष्टिसहित)	मुट्ठी को बधी रक्खू या
३. नमुक्कार-सहियं (नमस्कार सहित)	: एक मुहूर्त और उसके उपरांत एक नमस्कार मंत्र न गिनू या
४. पोरिसियं (पौरुषी)	: एक प्रहर दिन न आवे या
५. साड्ढ-पोरिसियं	: डेढ प्रहर दिन न आवे, तब तक
तिविह पि	: (पानी को छोड शेष) तीनो प्रकार के
चउव्विह पि आहारं	: (या) चारो प्रकार के आहार-
१. असणं २. पाणं	असन (अन्न विगय) पानी (जल)
३ खाइमं ४. साइमं	: खाद्य (फल,मेवा,औषधि) और स्वाद्य

अपनी अपनी धारणा प्रमाणे (ये या अन्य) पच्चक्खाण

(पच्चक्खामि)	: (का प्रत्याख्यान करता हू)
अन्नत्थणाभोगेणं	: इन आकारो (आगारो) को छोडकर
(अन्यत्र अनाभोग)	: प्रत्याख्यान की स्मृति न रहे या
सहसागारेणं (सहसाकार)	: अकस्मात् मुह मे वर्षा की बूद आदि चली जाय या कोई बलात् मुह में ठूंस दे, या
महत्तरा-गारेणं (महत्तराकार)	: महत्तर अर्थात् किये हुए प्रत्याख्यान से विशेष निर्जरा का अवसर उपस्थित होने पर महत्तर अर्थात् बडे की आज्ञा हो जाय, या
सव्व-समाहि-वत्तियागारेणं	: शीघ्र प्राणनाशकारी विशूचिका (हैजा) आदि रोग या सर्पदंश आदि

(सर्व-समाधि-प्रत्यायाकार) हो जाय, उसे मिटाकर समाधि पाने के लिए औषधि आदि लेना पडे (या अन्य किसी कारण से आहार करना पडे, तो मेरा प्रत्याख्यान भग नही होगा, इस प्रकार मै)

वोसिरामि : (अपनी आहार आत्मा को) वोसिराता हूँ।

समुच्चय का पाठ

पहली सामायिक, दूसरा चतुर्विंशतिस्तव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पांचवाँ कायोत्सर्ग, छठा प्रत्याख्यान—इन छह आवश्यको में जानते अनजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो और पाठ उच्चारण करते अक्षर, व्यञ्जन, मात्रा, अनुस्वार, पद आदि आगे-पीछे, उलट-पलट, न्यून-अधिक कहा हो, तो दिन सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

१. मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, २. अव्रत का प्रतिक्रमण, ३. प्रमाद का प्रतिक्रमण, ४. कषाय का प्रतिक्रमण, ५. अशुभयोग का प्रतिक्रमण, इन पाँच प्रतिक्रमण में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो, तथा चलते, फिरते, उठते, बैठते, पढ़ते, गुणते, जानते, अजानते, १. ज्ञान, २. दर्शन, ३. चारित्र, ४. तप सम्बन्धी कोई दोष लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

१. गये काल का प्रतिक्रमण, २. वर्त्तमान काल की सामायिक और ३ आगामी काल का पच्चक्खाण, इनमे जो कोई दोष लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

१. शम, २. संवेग, ३. निर्वेद, ४ अनुकम्पा और ५. आस्तिकता (आस्था)—ये पाँच व्यवहार समकित के लक्षण है। इनको मै धारण करता हूँ।

'प्रश्नोत्तरी'

प्र० : 'मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण' किन पाठो से होता है।

उ० : मुख्यतया 'दर्शनसम्यक्त्व' के पाठ से, अठारह पाप के 'मिथ्यादर्शन शल्य' इस पाठ से तथा पच्चीस मिथ्यात्व' आदि के पाठ से होता है।

प्र० : 'अव्रत का प्रतिक्रमण' किन पाठो से होता है ?

उ० : मुख्यतया 'इच्छामि ठाएमि' के पचण्हमणुव्वयाण' आदि पाठ से, पाँच अणुव्रतो के पाठ से तथा अट्ठारह पाप के 'हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह' के पाठ से होता है।

प्र० : 'प्रमाद और अशुभयोग का प्रतिक्रमण' किन पाठो से होता है ?

उ० : मुख्यतया 'इच्छामि ठाएमि' के 'तिण्ह गुत्तीण' आदि पाठ से, गुणव्रतो के और शिक्षाव्रतो के पाठ से, अट्ठारह पाप के 'कलह' आदि पाठ से, १४. समूच्छिम के पाठ से तथा पगाम सिज्जाए, गोयरग्ग-चरियाए, चाउक्काल सज्झायस्स, आदि के पाठ से होता है।

प्र० : 'कषाय का प्रतिक्रमण' किन पाठो से होता है ?

उ० : मुख्यतया 'इच्छामि ठाएमि' के 'चउण्ह कसायाण' के पाठ से, तथा अट्ठारह पाप के 'क्रोध, मान, माया, लोभ, इत्यादि के पाठ से होता है।

प्र० : आगामी काल के प्रत्याख्यान का प्रतिक्रमण कैसे होता है ?

उ० यदि आगामी काल के प्रत्याख्यान श्रद्धा के साथ, विनय के साथ, सम्यक्तया पाठोच्चारण के साथ तथा शुद्ध भाव आदि से साथ धारण न किये हो, तो उसका प्रतिक्रमण होता है।

'रात्रि-भोजन त्याग' निबंध

छठे प्रत्याख्यान आवश्यक मे जो 'नमस्कार सहित' (नवकारसी) आदि प्रत्याख्यान बताये है, उनके पूर्व मे रात्रि भोजन का त्याग मुख्य रूप से समाया हुआ है, अतः रात्रि भोजन के त्याग पर विचार किया जाता है।

१. सूक्त : १. 'अहो निच्च तवोकम्म, एगभत्त च भोयण' जो रात्रि भोजन न करके केवल एक (दिन) भक्त ही करता है, अहो, वह धन्य है।' क्योकि उसकी प्रत्येक अहोरात्रि तपयुक्त व्यतीत होती है।—दश०। २. रात्रि भोजन न करने वाले का, प्रतिवर्ष मे छह मास जितना समय तपोमय बन कर सार्थक हो जाता है। ३. वैष्णव मतानुसार जो रात्रि भोजन का नित्य त्याग करता है, उसे तीर्थ यात्रा करने जितना फल होता है।

२. उद्देश्य : रात्रि भोजन से मुह के द्वारा जीवो की विराधना के कारण होने वाली भाव महा हिंसा को टालना और तपोमार्ग मे प्रवेश करना।

३. स्थान : आचार्यो ने, रात्रि भोजन के त्याग का स्थान 'सातवें उपभोग परिभोग व्रत' मे बताया है। उनका कथन है कि

'जैसे भोजन मे काम आने वाले द्रव्यो की जाति, सख्या, भार आदि से प्रमाण करना, सातवे व्रत मे आता है, वैसे ही 'मै उन द्रव्यो को रात्रि मे नही खाऊँगा' इस प्रकार काल से प्रत्याख्यान करना, भी सातवे व्रत मे आता है।'

४ **प्रकार :** रात्रि भोजन का त्याग नाना प्रकार से हो सकता है, जैसे—१. यावज्जीवन के लिए रात्रि को चारो आहार का त्याग या २ पानी को छोडकर शेष तीन आहार का त्याग या ३. पानी और स्वाद्य को छोडकर शेप दो आहार का त्याग। अथवा वर्प मे पर्व तिथियो को या " " " इतने दिनो तक रात्रि को ४. चार, ५ तीन या ६. दो आहार का त्याग।

५. **लाभ :** १. रात्रि भोजन करने वाले, गरम-गरम भोजन करने की इच्छा आदि के कारण प्राय रात्रि को भोजन वनाते है या वनवाते है। उस समय दीपक के मन्द प्रकाश से—दिखाई न देने वाले, अर्थात् सूर्य के तीव्र प्रकाश से दिखाई देने वाले सूक्ष्म जीव-जन्तु कई वार मर जाते हैं। कुछ वार पूरे अन्धेरे मे भोजन वनाने पर तो वडे-वडे जीव-जन्तु भी मर जाते हैं। रात्रि भोजन के त्याग से रात्रि मे भोजन कम वनता है, जिससे अहिसा का लाभ होता है। २. ३. रात्रि भोजन के त्याग से, माता-पिता, साथी-स्वजन आदि से चोरी-छिपे रात को होटल आदि मे चाय-पकौडो, मिठाई आदि खाने का स्वभाव तथा उस सवध मे उनके सामने झूठ वोलने का स्वभाव छूटता है। ४ रात्रि भोजन से होने वाले अब्रह्मचर्य सम्वधी विकार, जैसे—भोग भावना, अति भोग, दु.स्वप्न, आदि नही होते। ५. सारे दिन भर तथा रात्रि को भी वहुत अधिक समय तक धन कमाने की तृष्णा मन्द पड़ती है। ६ रात्रि भोजन के अभाव मे जो

लम्बी या बार बार यात्राएँ असम्भव या कठिन होती हैं, वे रुकती हैं। ७. १० भोजन के काम मे आने वाले द्रव्यो का काल से यावज्जीवन के लिए या प्रतिदिन के लिए परिमाण होता हैं। ८ दिन मे भोजन बनाने और करने की अनुकूलता होते हुए भी, रात्रि भोजन के व्यसन के कारण जो रात्रि मे भोजन बनाया और किया जाता है, और इस प्रकार अनर्थ दण्ड लगाया जाता है, वह छूटता हैं। ९ जब घर का एक प्राणी रात्रि भोजन करता है, विशेषतया मुखिया प्राणी रात्रि भोजन करता है, तो धीरे धीरे अन्य प्राणी भी रात्रि भोजन की ओर झुकते हैं। इससे उसके स्वय के और अन्य के जीवन मे से सायकाल की सामायिक प्रतिक्रमण आदि की क्रियाएँ दूर होती हैं और कुछ भावना वाले जीवो को अन्तराय पडती है। ये दूषण दूर होते है। ११. रात्रि भोजन के व्यसन से उपवास, पौषध, सवर आदि मे आने वाली असमर्थता नही आती। १२ सायकाल मे भी साधुदान का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार रात्रि भोजन के त्याग से बारह ही 'व्रतो को लाभ पहुँचता है।

लौकिक लाभ—वैद्यक ग्रन्थों मे बताया है कि १ रात्रि को पाचक ग्रन्थियाँ आदि सकुचित हो जाती हैं, अतः रात्रि भोजन से भोजन बराबर पचता नही है। २ बार बार रात्रि भोजन करने से अजीर्ण रोग हो जाता है। ३ रात्रि भोजन करने से वीर्यपात होकर शक्ति घटती है। ४ सूर्य प्रकाश मे भोजन करने से जो पुष्टि मिलती है। रात्रि भोजन मे सूर्य प्रकाश नही मिलने से, वह पुष्टि नही मिलती। ५ रात्रि भोजन करते समय मक्खी आदि स्पष्ट और शीघ्र दिखाई नही देती और खाने मे आ जाती है। मक्खी खाने मे आ जाने से वमन, कीडी से

बुद्धिनाश और पित्ती, मकडी से कोढ, जूओ से जलोदर, बाल से स्वर भग, इस प्रकार विभिन्न वस्तुएँ रात्रि-भोजन के साथ मे खाने मे आ जाने पर विभिन्न रोग उत्पन्न होते है। इत्यादि रात्रि भोजन मे कई हानियाँ हैं, जो रात्रि भोजन त्याग से टल जाती है।

पारलौकिक लाभ—बिना कारण रुचिपूर्वक रात्रि भोजन करने वाले, अगले जन्मो मे कौआ, उल्लू, बिल्ली, गीध, सूअर, साँप, बिच्छू, गोह आदि रात्रि-भोजी, अभक्ष्य भोजी और घृणित भोजी पशु-पक्षी आदि बनते है। तथा नियमपूर्वक दृढ रहकर रात्रि-भोजन का त्याग पालने वाले देव और वहाँ से आर्य मनुष्य बनते है।

६. **कर्त्तव्य** 'सूर्य उदय नही हुआ या अस्त हो चुका है।' इसका विशेष ध्यान रखना। सूर्योदय के पश्चात् नमस्कार सहित तथा सूर्यास्त के ५-१० मिनिट पूर्व 'दिवस चरम' का प्रत्याख्यान करना, जिससे रात्रि-भोजन त्याग मे दोष लगने की सभावना न रहे। सायकाल भोजन अति मात्रा मे नही करना, जिससे रात्रि को विशेष प्यास न लगे। तथा पानी अतिमात्रा मे नही पीना, जिससे भविष्य मे रात्रि को अवास्तविक प्यास न लगे तथा स्वास्थ्य विकृत न हो। जहाँ दिन रहते भोजन मिलने की सभावना न हो, वहाँ के लिए पहले से विवेक रखना तथा, यथा शक्य रात्रिनिर्मित न खाना।

७. भावना · सूक्तादि पर विचार करना 'मुनियो के समान रात को लाया हुआ और रात्रि मे रक्खा हुआ भोजन भी न करने वाला कब बनूगा।' वह मनोरथ करना। रात्रि

भोजन त्याग की अपूर्णता का खेद करना। निरन्तर मास-मास का तप वाले तपस्वियो के जीवन चरित पर ध्यान देना।

पाठ ३६ छत्तीसवाँ

दश प्रत्याख्यानों के पृथक्-पृथक् पाठ

१. 'नमस्कार सहित' का प्रत्याख्यान पाठ

उग्गए सूरे	: सूर्य उदय से लेकर
१. नमोक्कार सहियं	: १. मुहूर्त $\frac{1}{15}$ दिन और एक नमस्कार
पच्चक्खामि	: उच्चारण काल तक पच्चक्खता हूँ

चउव्विहं पि आहारं—१. असणं २. पाणं ३. खाइमं ४. साइमं। १. अन्नत्थणा-भोगेणं २. सहसागारेणं। वोसिरामि।

२. 'पौरुषी' का प्रत्याख्यान पाठ

उग्गए सूरे	: सूर्य उदय से लेकर
पोरिसिं (पौरुषी)	: एक प्रहर अर्थात् $\frac{1}{4}$ दिन तक या
सड्ढ-पोरिसिं (सार्द्ध)	: डेढ प्रहर अर्थात् $\frac{3}{8}$ दिन तक

पच्चक्खामि। चउव्विहं पि आहारं—१. असणं २. पाणं ३. खाइमं ४. साइमं। १. अन्नत्थणा-भोगेणं २. सहसा-गारेणं

३. पच्छन्न-कालेणं (प्रच्छन्न-काल) : मेघ, आंधी, पर्वत आदि के कारण सूर्य अदृश्य होने से, या घडी आदि के अभाव से

४. दिसामोहेणं (दिशा-मोह) : या अन्य दिशा मे पूर्व दिशा की भ्रान्ति के कारण 'सूर्य बहुत ऊपर चढ गया' इस समझ से, या घडी आदि देखने मे भ्रान्ति हो जाने से

५. साहु-वयणेणं (साधु-वचन) : या प्रामाणिक पुरुष के कथन मे भ्रान्ति रह जाने से या घडी आगे होने से काल का ज्ञान शुद्ध न होने पर काल से पहले आहार ग्रहण हो जाय तो आकार (आगार) तथा

६. महत्तरा-गारेणं ७ सव्व-समाहि-वत्तिया-गारेणं । वोसिरामि ।

३. 'पूर्वार्द्ध का प्रत्याख्यान पाठ

उग्गए सूरे : सूर्य उदय से लेकर
पुरिमड्ढं (पूर्वार्ध) : दो प्रहर अर्थात् $\frac{1}{2}$ दिन तक या
अवड्ढं (अपार्ध) : तीन प्रहर अर्थात् $\frac{3}{4}$ दिन तक

पच्चक्खामि-चउव्विहं पि आहारं—१. असणं २. पाणं ३. खाइमं ४. साइमं । १. अन्नत्थणा-भोगेणं २. सहसा-गारेणं ३. पच्छन्न-कालेणं ४ दिसा-मोहेणं ५. साहु-वयणेणं ६. महत्तरा-गारेणं ७. सव्व-समाहि-वत्तिया-गारेणं । वोसिरामि ।

'पौरुषी' और 'पूर्वार्ध' के प्रत्याख्यान का पाठ प्रायः समान है । 'पूर्वार्ध' का प्रत्याख्यान विशेष काल का होने से,

उसमे 'महत्तर-आकार' विशेष रक्खा है तथा 'पौरुषी' का काल अल्प होने से उसमे 'महत्तर-आकार' नही रक्खा है। 'नमस्कार सहित' का काल अति अल्प होने से उसमे 'प्रच्छन्न-कालादि' चार आकार भी नही रक्खे है।

४. 'एकाशन' का प्रत्याख्यान पाठ

एगासरणं (एकाशन) : दोनो पुत (नितब; कटि और जघा के मध्य भाग) को बिना हिलाए एक आसन से एक बार भोजन उपरात

पच्चक्खामि । तिविह पि आहारं—१. असरणं २. खाइमं ३. साइम (अथवा) चउव्विह पि आहार—१ असरण २ पाणं ३. खाइमं ४ साइमं । १ अन्नत्थरणाभोगेरणं २ सहसागारेरण

३ सागारियागारेरण (सागारिका-कार) : (साधु के लिए सभी गृहस्थ, तथा गृहस्थो के लिए क्रूर दृष्टि वाले, लोभी, जुगुप्सनीय आदि पुरुष, जिसके सामने भोजन नही किया जाता, उसके लिए स्थान परिवर्तन करना पडे।

४. आउंटरण पसाररणेरण (आकुचन प्रसाररण) : दोनो पुतो के अतिरिक्त अगो को सिकोडू, प्रसारू, हिलाऊँ,

५. गुरु अब्भुट्ठारणेरण (गुरु अभ्युत्थान) : (साधु के लिए बडे या पाहुने साधु, तथा गृहस्थ के लिए कोई भी) साधु आने पर उनके विनय के लिए उठना पड़े।

पारिट्ठावरिणयागारेरण : लाया हुआ आहार बच जाय तो,

(परिस्थापनिकाकार)   परठने की विराधना को टालने के लिए उसे भोगना पडे, तो आगार तथा

७. महत्तरागारेणं   ८. सव्व-समाहि-वत्तिया-गारेणं। वोसिरामि।

५. 'एकस्थान' का प्रत्याख्यान पाठ

एक्कासणं (एकाशन)   : भोजन के लिए हाथ और मुँह जितना
एगट्ठाणं (एकस्थान)   हिलता है, उसके अतिरिक्त अन्य अगो को हिलाये बिना एक वार भोजन उपरात

पच्चक्खामि। तिविहं पि आहारं—१. असणं २ खाइमं ३. साइमं। (अथवा) चउव्विहं पि आहारं—१.असणं २. पाणं ३. खाइमं ४ साइमं। १. अन्नत्थणा-भोगेणं, २. सहसागारेणं ३. सागारिया-गारेण, ४. गुरु-अब्भुट्ठाणेण, ५. पारिट्ठावणिया-गारेणं, ६. महत्तरागारेणं, ७. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं। वोसिरामि।

'एकाशन' और 'एक-स्थान' का प्रत्याख्यान पाठ प्रायः समान है। भोजन के समय अगो के सिकोडने पसारने का आगार 'एकाशन' मे है और 'एक-स्थान' मे नही।' यही दोनो प्रत्याख्यानो मे अन्तर है।

६. 'आयंबिल' का प्रत्याख्यान पाठ

आयंबिलं   : लवण-मिर्च आदि सस्कार तथा दूध
(आचाम्ल)   आदि विगय रहित, एक अचित्त धान्य का एक वार भोजन उपरात

पच्चक्खामि । : तीन या चारो आहार का 'एकाशन' या 'एकस्थान' सहित त्याग करता हूँ ।

१. अन्नत्थणाभोगेणं २. सहसागारेण

३. लेवा-लेवेण (लेपालेप) : पात्र, कुडछी, हाथ आदि, जो पहले लेप युक्त थे, उन्हे निर्लेप करते हुए भी उनमे कुछ लेप रह जाय, ऐसे अल्प लेप वाले पात्रादि से दिया हुआ आहार करूँ

४. उक्खित्त-विवेगेणं (उत्क्षिप्त-विवेक) : गुडादि के ऊपर या नीचे रक्खी रोटी आदि को गुडादि से भिन्न करके दे, उसमे गुड आदि का अल्प लेप रह जाय, वह आहार करूँ

५ गिहत्थ-ससट्ठेणं (गृहस्थ-ससृष्ट) : गृहस्थ ने आहार बनाने के पहले या पीछे जिस आहार मे नमक आदि मिला दिया हो, या अति अल्प मात्रा मे विगय लगा दी हो, वह आहार करूँ, तो आगार तथा

६. पारिट्ठावणिया-गारेणं ७. महत्तरागारेणं ८. सव्व-समाहि-वत्तिया-गारेण । वोसिरामि ।

७. 'निर्विकृतिक' का प्रत्याख्यान पाठ

निव्विगइयं (निर्विकृतिक) : १ पिण्ड या घार की या २. अवगाहिम (कडाई) की पाचो विगय रहित या इच्छित विगय रहित एक बार भोजन उपरात

पच्चक्खामि : तीन या चारो आहार का 'एकाशन, या 'एकस्थान सहित' त्याग करता हूँ।

१. अन्नत्थणाभोगेण २. सहसागारेणं ३. लेवा-लेवेणं ४. गिहत्थ-संसट्ठेणं ५. उक्खित्त-विवेगेणं

६. पडुच्च-मक्खिएणं (प्रतीत्य-म्रक्षित) : सर्वथा रूखी न रहे, इसलिए रोटी आदि पर साधारण लेप लगा हो, दाल मे छमका हो, शाक मे खटाई हो, उसका या छाछ आदि का आहार करू, तो आगार तथा

७. पारिट्ठावणिया-गारेणं ८. महत्तरा-गारेण ९. सव्व-समाहि-वत्तिया-गारेणं। वोसिरामि।

'आयबिल' और 'निर्विकृतिक' का प्रत्याख्यान पाठ प्राय: समान है। 'निर्विकृतिक' मे लवण-मिर्च आदि सस्कार का तथा विगय के साधारण लेप का उपयोग हो सकता है, परन्तु आयबिल 'मे नहीं हो सकता।' यही दोनो प्रत्याख्यानो में अन्तर है। वैसे 'निर्विकृतिक' मे सामान्यतया लूखी रोटी और छाछ ही खाई जाती है।

८ 'उपवास' का प्रत्याख्यान पाठ

उग्गए सूरे : सूर्योदय से लेकर
अभत्तट्ठं (अभक्तार्थं) : चतुर्थ भक्त या उपवास

पच्चक्खामि। **तिविहं पि आहार १. असण २. खाइमं ३. साइमं** (अथवा) **चउव्विहं पि आहार १. असणं २ पाण ३. खाइमं ४. साइमं। १. अन्नत्थणाभोगेणं २. सहसागारेण ३. पारिट्ठावणियागारेणं**

४. महत्तरा-गारेणं ५. सव्व-समाहि-वत्तिया-गारेणं। वोसिरामि।

६ 'अभिग्रह' का प्रत्याख्यान पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं : गाठ न खोलूं, मुट्ठी न खोलूं या
अभिग्गहं (अभिग्रह) : अमुक द्रव्य, अमुक क्षेत्र मे, अमुक काल मे, अमुक रीति से न मिले, तब तक मन में निर्धारित समय तक

पच्चक्खामि। तिविहं पि आहारं—१. असणं २. खांइमं ३ साइमं (अथवा) **चउव्विहं पि आहारं—१. असणं २. पाणं ३. खाइमं ४. साइमं। १. अन्नत्थणा-भोगेणं। २. सहसागारेणं ३. महत्तरा-गारेणं ४. सव्व-समाहिवत्तिया-गारेणं। वोसिरामि।**

'उपवास' और 'अभिग्रह' का प्रत्याख्यान पाठ प्रायः समान है। 'उपवास' मे 'पारिट्ठावणियागार' है और अभिग्रह मे नही है।' दोनों प्रत्याख्यानो मे आगार सम्बन्धी यही अन्तर है।

'१ लेवा-लेवेणं २ उक्खित्त-विवेगेणं ३. गिहत्थ-ससट्ठेणं और ४. पारिट्ठावणियागारेणं'—ये चारो आगार १. साधु के लिए, २ प्रतिमाधारी श्रावक के लिए तथा ३. दो करण तीन योग से गौचरी की दया करने वाले श्रावको के लिए है। घर मे भोजन बन जाने के पश्चात् या ऐसी ही अन्य परिस्थितियो मे 'आयंबिल-निव्विगइय' का भाव उत्पन्न होने पर, सामान्य गृहस्थ के लिए भी 'लेवा-लेवणं' आदि तीन आगार होते हैं, अतः उन्हे 'आयबिल-निव्विगइ' के लिए नया आरभ न करने का विवेक रखना चाहिए।

प्रत्याख्यान पारने का पाठ

विधि : एक नमस्कार मत्र का उच्चारण करके जिस प्रत्याख्यान को पारना हो, उसका नाम बोलते हुए निम्न पाठ पढे।

...... पच्चक्खाणं कयं	: जो प्रत्याख्यान किया
तं, पच्चक्खाणं	: उस, प्रत्याख्यान का
सम्मं काएणं	: सम्यक् रूप मे, काया से
१. फासियं	: (आरभ मे प्रत्याख्यान का पाठ पढ कर) स्पर्श किया
२. पालियं	: (मध्य मे आहार छोड कर) पालन किया
३. सोहियं	: (लगें हुए अतिचारों की आलोचना करके) शुद्ध किया
४. तीरियं	: (अन्त में नमस्कार मत्र का उच्चारण करके) तीर पर पहुँचाया
५. किट्टियं	: (गुण का) कीर्तन किया (इस प्रकार)
आराहियं	: (यथाशक्य) आराधन किया
आणाए अणुपालियं भवइ	: आज्ञा के अनुसार अनुपालन किया (फिर भी यदि कोई त्रुटि रही हो,
जं च न भवइ	: और जो अनुपालन न हुआ हो, तो
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं	: उसका मिथ्या हो मेरा पाप।

अर्थ, भावार्थ, प्रश्नोत्तर, निबंध और प्रासगिक जानकारी सहित

—श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त—

❖

इति १: सूत्र-विभाग समाप्त

❖

२. तत्त्व-विभाग

पच्चीस बोल के स्तोक (थोकड़े) के शेष बोल सार्थ

१, २, ३, ४, ५, ६, १०, १४, १८, १९, २२ और २३ वां—यो बारह बोल 'सुबोध जैन पाठमाला—भाग १' मे दिये जा चुके हैं। इसमे शेष रहे हुए—

६, ७, ८, ११, १२, १३, १५, १६, १७, २०, २१, २४ और २५वां बोल—यो तेरह बोल दिये हैं।

छठा बोल : 'दश प्राण'

प्राण : जिनके मिलने से जीव जन्मे, जिनके रहने से जीव जीवित रहे और जिनके बिछुड़ने से जीव मर जाय।

१. श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण, २. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण, ३. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण, ४. रसेन्द्रिय बलप्राण, ५. स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, ६. मनोबल-प्राण, ७. वचनबल-प्राण, ८. काय बलप्राण, ९. श्वासोच्छ्वास बल-प्राण और १०. आयुष्य बल-प्राण।

इनमे से १. स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, २. काय-बल-प्राण, ३. श्वासोच्छ्वास बलप्राण और ४ आयुष्य बल-प्राण—ये चार प्राण एकेन्द्रियों को होते हैं। द्वीन्द्रिय को रसेन्द्रिय बल-प्राण और वचन

बल-प्राण मिलाकर छह, त्रीन्द्रिय की घ्राणेन्द्रिय बलप्राण मिलाकर सात, चतुरिन्द्रिय को चक्षुरिन्द्रिय बल-प्राण मिलाकर आठ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय को श्रोत्रेन्द्रिय बल-प्राण मिलाकर नव, तथा संज्ञी पचेन्द्रिय को मनोबल-प्राण मिलाकर दश 'बल-प्राण' होते हैं।

सातवाँ बोल : 'पाँच शरीर'

शरीर : उत्पत्ति समय से ही प्रतिक्षण जीर्णशीर्ण होने वाला।

१. औदारिक शरीर : १. दुर्गंधमय तथा सडने वाले रक्त, मास, हड्डी आदि से बना शरीर। २ सर्वश्रेष्ठ सार पुद्गलो से बना उदार (उत्तम) शरीर; जैसे-तीर्थंकरो का शरीर, गणधरो का शरीर। ३ वैक्रिय और आहारक की अपेक्षा असार पुद्गलो से बना शरीर, जसे-सामान्य तिर्यञ्च-मनुष्यो का शरीर। ४. अवस्थित रूप से सबसे बडी अवगाहना (कद, लम्बाई, चौडाई ऊँचाई) वाला उदार-(मोटा) शरीर; जैसे वनस्पति का शरीर। ५. 'प्रदेश अल्प किन्तु अवगाहना बड़ी' ऐसा शरीर, जैसे भिण्डी का शरीर।

२. वैक्रिय शरीर : १. सुरूप, कुरूप, एक, अनेक, छोटा, बडा, हल्का, भारी, दृश्य, अदृश्य आदि अनेक रूपो मे परिणत होने वाला (बदलने वाला) शरीर। २. दुर्गंधमय तथा सड़ने वाले रक्त, मास, हड्डी आदि से रहित शरीर।

३. आहारक शरीर : १. अन्यत्र विराजमान केवली भगवान् की सेवा मे भेज कर प्रश्न पूछने के लिए या उनका अतिशय देखने के लिए बनाया जाने वाला या प्राणी-रक्षा तथा ऐसे ही अन्य प्रयोजनो से बनाया जाने वाला शरीर २ स्फटिक

के समान अत्यन्त स्वच्छ उत्तम पुद्गलो से बना और मूँड हाथ से लेकर एक हाथ तक की अवगाहना वाला शरीर।

४. **तैजस शरीर** : १. आहार को पचाने वाला व शरीर मे उष्णता रखने वाला शरीर २. तेजोलब्धि से तेजोलेश्या निकालने मे कारणभूत शरीर।

५. **कार्मण शरीर** : १. आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मो से बना हुआ कर्म-रूप शरीर, २. पचे हुए भोजन के रसादि को यथास्थान पहुँचाने वाला शरीर।

इनमे से 'औदारिक शरीर' सभी तिर्यञ्च व मनुष्यों को होता है। 'वैक्रिय शरीर' सभी नरक-देवो को होता है, कुछ तिर्यञ्चो व मनुष्यो को भी होता है। 'आहारक शरीर' मात्र चौदह पूर्व धारी पुरुष साधु मनुष्यों को ही होता है। और 'तैजस' तथा 'कार्मण' शरीर सभी ससारी जीवों को अनादिकाल से होता है।

आठवाँ बोल : 'पन्द्रह योग'

मन के चार, वचन के चार, काया के सात। योग १५।

योग : १. मन वचन और काया। २. मन वचन और काया का व्यापार (=प्रवृत्ति)। ३. मन वचन और काया के व्यापार से आत्मा मे होने वाला परिस्पन्दन (=हलन चलन, कम्पन) विशेष।

मन के चार योग

१. **सत्य मनोयोग** : १. जीवादि नव तत्वों के या जीवादि छह द्रव्यो के विषय में सत्य (=यथार्थ) विचार करना।

२. मोक्ष की ओर ले जाने वाले हित-साधक विचार करना। ३ निरवद्य (=हिंसादि पाप रहित) विचार करना।

२. असत्य मनोयोग : १. जीवादि नव तत्त्वो के या जीवादि छह द्रव्यो के विषय मे असत्य (=अयथार्थ, मिथ्या) विचार करना। २ ससार बढाने वाले हित-विरोधी विचार करना। ३ सावद्य (हिंसादि पाप सहित) विचार करना। ४ क्रोधादि कषाय मे आकर विचार करना।

३ मिश्र (सत्यामृषा) मनोयोग : जिसमे सच झूठ दोनो हो, ऐसा मिश्र विचार करना। जैसे किसी वन मे आम के वृक्षो की अधिकता हो और उसमे जामुन, कबीठ आदि वृक्षो की अल्पता हो,तो उसके विषय मे 'यह आम का 'ही' वन है। ऐसा एकान्त विचार करना। उस वन मे आम के वृक्ष होने से यह विचार सत्य भी है और जामुनादि के भी वृक्ष होने से यह विचार असत्य भी है। यदि उदाहरण के लिए दिये गये विचारो में 'ही' नही होता तो, वह विचार सत्य मनोयोग मे माना जाता।

४. व्यवहार (असत्यामृषा) मनोयोग : जिस मे सच झूठ दोनो न हो या किसी विषय को सत्य या असत्य सिद्ध करने की भावना न हो, ऐसा विचार करना। जैसे—याचना, पृच्छना, आमन्त्रण आदि का विचार करना।

वचन के चार योग

१. सत्यवचन योग (सत्य भाषा) २. असत्यवचन योग (असत्य भाषा) ३. मिश्र वचन योग (मिश्र भाषा) और ४. व्यवहार वचन योग (व्यवहार भाषा)

इन चारो वचनयोगो का अर्थ (भाषाओ का अर्थ) क्रमश: चारो मनोयोगो के अर्थ के समान है। केवल 'विचार' के स्थान पर 'वचन' समझना चाहिए।

काया के सात योग

१. **औदारिक-योग :** औदारिक शरीर का व्यापार। २. **औदारिक मिश्र-योग :** वैक्रिय, आहारक या कार्मण से मिला हुआ औदारिक शरीर का व्यापार। ३ **वैक्रिय योग :** वैक्रिय शरीर का व्यापार। ४. **वैक्रिय मिश्र-योग :** औदारिक या कार्मण से मिले हुए वक्रिय शरीर का व्यापार। ५. **आहारक-योग :** आहारक शरीर का व्यापार। ६. **आहारक मिश्र-योग :** औदारिक से मिले हुए आहारक शरीर का व्यापार। ७. **कार्मणयोग :** कार्मण शरीर का व्यापार।

इन पन्द्रह योगो मे से चार स्थावर-काय और असज्ञी मनुष्य जीवो को १ औदारिक २ औदारिक मिश्र और ३ कार्मण—ये तीन योग होते है। वायुकाय को '४ वैक्रिय और ५ वैक्रियमिश्र' मिलाकर पांच योग होते हैं। द्वीन्द्रीय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, और असज्ञी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय। को १ व्यवहार भाषा २ औदारिक ३ औदारिक मिश्र और ४ कार्मण—ये चार योग होते हैं। संज्ञी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियो को और साधुओं को छोड़कर शेष सज्ञी मनुष्यो को, 'आहारक और आहारक मिश्र' छोडकर शेष तेरह योग होते हैं। नारक और देवो को औदारिक और औदारिक मिश्र—ये दो योग और भी छोड कर शेष ग्यारह योग होते हैं। साधुओं मे १५ ही योग प्राप्त होते हैं।

ग्यारहवाँ बोल : 'चौदह गुणस्थान।'

गुणस्थान : मोहनीयादि आठ कर्मों के कारण आत्मा के सम्यक्त्व आदि गुणो की न्यूनाधिक शुद्धि-अशुद्धि की अवस्था।

१. मिथ्यात्व गुणस्थान : मोहनीयकर्म के तीव्र उदय से होनेवाली मिथ्यादृष्टि अवस्था।

२. सास्वादन गुणस्थान : अविरत सम्यग्दृष्टि की अवस्था से मिथ्यादृष्टि अवस्था की ओर गिरती हुई अवस्था।

३. मिश्र गुणस्थान : कुछ मिथ्यादृष्टि और कुछ सम्यग्दृष्टि,—इस प्रकार मिलीजुली अवस्था।

४. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान : चारित्र रहित सम्यग्दृष्टि अवस्था।

५. देशविरति (श्रावक) गुणस्थान : देश (=कुछ) चारित्र सहित श्रावक अवस्था।

६. प्रमत्तसंयत (अप्रमादी साधु) गुणस्थान : सर्व (=सम्पूर्ण) चारित्र सहित, किन्तु प्रमादयुक्त, ऐसी साधु अवस्था।

७. अप्रमत्तसयत (=अप्रमादी साधु) गुणस्थान : प्रमादरहित साधु अवस्था।

८. निवृत्ति (=नियट्टि) बादर सम्पराय गुणस्थान : बादर कषाय सहित ऐसी साधु अवस्था, जिसमे सम समयवर्ती सभी जीवो के अध्यवसाय विषम भी हो सकते हो।

९. अनिवृत्ति (=अनियट्टि) बादर सम्पराय गुणस्थान : बादर कषाय सहित ऐसी साधु अवस्था, जिसमे सम समयवर्ती सभी जीवो के अध्यवसाय समान ही होते हो।

१०. सूक्ष्म-सम्पराय गुण-स्थान : सूक्ष्म लोभ सहित साधु अवस्था।

११. उपशान्त-मोहनीय गुण-स्थान : दवे हुए मोहनीय कर्म वाली साधु अवस्था।

१२ क्षीण-मोहनीय गुण-स्थान : नष्ट हुए मोहनीय कर्म वाली साधु अवस्था।

१३ सयोगी केवली गुण-स्थान : मन वचन काया के योग भी है तथा केवल ज्ञान भी है—ऐसा घातिकर्म रहित तथा अघाति कर्म सहित साधु अवस्था।

१४. अयोगी केवली गुण-स्थान : मन वचन काया के योगो को रोक दिये है—ऐसी केवल ज्ञान वाली, घाति कर्म रहित तथा अघाति कर्म सहित साधु अवस्था।

एक समय मे एक जीव को एक ही गुण स्थान होता है। एकेन्द्रिय को मात्र मिथ्यात्व गुण स्थान ही होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय को अपर्याप्त अवस्था मे पूर्वभव से साथ आया हुआ सास्वादान गुणस्थान भी हो सकता है। नारक तथा देवों को पहले के चार गुणस्थान होते हैं। तिर्यञ्च पचेन्द्रियों को पहले के पांच गुणस्थान होते हैं। मनुष्यों मे सभी गुणस्थान हो सकते हैं। अभी इस युग मे मात्र सात गुणस्थान हो सकते हैं। १४ वें गुणस्थान के पश्चात् जीव मोक्ष में चला जाता है।

बारहवाँ बोल : 'पांच इन्द्रियों के २३ विषय और २४० विकार

विषय : जिसको इन्द्रिय जाने।

१. श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द है। शब्द के तीन भेद :

१. जीव शब्द : जीव के मुह से निकला हुआ शब्द।

२. अजीव शब्द : अजीव का शब्द, जैसे वीणा आदि का शब्द और ३ मिश्र शब्द=जीव के मुँह के द्वारा अजीव का निकला हुआ शब्द। जैसे बांसुरी आदि के शब्द। श्रोत्रेन्द्रिय के ये तीन मूल विषय। ये तीन शुभ तथा ये तीन अशुभ—यों श्रोत्रेन्द्रिय के उत्तर विषय १२ बारह।

२ चक्षुरिन्द्रिय का विषय वर्ण है। वर्ण के पाँच भेद - १. कृष्ण (काला) २ नील (नीला) ३ रक्त (लाल) ४. पीत (पीला) और ५. श्वेत (सफेद)। चक्षुरिन्द्रिय के ये पाँच मूल विषय। ये तीन सचित्त, तीन अचित्त और तीन मिश्र—ये पन्द्रह। ये पन्द्रह शुभ और पन्द्रह अशुभ—यो श्रोत्रेन्द्रिय के उत्तर विषय ३० तीस।

३. घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध है। गन्ध के दो भेद—१ सुरभिगन्ध (सुगन्ध) और २. दुरभिगन्ध (दुर्गन्ध)। घ्राणेन्द्रिय के ये दो मूल विषय। ये दो सचित्त, दो प्रचित और दो मिश्र—यो घ्राणेन्द्रिय के उत्तर विषय ६ छह।

४. रसेन्द्रिय का विषय रस है। रस के पाँच भेद - १. तिक्त (=तीखा, जिसे आज कडुवा कहते हैं) २. कटु (कडुवा, जिसे आज तीखा कहते हैं) ३. कषाय (कषायला) ४. अम्ल (=खट्टा) और ५. मधुर (=मीठा)। रसेन्द्रिय के पाँच मूल विषय। ये पाँच सचित्त, पाँच अचित्त और पाँच मिश्र—ये पन्द्रह। ये पन्द्रह शुभ और पन्द्रह अशुभ—यों रसेन्द्रिय के उत्तर विषय ३० तीस।

५. स्पर्शेन्द्रिय का विषय स्पर्श है। स्पर्श आठ हैं—१. कर्कश (खरदरा, जैसे पैर की ऐडी) २ मृदु (कोमल, सुहाँला, जैसे गले का तालु) ३. गुरु (भारी, जैसे हड्डी) ४. लघु (हलका,

जैसे केश) ५. शीत (ठण्डा, जैसे कान की लोल) ६. उष्ण (गरम, जैसे हृदय) ७. स्निग्ध (चिकना, जैसे आँख की कीकी) और ८. रूक्ष (रुखा, जैसे जीभ)। स्पर्शेन्द्रिय के आठ मूल विषय। ये आठ सचित्त, आठ अचित्त और आठ मिश्र—ये २४। ये चौवीस शुभ और चौवीस अशुभ—यों स्पर्शेन्द्रिय के उत्तर विषय ४८।

श्रोत्रेन्द्रिय के तीन, चक्षुरिन्द्रिय के पाँच, घ्राणेन्द्रिय के दो, रसेन्द्रिय के पाँच, और स्पर्शेन्द्रिय के आठ—यों सब मूल विषय २३ तथा श्रोत्रेन्द्रिय के छह, चक्षुरिन्द्रिय के तीस, घ्राणेन्द्रिय के छह, रसेन्द्रिय के तीस और स्पर्शेन्द्रिय के अड़तालीस—यों सब उत्तर विषय १२०।

विकार : आत्मा की विकृत (=अशुद्ध) अवस्था का परिणाम।

इन उक्त (कहे हुए) १२० विषयों पर राग तथा १२० ही विषयों पर द्वेष—यों विकार के २४० भेद।

ये पांच इन्द्रियों के २३ विषय पुद्गल द्रव्य में ही होते हैं; अन्य पांच द्रव्यों मे नहीं। इनमें से श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय छोड़कर शेष बीस विषयों का ही मुख्य रूप से पुद्गलों मे व्यवहार होता है। पुद्गलों के बादर स्कन्ध में ये बीसों विषय (बीस बोल) मिल सकते हैं। किन्तु पुद्गलों के सूक्ष्म स्कंध मे पहले के चार १ कर्कश, २ मृदु, ३ गुरु, ४ लघु —ये स्पर्श छोडकर शेष १६ विषय (१६ बोल) ही मिल सकते हैं। जिनमे बीसों विषय मिल सकते हैं, उन्हें रूपी अष्टस्पर्शी (आठफरसी) कहा जाता है। तथा जिनमे १६ विषय मिल सकते हैं, उन्हे रूपी चतुःस्पर्शी (चारफरसी) कहा जाता है। रूपी चतु स्पर्शी और अरूपी पांच द्रव्य, इन्द्रियो के विषय नहीं हैं। वे आत्मा और मन के विषय हैं।

१३ वाँ बोल : 'दश मिथ्यात्व'

मिथ्यात्व : देव, गुरु, धर्म के सम्बन्ध मे सम्यक्श्रद्धा का अभाव।

१. जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व . जीव तत्व न माने या जड से उत्पन्न माने, या स्थावर जीव न माने, तो मिथ्यात्व लगता है।

२. अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व : विश्व को भगवद्रूप माने, सूर्यादि को, मूर्ति-चित्रादि को भगवान माने, तो मिथ्यात्व लगता है।

धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व : जैन धर्म को धर्म, अर्थात् केवली भाषित शास्त्र को सुशास्त्र न माने तो, मिथ्यात्व लगता है।

४. अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व : अन्य धर्मों को धर्म अर्थात् अज्ञानी भाषित शास्त्र को सुशास्त्र माने, तो मिथ्यात्व लगता है।

५. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व : ५ महाव्रत, ५. समिति ३ गुप्ति धारी साधु को सुसाधु न माने तो, मिथ्यात्व लगाता है।

६. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व : महाव्रतादि रहित, स्त्री परिग्रह सहित, असाधु को साधु माने तो, मिथ्यात्व लगता है।

७ मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व : सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप को या सवर-निर्जरा को या दान शील तप भाव को ससार का मार्ग माने तो मिथ्यात्व लगता है।

८. **ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व :** मिथ्याश्रुत, मिथ्यादृष्टि, अव्रत और बाल तप को या आश्रव-बन्ध को मोक्ष का मार्ग माने, तो मिथ्यात्व लगता है।

९ **मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व :** अरिहन्त-सिद्ध को कर्ममुक्त सुदेव न माने या मोक्ष तत्व को न माने, तो मिथ्यात्व लगता है।

१०. **अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व :** कुदेवो को सुदेव माने, मोक्ष से पुनरागमन या अवतार माने तो, मिथ्यात्व लगता है।

पन्द्रहवाँ बोल : 'आठ आत्मा'

आत्मा : १ ज्ञानादि पर्यायो मे सतत गमन करने वाला। २ जीव, चैतन्य, प्राणी।

१. **द्रव्यात्मा :** भूत, भविष्यत् वर्त्तमान—तीनो कालवर्ती असख्य प्रदेशी, द्रव्य रूप आत्मा।

२. **कषायात्मा :** क्रोध, मान, माया, लोभ रूप, 'कषाय विशिष्ट' आत्मा।

३. **योगात्मा :** मन, वचन, काया रूप, 'योग विशिष्ट' आत्मा।

४. **उपयोगात्मा :** साकार (=पाँच ज्ञान तीन अज्ञान), अनाकार (=चार दर्शन) रूप, 'उपयोग विशिष्ट' आत्मा।

५. **ज्ञानात्मा :** मतिज्ञानादि रूप; 'ज्ञान विशिष्ट' आत्मा।

६. **दर्शनात्मा :** चक्षुदर्शनादि रूप, 'दर्शन विशिष्ट' आत्मा।

७. **चारित्रात्मा :** सामायिक चारित्र आदि रूप, 'चारित्र विशिष्ट' आत्मा।

८. वीर्य आत्मा : उत्थान (=कार्य करने के लिए उठ खडा होना) आदि रूप, 'वीर्य विशिष्ट' आत्मा।

पहले और तीसरे गुणस्थान मे ज्ञानात्मा और चारित्रात्मा छोडकर छह आत्माएं, दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान मे ज्ञानात्मा मिलाकर सात आत्माएँ तथा छठे गुणस्थान से दशवें गुणस्थान तक चारित्रात्मा मिलाकर आठो ही आत्माएँ होती हैं। ग्यारहवें, बारहवें, और तेरहवें मे कषायात्मा छोडकर सात आत्माएँ, चौदहवें मे योगात्मा भी छोडकर छह आत्माएँ तथा सिद्धो मे चारित्रात्मा और वीर्यात्मा भी छोडकर शेष चार आत्माएँ होती हैं।

सोलहवाँ बोल : 'चौवीस दण्डक'

दण्डक : १ व्याख्या करके समझाने के लिए विषय के बनाये गये विभाग। २. अपने किये गये कर्मों का जहाँ दण्ड भोगा जाता है, वे स्थान।

१. सात नारक का एक दण्डक। सात नरक के नाम— १ घर्मा (घम्मा), २ वंशा, ३. शैला, ४. अञ्जना, ५. रिष्टा (रिट्ठा), ६. मघा, ७. माघवती। सात नरक के गोत्र (गुणयुक्त नाम) १. रत्नप्रभा, २. शर्करा प्रभा, ३. वालुका प्रभा, ४. पक प्रभा, ५. धूम प्रभा, ६. तमःप्रभा, ७ तमः तम. प्रभा (महातमः प्रभा)।

२-११. दश भवन पतियो के दश दण्डक। दश भवन पतियो के नाम—१. असुरकुमार, २. नागकुमार, ३. सुवर्ण-कुमार, ४. विद्युत्कुमार, ५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. दिशाकुमार, ९. पवनकुमार, १०. स्तनित-कुमार।

१२-१६. पाँच स्थावरो के पाँच दण्डक। पाँच स्थावरों के नाम—१. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेजस्काय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय।

१७-१६. तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक। तीन विकलेन्द्रियो के नाम—१. द्वीन्द्रिय, २. त्रीन्द्रिय, ३. चतुरिन्द्रिय।

२०. तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक। २१. मनुष्य का एक दण्डक। २२. वानव्यन्तर देवता का एक दण्डक। २३. ज्योतिषी देवता का एक दण्डक। २४. वैमानिक देवता का एक दण्डक। इस प्रकार चौवीस दण्डक हुए। (१+१०+५+३+१+१+१+१+१=२४)

नारक : नरकगति वाले जीव, जो अधोलोक मे 'नरक' नामक स्थान मे रहते हैं।

भवनपति : अधोलोक के भवन नामक स्थान मे रहने वाले देवता, जो सदा कुमारो के समान कातिमान और क्रीड़ा मे तल्लीन रहते है।

विकलेन्द्रिय : जिनको पाँचो इन्द्रियाँ पूरी न मिली हो। कही-कही एकेन्द्रिय को भी विकलेन्द्रिय माना गया है।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय : तिर्यञ्च गति वाले ऐसे जीव, जिन्हे पाँचो इन्द्रियाँ पूरी मिली हो। जैसे—मछली, पशु, पक्षी, सर्प, नोलिया।

सत्रहवाँ बोल : 'छह लेश्या'

लेश्या : १. मन, वचन, काया रूप योग के अन्तर्गत कषायो को उभारने वाला द्रव्य विशेष २. आत्मा पर कर्मों को चिपकाने वाली।

१. **कृष्णलेश्या :** काजल के समान काले वर्ण वाली लेश्या। कृष्णलेश्यावाला, हिंसा झूठ आदि पाँच आश्रवो मे सदा लगा रहने वाला, मन वचन काया और पाँचो इन्द्रियो को विषय-विकारो मे फँसाये रखने वाला, निर्दय होकर छह कायो की तीव्र-परिणाम से हिंसा करने वाला, सबका शत्रु, गुण-दोष बिचारे बिना काम करने वाला और इस भव, परभव मे लगने वाले दुष्कर्मों के फल से न डरने वाला होता है।

२. **नीललेश्या :** नीलमणि के समान नीले वर्ण वाली लेश्या। नीललेश्या वाला, दूसरो के गुणो को सहन न करने वाला कदाग्रही, तप-रहित, कुविचार और कुआचार वाला, पापो मे निर्लज्ज और गृद्ध, तथा सद्बोध देने पर द्वेष करने वाला और झूठ बोलने वाला होता है।

३ **कापोतलेश्या :** कबूतर के समान भूरे वर्ण वाली लेश्या। कापोतलेश्या वाला, विचारने, बोलने और काम करने मे बाँका, बनावटी बाते आदि बनाकर अपने दोषो को ढकने वाला, द्वेषपूर्ण कठोर वचन बोलने वाला और दूसरो की उन्नति न सहने वाला होता है।

४. **तेजोलेश्या :** अग्नि के समान लाल वर्ण वाली लेश्या। तेजोलेश्या वाला, अभिमान, चपलता, असत्य भाषण और कौतुहल रहित, विनय करने वाला, पाँच इन्द्रियो और तीनो योगो को वश मे रखने वाला, तपस्वी, प्रियधर्मा, दृढधर्मा, पाप से भय खाने वाला और मोक्ष चाहने वाला होता है।

५. **पद्मलेश्या :** हल्दी के समान पीले वर्ण वाली लेश्या। पद्मलेश्या वाला, थोडी कषाय वाला, इन्द्रियो और योगो को वश मे रखने वाला, तपस्वी और थोडा बोलने वाला होता है।

६. शुक्ललेश्या : दूध के समान श्वेत वर्णवाली लेश्या। शुक्ल लेश्या वाला, शुक्ल ध्यान ध्याने वाला, प्रशातचित्त, आत्मा का दमन करने वाला और वीतराग होता है।

छहलेश्या का दृष्टान्त

यदि जामुन वृक्ष के फल खाने की इच्छा हो, तो कृष्णलेश्या वाला वृक्ष की जड काट कर खाना चाहेगा। नीललेश्या वाला बडी-बडी शाखाएँ काटकर खाना चाहेगा। कापोतलेश्या वाला छोटी-छटी शाखाएँ काट कर खाना चाहेगा। तेजोलेश्या वाला फलो के गुच्छे तोडकर खाना चाहेगा। पद्मलेश्या वाला गुच्छो से फल तोड कर खाना चाहेगा। शुक्ललेश्या वाला धरती पर पडे फल खाकर ही सतोष करेगा।

इन छह लेश्याओं मे पहले की तीन अशुभ व अधर्म लेश्याएँ हैं। इन लेश्याओ मे अशुभ गति का बध पडता है और मरते समय इन लेश्याओं के आने पर जीव अशुभ गति मे जाता है। छह लेश्याओ मे पिछली तीन लेश्याएँ शुभ व धर्म लेश्याएँ है। इन लेश्याओ मे शुभगति का बध पडता है और मरते समय इन लेश्याओ के आने पर जीव शुभ गति मे जाता है।

एकेन्द्रिय, भवनपति व वान व्यन्तर मे पहले की चार लेश्याएँ पाती हैं। विकलेन्द्रिय मे पहले की तीन पाती हैं। ज्योतिष मे तेजोलेश्या मिलती है। वैमानिक मे पिछली तीन मिलतीहैं। तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तथा मनुष्य में छहो मिलती हैं।

बीसवाँ बोल : 'षट् (छह) द्रव्यके ३० भेद'

द्रव्य : १. भूत भविष्य वर्त्तमान—तीनो काल मे रहने रहने वाला २. गुणो और पर्यायो का आधार।

१ धर्मास्तिकाय के पाँच भेद

अर्थात् धर्मास्तिकाय पाँच बोलों से (=द्वारो से) जाना जाता है। **१ द्रव्य से—एक द्रव्य। २. क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोक प्रमाण। ३ काल से—आदि अंत रहित। ४ भाव से—वर्ण रहित, गन्ध रहित, रस रहित और स्पर्श रहित, अर्थात् अरूपी है और असख्य प्रदेशी है। ५. गुण से गति गुण** (लक्षण से चलन गुण) **पानी में मछली का दृष्टान्त।** जैसे—गति करती हुई मछली को पानी, गति करने मे सहायक है, वैसे ही गति करते हुए जीव तथा पुद्गलों को, धर्मास्तिकाय गति मे सहायक है।

२. अधर्मास्तिकाय के पाँच भेद

अर्थात् अधर्मास्तिकाय पाँच बोलो से (=पाँच द्वारो से) जाना जाता है। **१. द्रव्य से—एक द्रव्य। २. क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोक प्रमाण। ३. काल से—आदि अंत रहित। ४. भाव से—वर्ण रहित, गंध रहित, रस रहित और स्पर्श रहित अर्थात् अरूपी है और असख्य प्रदेशी है। ५ गुण से - स्थिति गुण** (लक्षण से स्थिर गुण) **पथिक को छाया का दृष्टान्त।** जैसे ठहरते हुए पथिक को छाया ठहरने मे सहायक है, वैसे ही स्थिति करते हुए जीव तथा पुद्गलो को, अधर्मास्तिकाय स्थिति मे सहायक है।

३. आकाशास्तिकाय के पाँच भेद

अर्थात् आकाशास्तिकाय पाँच बोलो से जाना जाता है। **१. द्रव्य से—एक द्रव्य। २ क्षेत्र से—लोकालोक प्रमाण। ३. काल से—आदि अंत रहित। ४. भाव से—वर्ण रहित, गंध रहित, रस रहित और स्पर्श रहित अर्थात् अरूपी है और अनंत प्रदेशी है। ५. गुण से**—(लक्षण से) **स्थान देने का गुण, भींत मे खूंटी का दृष्टान्त।** जैसे—भीत मे स्थान बनाती हुई

खूटी को भीत स्थान देने मे सहायक है; वैसे ही धर्मास्तिकायादि पाचो द्रव्यो को, आकाशास्तिकाय स्थान देने मे सहायक है।

४. काल के पाँच भेद

१ द्रव्य से—अनंत द्रव्य। २. क्षेत्र से—अढ़ाई द्वीप प्रमाण। ३. काल से—आदि अंत रहित। ४. भाव से—वर्ण रहित, गंध रहित, रस रहित और स्पर्श रहित अर्थात् अरूपी है अप्रदेशी है। ५. गुण से—वर्तना गुण (लक्षण से—नई को जूनी बनावे, जूनी को नई बनावे) कपड़े को कैंची का दृष्टान्त। जैसे—परिवर्तन पाते हुए कपडे को कैंची परिवर्तन मे सहायक है, वैसे ही धर्मास्तिकायादि पाँचो द्रव्यो के परिवर्तन मे, काल सहायक है।

प्रदेश रहित होने से काल अस्तिकाय नही है।

५. जीवास्तिकाय के पाँच भेद

अर्थात् जीवास्तिकाय पाच बोलों से जाना जाता है। १. द्रव्य से—अनंत जीव द्रव्य। २ क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोक प्रमाण। ३. काल से—आदि अन्त रहित। ४ भाव से—वर्ण रहित, गंध रहित, रस रहित, और स्पर्श रहित, अर्थात् अरूपी है और अनंत प्रदेशी है। ५. गुण से—उपयोग गुण (लक्षण से चेतना गुण)। चन्द्रमा की कला का दृष्टान्त। जैसे—आवरण के कारण चन्द्रमा न्यूनाधिक प्रकाशित होता है, वैसे ही ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय के कारण आत्मा का उपयोग (=चेतना) गुण न्यूनाधिक प्रकट होता है।

६. पुद्गलास्तिकाय के पाँच भेद

अर्थात् पुद्गलास्तिकाय पाच बोलो से जाना जाता है। १ द्रव्य से—अनन्त द्रव्य। २. क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोकप्रमाण।

३. काल से—आदि अन्त रहित। ४. भाव से—वर्णवान्, गंधवान्, रसवान् और स्पर्शवान् है, अर्थात् रूपी है और अनन्त प्रदेशी है। ५. गुण से—पूरण गलन गुण (सयोग वियोग लक्षण)। **बादल का दृष्टान्त।** जैसे—बादल मिलते-बिखरते है, उसी प्रकार पुद्गल मिलते-बिखरते हैं।

इक्कीसवाँ बोल : 'दो राशि'

राशि : ढेर, समूह, वर्ग, पुञ्ज

१ जीव राशि और २. अजीव राशि

जीवराशि के ५६३ भेद

नारक : के चौदह। सात के अपर्याप्त और सात के पर्याप्त (७×२=१४)।

तिर्यञ्च : के अड़तालीस। जिसमे एकेन्द्रिय के बावीस—पृथ्वीकाय के चार—१ सूक्ष्म पृथ्वीकाय और २ बादर पृथ्वीकाय, दो के अपर्याप्त और दो के पर्याप्त (२×२=४)। इसी प्रकार अप्काय के चार ४, तेजस्काय के चार ४ और वायुकाय के चार ४, वनस्पतिकाय के छह—१. सूक्ष्म २. साधारण और ३. प्रत्येक, तीन के अपर्याप्त और तीन के पर्याप्त (३×२=६)। विकलेन्द्रिय के छह—१. द्वीन्द्रिय २. त्रीन्द्रिय ३. चतुरिन्द्रिय; तीन के अपर्याप्त और तीन के पर्याप्त। (३×२=६)। पञ्चेन्द्रिय के बीस—१ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४. उर: परिसर्प और ५. भुज परिसर्प, पाँच के सञ्ज्ञी और पाँच के असञ्ज्ञी दश (५×२=१०)—दश के अपर्याप्त और दश के पर्याप्त, वीस (१०×२=२०) ये तिर्यञ्च के अडतालीस (२२+६+२०=४८)।

एक करण दो योग के नव भंग—

जैसे '१२' मे पहला अङ्क एक है और उसके पीछे दो का अङ्क जुडा है, वैसे ही पहले एक एक करण लेकर उसके पीछे दो-दो योग जोडने से ९ भग बनते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं; मन से, वचन से; २ करूँगा नहीं, मन से, काया से; ३. करूँगा नही, वचन से, काया से। ४. कराऊँगा नहीं; मन से, वचन से; ५. कराऊँगा नहीं; मन से, काया से, ६. कराऊँगा नहीं; वचन से, काया से। ७. अनुमोदूँगा नहीं; मन से, वचन से; ८ अनुमोदूँगा नहीं; मन से, काया से; ९. अनुमोदूँगा नहीं, वचन से, काया से।

एक करण तीन योग के तीन भंग—

जैसे'१३' मे पहला अङ्क एक है और उसके पीछे तीन का अङ्क जुडा है, वैसे ही पहले एक-एक करण लेकर उसके पीछे तीन-तीन योग जोड़ने से ३ भग बनते है। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं; मनसे, वचनसे, काया से। २. कराऊँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से। ३. अनुमोदूँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से।

दो करण एक योग के नव भंग—

जैसे २१ मे पहला अङ्क दो है और उसके पीछे एक का अक जुडा है; वैसे ही पहले दो-दो करण लेकर उसके पीछे एक-एक योग जोड़ने से ९ भग बनते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा नही; मन से; २. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, वचन से; ३ करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; काया से।

४. करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; मन से; ५ करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; वचन से; ६. करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; काया से। ७. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं, मन से, ८ कराऊँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; वचन से, ९. कराऊँगा नहीं अनुमोदूँगा नहीं; काया से।

दो करण दो योग के नव भंग –

जैसे '२२' मे पहला अंक दो है और उसके पीछे भी दो का ही अंक जुडा है, वैसे ही पहले दो-दो करण लेकर उसके पीछे भी दो-दो योग जोड़ने से ९ भंग बनते हैं। वे इस प्रकार से हैं—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा । ; मन से, वचन से; २. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, मन से, काया से; ३. करूँगा नही, कराऊँगा नहीं, वचन से, काया से। ४. करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नही; मन से, वचन से; ५. करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; मन से, काया से; ६. करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; वचन से, काया से। ७. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; मन से, वचन से; ८. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; मन से, काया से; ९. कराऊँगा नहीं अनुमोदूँगा नहीं; वचन से, काया से।

दो करण तीन योग के तीन भंग—

जैसे '२३' मे पहला अंक दो है और उसके पीछे तीन का अंक जुडा है, वैसे ही पहले दो-दो करण लेकर उसके पीछे तीन-तीन योग जोड़ने से ३ भंग बनते है। वे इस प्रकार है—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से; २. करूँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से; ३. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से।

मनुष्य : के तीन सौ तीन। पन्द्रह कर्म भूमि, तीस अकर्म भूमि और छप्पन अन्तर्द्वीप, ये एक सौ एक (१५+३०+५६=१०१)। एक सौ एक गर्भज मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त, ये दो सौ दो हुए (१०१×२=२०२) और एक सौ एक सम्मूर्च्छिम मनुष्य के अपर्याप्त, ये तीन सौ तीन (२०२+१०१=३०३)।

देवताओं : के एक सौ अट्ठानवे। दश भवनपति, पन्द्रह परमाधार्मिक, सोलह वान-व्यन्तर, दश त्रिजृम्भक, दश ज्योतिषी, तीन किल्विषी, बारह देवलोक, नव लोकान्तिक, नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान—ये निन्यानवे, (१०+१५+१६+१० +१०+३+१२+९+९+५=९९) इनके अपर्याप्त और पर्याप्त—ये सब एक सौ अट्ठानवे (९९+९९=१९८)।

अजीवराशि के ५६० भेद

अरूपी अजीव के तीस भेद—धर्मास्तिकाय के तीन भेद १ स्कध, २. स्कध देश, ३. स्कध प्रदेश। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के तीन-तीन भेद—ये नव तथा दशवाँ काल। (३+३+१=१०)। एव धर्मास्तिकाय के पाँच भेद—१. द्रव्य, २. क्षेत्र, ३. काल, ४ भाव और ५. गुण। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के पाँच, आकाशास्तिकाय के पाँच और काल के पाँच—यो बीस भेद और हुए (५×४=२०)। इस प्रकार सब तीस भेद (१०+२०=३०) रूपी अजीव के पाँच सौ तीस भेद—वर्ण के पाँच—१. काला, २. नीला, ३ लाल, ४. पीला और ५. सफेद। एक-एक के बीस-बीस भेद, यो वर्ण के सौ भेद हुए (५×२०=१००)। गन्ध के दो—१ सुरभिगन्ध और २ दुरभिगन्ध। एक-एक के

तेवीस-तेवीस भेद, यो गन्ध के छयालीस भेद हुए (२×२३=४६)। रस के पाँच—१. तीखा, २. कडवा, ३ कषेला, ४. खट्टा, ५ मीठा। एक-एक के बीस-बीस भेद—यो रस के सौ भेद हुए (५×२०=१००)। **स्पर्श** के आठ—१ खरदरा, २ सुहाला, ३. भारी, ४. हल्का, ५ शीत, ६. उष्ण, ७ चिकना, ८. रूखा। एक-एक के तेवीस-तेवीस भेद—यो स्पर्श के एक सौ चौरासी भेद हुए (८×२३=१८४)। **सस्थान** के छह—१. परिमण्डल (चूडी या गेद के समान खाली गोल), २. वृत्त (थाली या लड्डू के समान भरा हुआ गोल) ३. त्र्यस (तिकौना), ४ चतुरस्र (चौकौन), ५. आयत (लम्बा)। एक-एक के बीस-बीस भेद—यो सस्थान के सौ भेद हुए (५×२०=१००)।

२४ वाँ बोल : 'करण-योग के ४९ भंग'

भग—विकल्प, भेद, प्रकार।

एक करण एक योग के नव भंग—

जैसे '११' मे पहला अङ्क एक है और उसके पीछे भी एक का ही अङ्क जुडा है, वैसे ही पहले एक-एक करण लेकर उसके पीछे भी एक-एक योग जोडने से ९ भग बनते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं, मन से; २. करूँगा नही, वचन से; ३. करूँगा नहीं, काया से। ४. कराऊँगा नहीं, मन से, ५. कराऊँगा नही, वचन से; ६. कराऊँगा नहीं, काया से। ७. अनुमोदूंगा नहीं, मन से; ८ अनुमोदूंगा नहीं, वचन से; ९. अनुमोदूंगा नहीं, काया से।

एक करण दो योग के नव भंग—

जैसे '१२' मे पहला अङ्क एक है और उसके पीछे दो का अङ्क जुडा है, वैसे ही पहले एक एक करण लेकर उसके पीछे दो-दो योग जोड़ने से ९ भग वनते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नही; मन से, वचन से; २ करूँगा नहीं; मन से, काया से; ३. करूँगा नही, वचन से, काया से। ४. कराऊँगा नहीं; मन से, वचन से; ५. कराऊँगा नहीं; मन से, काया से; ६. कराऊँगा नही; वचन से, काया से। ७. अनुमोदूंगा नही; मन से, वचन से; ८. अनुमोदूंगा नहीं; मन से, काया से; ९. अनुमोदूंगा नहीं, वचन से, काया से।

एक करण तीन योग के तीन भंग—

जैसे'१३' मे पहला अङ्क एक है और उसके पीछे तीन का अङ्क जुड़ा है, वैसे ही पहले एक-एक करण लेकर उसके पीछे तीन-तीन योग जोडने से ३ भग वनते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं; मनसे, वचनसे, काया से। २. कराऊँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से। ३. अनुमोदूंगा नहीं; मन से, वचन से, काया से।

दो करण एक योग के नव भंग—

जैसे २१ मे पहला अङ्क दो है और उसके पीछे एक का अक जुडा है; वैसे ही पहले दो-दो करण लेकर उसके पीछे एक-एक योग जोड़ने से ९ भग वनते है। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; मन से; २. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; वचन से; ३ करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; काया से।

४. करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से; ५ करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; वचन से; ६. करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; काया से। ७. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं, मन से, ८ कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; वचन से, ९. कराऊँगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं, काया से।

दो करण दो योग के नव भंग –

जैसे '२२' में पहला अंक दो है और उसके पीछे भी दो का ही अंक जुडा है; वैसे ही पहले दो-दो करण लेकर उसके पीछे भी दो-दो योग जोड़ने से ९ भंग बनते हैं। वे इस प्रकार से है—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा । ; मन से, वचन से; २. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; मन से, काया से; ३. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; वचन से, काया से। ४. करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, वचन से; ५. करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, काया से; ६. करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; वचन से, काया से। ७. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, वचन से, ८. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं, मन से, काया से; ९. कराऊँगा नहीं अनुमोदूंगा नहीं; वचन से, काया से।

दो करण तीन योग के तीन भंग –

जैसे '२३' मे पहला अंक दो है और उसके पीछे तीन का अंक जुडा है, वैसे ही पहले दो-दो करण लेकर उसके पीछे तीन-तीन योग जोडने से ३ भंग बनते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; मन से, वचन से, काया से, २. करूँगा नहीं, अनुमोदूंगा नही; मन से, वचन से, काया से; ३. कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, वचन से, काया से।

तीन करण एक योग के तीन भंग—

जैसे '३१' मे पहला अक तीन है और उसके पीछे एक का अक जुडा है, वैसे ही पहले तीन-तीन करण लेकर उसके पीछे एक-एक योग जोडने से ३ भग बनते है। वे इस प्रकार है—

१. करूंगा नहीं, कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नही, मन से, २. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नही, वचन से; ३. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं, काया से।

तीन करण दो योग के तीन भंग—

जैसे ३२ मे पहला तीन का अक है और उसके पीछे दो का अक जुडा है; वैसे ही पहले तीन करण लेकर पीछे दो योग जोडने से ३ भंग बनते है वे इस प्रकार है—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, वचन से, २. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, काया से, ३ करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं; अनुमोदूंगा नहीं; वचन से, काया से।

तीन करण तीन योग का एक भंग—

जैसे ३३ मे पहले तीन का अक है और उसके पीछे भी तीन का ही अक जुडा है, वैसे ही पहले तीन करण लेकर पीछे तीन योग जोडने से १ भग बनता है। वह इस प्रकार है—

१. करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, अनुमोदूंगा नहीं; मन से, वचन से, काया से।

एक करण एक योग से भंग ९, एक करण दो योग से भग ९, एक करण तीन योग से भंग तीन, दो करण एक योग से भग ९, दो करण दो योग से भंग ९, दो करण तीन योग से भंग ३, तीन करण एक योग से भंग ३, तीन करण दो योग से भग तीन, तीन करण तीन योग से भग १—यों सब भग ४९ हुए। (९+९+३+९+९+३+३+३+१=४९)

यत्र

अंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३	९ अक
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३	
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३	
भंग	९	९	३	९	९	३	३	३	१	४९ भग

२५ वाँ बोल : 'पाँच चारित्र'

चारित्र—१. चारित्र—मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाला विरति परिणाम २ सम्पूर्ण सावद्ययोगो का (=अट्ठारह पापो का) प्रत्याख्यान ३. जिससे कर्म आते रुके ४ कही-कहीं जिससे सचित कर्मों का क्षय हो, उसे भी चारित्र माना गया है।

१. **सामायिक चारित्र** चार महाव्रत (१ सर्व प्राणातिपात विरमण २ सर्व मृषावाद विरमण ३ सर्व अदत्तादान विरमण ४ सर्व बहिद्धा-दान विरमण) वाला चारित्र।

२. **छेदोपस्थापनीय चारित्र**—जिसमे पहले की चार महाव्रत वाली दीक्षा पर्याय छेदकर (काट कर) पाँच महाव्रत वाली दीक्षा दी जाती है, ऐसा चारित्र।

३ परिहार विशुद्ध चारित्र—जिसमे परिहार नामक तप करके आत्मा को विशेष शुद्ध बनाई जाती है, ऐसा चारित्र ।

४. सूक्ष्म संपराय चारित्र—जहाँ केवल सूक्ष्म लोभ ही उदय मे रहता है, ऐसे दशवे गुणस्थान मे होने वाला चारित्र ।

५. यथा-ख्यात चारित्र—जहाँ मोहनीय कर्म उपशात या क्षीण हो जाता है, ऐसे ग्यारहवे से १४ वे गुणस्थान तक मे होने वाला चारित्र ।

अर्थ, भावार्थ और प्रासंगिक टिप्पण सहित

पच्चीस बोल का स्तोक समाप्त

* णमो णाणस्स *

५ समिति ३ गुप्ति का स्तोक (थोकड़ा) सार्थ

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २४ चौबीसवे अध्ययन मे पाँच समिति-तीन गुप्ति का अधिकार चला है। उस आधार से पांच समिति-तीन गुप्ति का स्तोक कहते हैं।

पाँच समिति के नाम—१. ईर्या समिति २. भाषा समिति ३. एषणा समिति ४. आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति, ५. उच्चार-प्रश्रवण, खेल-सिंघाण-जल-परिस्थापनिका समिति।

तीन गुप्ति के नाम—१. मनो गुप्ति, २. वचन गुप्ति, ३. काय गुप्ति।

इन पाँच समिति-तीन गुप्ति को '**प्रवचन माता**' बताई गई है। क्योकि इन के पालन के उपदेश के लिए ही 'द्वादशागी वाणी' (या 'चौदह पूर्व') तीर्थंकरो ने प्रकट की है।

कही पाँच समिति-तीन गुप्ति को '**द्वादशांगी वाणी**' (**या चौदह पूर्वो**) **का सार** वताया गया है। क्योकि द्वादशाग (या चौदह पूर्वो के ज्ञान का फल यही है कि 'जीव' पाँच समिति-तीन गुप्ति का पूर्णतया सम्यक् पालन करे।

भूतकाल मे अनन्त भव्य जीव द्वादशागी मे से केवल पांच समिति-तीन गुप्ति ही जानकर तथा उसकी पूर्णतया सम्यक् पालना

करके मोक्ष चले गये हैं और भविष्य काल मे भी इसी प्रकार अनन्त जीव मोक्ष मे चले जायेंगे।

इसलिए भव्य जीवो को 'पाँच समिति-तीन गुप्ति' के स्वरूप आदि को भली भाँति अवश्य जानना चाहिए और उसकी पूर्णतया सम्यक् आराधना करनी चाहिए।

अथ समिति का स्वरूप

समिति : विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करना अर्थात् प्राणातिपात आदि पापो से बचने के लिए, आत्मा के उत्तम परिणामो से मन वचन काया की सम्यक् प्रवृत्ति करना।

'समिति मे सम्यक् प्रवृत्ति करना, मुख्य माना है।' अतएव 'समिति' की यह परिभाषा की है। अन्यथा मन, वचन, काया की असम्यक् प्रवृत्ति रोकना और कायोत्सर्ग, मौन, उपवास आदि के द्वारा 'सम्यक्-मिथ्या' दोनो प्रवृत्तियाँ रोकना भी 'समिति' है।

अथ पहली ईर्यासमिति का स्वरूप

ईर्या समिति : विवेकपूर्वक चलना अर्थात् 'किसी जीव की विराधना न हो', इसका उपयोग रख कर चलना।

ईर्या समिति के चार कारण हैं—१. आलंबन २. काल ३. मार्ग और ४. यतना।

१ आलंबन से – १. ज्ञान २. दर्शन और ३. चारित्र के लिये चले। अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रक्षा के लिए पुष्टि के लिए और वृद्धि के लिए ही चले, किन्तु अकारण या

इनसें भिन्न पर्यटन, इन्द्रियपोषरण आदि किसी भी प्रयोजन के लिए एक पैर भी ऊपर न उठावे।

२ काल से रात्रि को वर्जकर दिन को चले। ईर्या समिति का काल तीर्थंकरो ने दिन का ही, इसलिए बताया है कि दिन मे प्रकाश के कारण जीवो को देखते हुए और उनकी रक्षा करते हुए चलना सम्भव है। रात्रि को अन्धकार के कारण जीवो का दीखना और उनकी रक्षा करना सम्भव नही, इसलिए तीर्थंकरो ने रात्रि को चलने का निषेध किया है। उच्चार-प्रश्रवण आदि परठ्ठवना हो, शय्यातर (स्थानदाता) ने स्थान छोड देने के लिए कहा हो,या शीलभंग का भय, आदि हो, तो इन अत्यन्त आवश्यक प्रयोजनो से रात्रि मे भी मर्यादित गमन किया जा सकता है।

३. मार्ग से उत्पथ को छोड़कर सुपथ मे चले। ईर्या समिति का मार्ग तीर्थंकरो ने सुपथ ही इसलिए बताया है कि सुपथ मे पृथ्वीकाय (=मिट्टी) प्राय अचित्त (=निर्जीव) रहती है, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का प्राय अभाव रहता है, जिससे १. सयम विराधना नही होती तथा सुपथ मे काँटे, कँकर, पत्थर नही होते, जिससे २ आत्मविराधना (अपने शरीर की विराधना) भी नही होती। उत्पथ मे १. सयम विराधना और २ आत्म विराधना दोनो की सम्भावना रहती है, अतः तीर्थंकरो ने उत्पथ में चलने का निषेध किया है।

यतना से चार प्रकार की यतना से चले। १. द्रव्य यतना में-आँखो से छह काय के जीव तथा काँटे आदि अजीव पदार्थों को देखकर चले। २ क्षेत्र यतना में-शरीर प्रमाण (या युग प्रमाण, धूसरा प्रमाण) अर्थात् चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि देखता हुआ चले। ३. कालयतना में-जब तक गमनागमन करे

तब तक। ४ भाव यतना मे-इन्द्रियों के पाँच विषय—१ शब्द, २. रूप, ३ गंध, ४. रस, ५. स्पर्श तथा स्वाध्याय के पाँच भेद—१. वाचना, २ पृच्छना, ३ परिवर्तना, ४ अनुप्रेक्षा, ५. धर्मकथा, इन दश बोलों को वर्जकर उपयोग सहित चले अर्थात् शब्दश्रवण, वाचनाग्रहण आदि न करता हुआ चले।

ये दश ही बोल ईर्या समिति का उपघात (=नाश) करने वाले है, इसलिए तीर्थंकरो ने ईर्या समिति मे इनका निपेध किया है। ईर्या समिति मे साधु श्रावक को तन्मूर्ति (=तम्मुत्ति) और तत्पुरस्कार (तप्पुरक्कारे) होकर चलना चाहिए अर्थात् अपनी काया और मन के उपयोग को ईर्या मे ही लगाते हुए चलना चाहिये।

दूसरी भाषा समिति का स्वरूप

भाषा समिति : विवेकपूर्वक बोलना अर्थात् 'किसी जीव की विराधना न हो तथा असत्य या मिश्र भाषा का दोष न लगे', इसका उपयोग रखकर बोलना।

भाषा समिति के चार भेद—१. द्रव्य २. क्षेत्र ३. काल और ४. भाव।

१. द्रव्य से—असत्य और मिश्र भाषा सर्वथा न बोले। तथा सत्य और व्यवहार भाषा भी १. सावद्य (पाप सहित), २. सक्रिय (और क्रिया सहित, जैसे—) ३. कर्कश (कोमलता रहित), ४. कठोर (स्नेह रहित), ५. निश्चयात्मक (सन्देहयुक्त विषय मे तथा निश्चययुक्त विषय में सन्देहात्मक), ६. छेद करी (छिद्र डालने वाली) ७. भेदकरी (भेद डालने वाली)

तथा ८. क्लेशकरी (वचन-युद्ध तथा मानसिक खेद पैदा करने वाली) **इन आठ प्रकार को न बोले।**

२. क्षेत्र से—मार्ग मे चलता हुआ न बोले। 'मार्ग में चलते हुए बोलने से ईर्यासमिति पूर्वक (नीचे जीव-अजीव देखकर) चलने मे सम्यक् उपयोग नही रहता।' इसलिए तीर्थंकरो ने मार्ग मे चलते हुए बोलने का निषेध किया है।

३. काल से—एक प्रहर रात्रि हो जाने के बाद सूर्योदय तक ऊँचे स्वर से (जोर से) न बोले। ऊँचे स्वर से बोलने से दूसरो की निद्रा मे बाधा पडती है तथा ऊँचे स्वर से कुछ लोग प्रात कालादि मे शीघ्र जागृत होकर जीव-हिंसादि अट्ठारह पापो मे लग जाते है। इसलिए तीर्थंकरो ने एक प्रहर रात्रि हो जाने के बाद सूर्योदय तक ऊँचे स्वर से बोलने का निषेध किया है।

४. भाव से—१ क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ, ५. हास्य, ६. भय, ७. मौखर्य (=वाचालता) **और ८. विकथा** (=स्त्रीकथा आदि) **इन आठ बोलों को वर्जकर राग-द्वेष रहित तथा उपयोग सहित भाषा बोले।** क्योकि क्रोध आदि मे आ जाने पर जीव सत्य और व्यवहार-भाषा का ध्यान नही रख पाता तथा असत्य और मिश्र भाषा बोल जाता है—जैसे **१. क्रोध मे** पिता पुत्र को कह देता है कि 'तूँ मेरा पुत्र नही है'। **२. मान मे** गुणहीन मनुष्य भी कह देता है कि 'गुणो मे मेरी समता करने वाला कोई नही है।' **३. माया मे** पुरुष, अपरिचित स्थान पर अपने पुत्रादिको के विषय मे कह देता है कि 'न तो मेरा यह पुत्र है और न मैं इसका पिता हूँ। **४. लोभ में** वणिकादि, पराई वस्तु को भी अपनी कह देते है। **५. हास्य में**

मनुष्य, मूर्ख को भी पण्डित कह देता है। ६ **भय में**, मनुष्य अकार्य करके भी कह देता है कि—'मैंने वह अकार्य नही किया।' ७. **मौखर्य मे** मनुष्य, सत्पुरुषो की भी निन्दा कर देता है। ८. **विकथा मे** मनुष्य, कुरूप स्त्री को भी अद्वितीय सुन्दरी कह देता है। इसलिए तीर्थंकरो ने भाषा समिति मे इन क्रोधादि आठ वोलो का निषेध किया है।

तीसरी एषणा समिति का स्वरूप

एषणा समिति : विवेकपूर्वक आहार लाना तथा करना अर्थात् किसी जीव की विराधना न हो और आधा-कर्म आदि ४७ दोषो मे कोई दोष न लगे, इसका उपयोग रखकर **आहार लाना तथा करना।**

एषणा समिति के चार भेद—१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य से—उद्गम के सोलह दोष, उत्पादन के सोलह दोष और एषणा के दस दोष, यो बयालीस (१६+१६+१०=४२) दोषो को टालकर १. आहार २. उपधि (वस्त्र) ३. शय्या (वसति) और ४. पात्र आदि की गवेषणा करें। २. क्षेत्र से—दो कोस के उपरान्त ले जाकर (या लाया हुआ) अशनादि न भोगे। ३. काल से प्रथम प्रहर मे लाया हुआ अशनादि चौथे प्रहर मे न भोगे। आहार को अधिक क्षेत्र तक तथा अधिक काल तक अपने पास रखने से और भोगने से साधु मे १ आहार के प्रति परिग्रह वृत्ति और २ देह के प्रति ममता वढती है तथा आहार को अधिक क्षेत्र तक ले जाने मे और अधिक काल तक रक्षण करने मे ३ ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना में मन्दता आती है। इत्यादि कारणो से तीर्थंकरो ने आहार को दो कोस उपरात ले जाकर तथा

प्रथम प्रहर का चौथे प्रहर तक रख कर भोगने का निषेध किया है। ४ भाव से—मण्डल के (=परिभोग के) ५. पाँच दोष वर्जकर, राग द्वेष रहित तथा उपयोग सहित अशनादि भोगे।

आहार के सैंतालीस ४७ दोष और उनकी परिभाषाएँ

उद्गम के १६ सोलह दोष की मूल गाथाएँ

आहाकम्मु[1]-द्देसिय[2], पूइकम्मे[3] य मीसजाए[4] य।
ठवणा[5] पाहुडियाए[6], पाओअर[7] कीय[8] पामिच्चे[9] ॥१॥
परियट्टिए[10] अभिहडे[11], उब्भिन्ने[12] मालोहडे[13] इ य।
अच्छिज्जे[14] अनिसिट्ठे[15], अज्झोयरए[16] य सोलसमे ॥२॥

आधाकर्म[1] औद्देशिक[2], पूतिकर्म[3] मिश्रजात[4] च।
स्थापना[5] प्राभृतिका[6], प्रादुष्करण[7], क्रीत[8] प्रामृत्य[9] ॥१॥
परिवर्तित[10] अभिहृत[11], उद्भिन्न[12] मालापहृत च[13]।
आच्छिद्य[14] अनिसृष्ट[15] अध्यवपूरक[16] सोलहवाँ ॥२॥

उद्गम दोष : साधु आहार आदि ग्रहण करे, उससे पहले ही, मुख्यतया गृहस्थ की ओर से साधु के लिए आहार बनाने देने में लगने वाले दोष।

१. **आहाकम्म (आधाकर्म)** : जो आहार आदि ले रहा है, उस साधु द्वारा अपने लिए बनाया हुआ आहार आदि लेना (और भोगना)।

२. उद्देसिय (औद्देशिक) : अन्य साधु के लिए बनाया हुआ आहारादि लेना।

३. **पूइकम्मे** (पूतिकर्म) : शुद्ध आहारादि मे सहस्र घर के अन्तर से भी आधाकर्मी अशुद्ध आहारादि का अश मात्र भी मिला दिया हो, उसे लेना ।

४. **मीसजाए** (मिश्रजात) : गृहस्थ के लिए और (साधु के लिए) सम्मिलित बनाया हुआ आहारादि लेना ।

'आधाकर्म' आदि इन चारो आहार मे साधु के लिए आरम्भ होता है, इसलिए ये चारो आहार आदि सदोष हैं ।

५. **ठवणा** (स्थापना) : साधु के लिए रक्खा हुआ (बालक, भिखारी आदि के मागने पर भी जो उन्हें न दिया जाय, वैसा) आहारादि लेना ।

इस 'स्थापित' आहार से बालक आदि को अन्तराय पडती है, इसलिए यह आहार सदोष है ।

६. **पाहुडिया** (प्राभृतिका) : 'साधुओं को भी जीमनवार का आहारादि दान में दिया जा सके', इसलिए गृहस्थ ने जिस जीमनवार को समय से पहले या पीछे किया हो, उस जीमनवार का आहारादि लेना ।

इस आहार की निष्पत्ति में साधु भी निमित्त बना, इसलिए यह आहार सदोप है ।

७. **पाओअर** (प्रादुष्करण) : अयतना से कपाट आदि खोलकर या दीपक आदि जलाकर प्रकाश करके दिया जाता हुआ आहार आदि लेना ।

अयतना तथा अग्निविराधना आदि के कारण यह आहार सदोष है ।

८. **कीय** (क्रीत) : साधु के लिए खरीदा हुआ आहार आदि लेना ।

९. पामिच्चे (प्रामृत्य) : साधु के लिए उधार लिया हुआ आहार आदि लेना।

१०. परियट्टिए (परिवर्तित) : साधु के लिए (कोई वस्तु देकर उसके) बदले मे लिया हुआ आहार आदि लेना।

'क्रीतादि' इन तीनो आहारो को लेने से भविष्य मे उस दाता की तथा अन्य दाता की दान भावना मन्द पड सकती है और साधु की लालसा तीव्र हो सकती है, इसलिए ये तीनों आहार सदोष हैं।

११. अभिहडे (अभिहृत) : साधु के लिए तीन घर से अधिक अतर से (दूरी से) सामने लाया हुआ आहार आदि लेना।

'आहार कहाँ से लाया जा रहा है?' यदि यह दिखाई न देता हो, तो तीन घर की दूरी से भी आहार लेना वर्ज्य है।

'इस अभिहृत' आहार मे भी अनन्तर उक्त दोष सभव हैं तथा 'साधु के लिए गृहस्थ-मार्ग मे अयतना से चले' यह दोष भी सभव है; अतः यह आहार सदोष है।

१२. उब्भिन्ने (उद्भिन्न) : लेपन ढक्कन आदि अयतना से खोल कर दिया हुआ (या पीछे जिसका लेपन ढक्कन आदि अयतना से लगाया जाय, वैसा) आहार आदि लेना।

पृथ्वीकाय आदि की विराधना के कारण, यह आहार सदोष है।

१३. मालोहडे (मालापहृत) : ऊँचे माले आदि विषम स्थान से कठिनता से निकाला हुआ आहार आदि लेना।

ऐसा 'मालापहृत' आहार देता हुआ दाता कभी गिर कर

अपग हो सकता है, तथा उसके गिरने से त्रस-स्थावर जीवो की विराधना हो सकती है; अतः यह आहार सदोष है।

१४. **अच्छिज्जे (आच्छेद्य)** : साधु के लिए निर्बल से **छीना हुआ** आहार आदि लेना।

निर्बल को दुःख पहुँचने के कारण यह आहार सदोष है।

१५. **अणिसिट्ठे (अनिःसृष्ठ)** : जिस आहार आदि के अनेक स्वामी हो, उसके अन्य स्वामियो की **स्वीकृति न हुई** हो, या उसका **बँटवारा न हुआ** हो, ऐसी दशा मे उस आहार आदि को लेना।

अन्य स्वामियो की चोरी के कारण यह आहार सदोष है।

१६. **अज्झोयरए (अध्यवपूरक)** : पहले बनते हुए जिस आहारादि मे, साधुओ के लिए **नई सामग्री मिलाई हो** (ऊरी हो), वैसा आहार आदि लेना।

यह 'अध्यवपूरक' आहार भी आधाकर्मादि के समान आरभ वाला होने से सदोष है।

उत्पादना के १६ सोलह दोष की मूल गाथाएँ

धाई[1] दूई[2] निमित्ते[3] आजीव[4] वणीमगे[5] तिगिच्छा[6] य।
कोहे[7] माणे[8] माया[9], लोभे[10] य हवंति दस एए॥
पुव्विं-पच्छा-संथव[11], विज्जा[12] मंत[13] चुण्ण[14] जोगे[15] य।
उप्पायणाइं दोसा, सोलसमे मूलकम्मे[16] य॥

धात्री[1] दूति[2] निमित्त,[3] आजीव[4] वनीपक[5] चिकित्सा[6] च।
क्रोध[7] मान,[8] माया,[9] लोभ[10] ये सब हुए दश ॥१॥
पहले पीछे सस्तव[11], विद्या[12] मत्र[13] चूर्ण[14] योग[15] च।
सोलहवा मूलकर्म[16] ये सब है उत्पादना दोष ॥२॥

उत्पादना दोष : आहार आदि **ग्रहण** करते समय मुख्यतया साधु की ओर से साधु को लगने वाले दोष ।

१. धाई (धात्री) : धाय का काम करके अर्थात् बच्चो को खिलाने पिलाने आदि का काम करके आहार आदि लेना ।

२. दूई (दूति) : दूति का काम करने अर्थात् सन्देश को पहुँचाने-लाने का काम करके आहार आदि लेना ।

धाय आदि काम करने से १. साधु के भिक्षुकपन मे और २ साधुत्व मे कमी आती है तथा ३. उतने समय तक ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना मे बाधा पडती है, अत ये दोनो आहार सदोष है ।

३. निमित्ते (निमित्त) : बाह्य **निमित्तो से** १ भूत २, भविष्य ३. वर्त्तमान काल के १ लाभ २. अलाभ ३ सुख ४. दुख ५ जीवन ६ मरण को बतलाकर या **निमित्त सिखलाकर** आहार आदि लेना ।

लाभादि बता कर आहार लेने मे १ भिक्षुकपन मे कमी आती है, २ ससार प्रवृत्ति बढती है, ३ जीव विराधना सभव है और ४ बताया हुआ निमित्त मिथ्या होने पर गृहस्थ को रोषादि सभव है, इसलिए यह आहार सदोष है ।

४. आजीव : अपने जाति कुल सम्बन्ध आदि को प्रकट करके आहार आदि लेना ।

इसमे भी भिक्षुकपन मे कमी आती है ।

५ वणीमगे (वनीपक) : रक-भिखारी के समान काया से **दीनता** प्रकट करके, वचन से दीन भाषा बोल कर तथा मन मे दीनता लाकर आहार आदि लेना ।

साधु 'भिक्षु' अवश्य है, पर 'दीन' नही। अत: दीनता करके आहार लेना दोष है।

६. तिगिच्छे (चिकित्सा) चिकित्सा करके आहार आदि लेना।

चिकित्सा करने से भी १ भिक्षुकपन मे कमी आती है २ जीव विराधना सभव है तथा ३. नीरोग न होने पर गृहस्थ को रोष सभव है, अतः यह आहार सदोष है।

७ कोहे (क्रोध) : क्रोध करके गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखला कर आहार लेना।

८. माणे (मान) : मान करके गृहस्थ को अपनी लब्धि आदि दिखला कर, आहार आदि लेना।

९. माया : कपट करके अन्य रूप वेश आदि दिखलाकर आहार आदि लेना।

१० लोहे (लोभ) : लोभ करके मर्यादा से अधिक तथा श्रेष्ठ आहार आदि लेना।

कषाय करके आहार लेने के कारण, ये चारो आहार सदोष हैं।

११. पुव्विं-पच्छा-संथव (पूर्व पश्चात् संस्तव) : अधिक आहार प्राप्ति के लिए दाता की दान से पहले या पीछे भाट के समान प्रशसा करना।

इससे भिक्षुकपन मे कमी आने से, यह आहार सदोष है।

१२ विज्जा (विद्या) : जिसको अधिष्ठात्री देवी हो, या जो साधना से सिद्ध हो, उसका प्रयोग करके या उसे सिखला करके आहार आदि लेना ।

१३. मंते (मन्त्र) : जिसका अधिष्ठाता देव हो या जो बिना साधना अक्षर विन्यास मात्र से सिद्ध हो, उसका प्रयोग करके या उसे सिखला करके आहार आदि लेना ।

१४ चुण्ण (चूर्ण) : अदृश्य होना, मोहित करना, स्तंभित करना आदि बातें जिससे हो सके, ऐसे अञ्जनादि का प्रयोग करके या सिखला करके आहार आदि लेना ।

१५ जोग (योग) : जिसका लेप करने पर, आकाश में उडना, जल पर चलना, आदि बाते हो सके, ऐसे पदार्थ का प्रयोग करके या सिखला कर के आहार आदि लेना ।

१६. मूलकम्मे (मूलकर्म) : गर्भ स्तंभन, गर्भाधान, गर्भपात आदि बाते जिससे हो सके, ऐसी जडी बूटी, या सामान्य जडी बूंटी दिखला करके आहार आदि लेना ।

इन 'विद्या' आदि पाचो मे भी निमित्त के समान दोष संभव होने से, ये पाचो आहार भी सदोष है ।

एषणा के १० दश दोष की गाथा

संकिय[1] मक्खिय[2] निक्खित्त[3], पिहिय[4] साहरिय[5] [6]दायगुम्मीसे[7]।
अपरिणय[8] लित्त[9] छड्डिय,[10] एसण दोसा दस हवंति ॥१॥
शंकित[1] भ्रक्षित[2] निक्षिप्त[3], पिहित[4] संहृत[5] दायको[6] न्मिश्र।[7]।
अपरिणत[8] लिप्त[9] छर्दित[10] दश है एषणा दोष ॥१॥

एषणा दोष : साधु और गृहस्थ दोनो की ओर से **गौचरी** मे लगाने वाले दोष।

१ **संकिय (शंकित) :** 'यह आहार आदि प्रासुक-एषणीय है या नही ?' ऐसी **शंकावाला** आहार आदि (जब तक शका दूर न हो, उससे पहले) लेना।

'शकित' आहार 'अप्रासुक-अनेषणीय' भी हो सकता है; इसलिए यह आहार सदोष है।

२. **मक्खिय (म्रक्षित) :** १. दाता २ दान के पात्र या ३ दान के द्रव्य, सचित पृथ्वी, पानी, अग्नि या वनस्पति से सघट्ट युक्त (स्पर्श युक्त, छुए हुए हो) तो १ उस दाता से या २ उस दान के पात्र से या ३. वे द्रव्य लेना।

३. **निक्खिय (निक्षिप्त) :** १ या दान के पात्र या दान के द्रव्य, सचित पृथ्वी आदि पर हो, तो १. उस दाता से या २. उस दान के पात्र से या ३ वे द्रव्य लेना।

४. **पिहिय (पिहित) :** १. दाता या २. दान के पात्र या ३ दान के द्रव्य के ऊपर सचित्त पृथ्वी आदि हो, तो १ उस दाता से या २ उस दान पात्र से या ३. वे द्रव्य लेना।

५. **साहरिय (साहृत) :** १. दाता सचित्त पृथ्वी आदि के सघट्ट को दूर करके या सचित्त पृथ्वी आदि से उतर कर या सचित्त पृथ्वी आदि को उतार कर दान दे, या दान के पात्र या दान के द्रव्यो को संघट्ट से हटाकर या सचित्त पृथ्वी आदि पर से उठाकर या उन पर रहे सचित्त पृथ्वी आदि को उतार कर दे तो आहार लेना।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, और वायुकाय की विराधना के कारण ये म्रक्षितादि चारो आहार सदोष हैं।

६. दायग (दायक): जो दान देने योग्य न हो, उनसे आहार लेना, जैसे—घर मे अकेला अबोध बालक हो, उससे आहार लेना या अन्धे, लूले, लगडे अन्य की सहायता के बिना दान दें, उनसे आहार लेना या, छह मास से अधिक काल की गर्भवती स्त्री बैठी हुई उठकर या खडी हुई बैठकर दान दे तो, उससे दान लेना।

घर के बडे, कृपण लोगो को खेद, षट्काय की विराधना तथा गर्भस्थ जीव को पीडा आदि की सभावना के कारण यह आहार सदोष है।

७. उम्मीसे (उन्मिश्र): सचित्त मिश्रित आहार आदि लेना।

८. अपरिणय (अपरिणत): पूरा अचित्त न बना हुआ आहार आदि लेना।

पूर्ण प्रासुक (निर्जीव, अचित्त) न होने के कारण ये दोनो आहार सदोष हैं।

९. लित्त (लिप्त): सचित्त मिट्टी जल आदि से तत्काल लीपी हुई भूमि पर चलकर दिया हुआ आहारादि लेना।

पृथ्वीकाय और अप्काय की विराधना के कारण यह आहार सदोष है।

१०. छड्डिय (छर्दित): घुटने से अधिक ऊपर से बूद आदि गिराते हुए दिया जाता हुआ आहार आदि लेना।

वायुकाय की विराधना तथा गिरने से षट्काय की विराधना संभव होने से यह आहार सदोष है।

मण्डल के ५ पाँच दोष

इंगाले[1] धूमे[2] संजोयणा[3] पमाणे[4] कारणे[5] ।

अंगार[1] धूम[2] सयोजना[3] प्रमाण[4] कारण[5] ।

मण्डल दोष : आहार करते समय लगने वाले दोष ।

१. इंगाले (अंगार) : प्रासुक एषणीय अशनादि में रागी बनकर उसकी सराहना करते-करते उसे भोगना ।

२. धूमे (धूम) : प्रासुक एषणीय अशनादि मे द्वेषी बन कर उसकी निन्दा करते हुए उसे भोगना ।

क्रमशः राग और द्वेष के कारण ये दोनो दोष माने गये हैं ।

३. संजोयणा (संयोजना) : किसी द्रव्य मे मनोज्ञ रूप, गंध, रस (स्वाद), या स्पर्श उत्पन्न करने के लिए, उसमें अन्य द्रव्यों को मिलाकर भोगना । विषय-लोलुपता के कारण यह दोष माना गया है ।

४. पमाणे (प्रमाण) : जितनी भूख हो, उस प्रमाण से उपरान्त अशनादि भोगना ।

सामान्यतः स्वस्थ, सबल और युवावस्था वाले पुरुष के लिए ३२ बत्तीस कवल, स्त्री के लिए २८ कवल और नपुंसक के लिए २४ कवल, यह आहार का प्रमाण माना गया है। प्रमाण उपरान्त आहार, प्रमाद और विकार का कारण होने से दोष माना है ।

५. कारणे (कारण) : बिना कारण आहार करना या बिना कारण आहार छोड़ना ।

आहार त्याग के छ. कारण की गाथा

वेयण[1] वेयावच्चे[2], इरियट्ठाए[3] य संजमट्ठाए[4] ।
तह पाण वत्तियाए[5], छट्ठं पुण धम्मचिंताए[6] ॥१॥

वेदना[1] वैयावृत्य[2] ईर्यार्थ[3] सयमार्थ[4] च।
तथा प्राण धारणार्थ[5] धर्मचिन्तार्थ[6] है छठा ॥१॥

१. वेयण (वेदना) : क्षुधा वेदनीय को शांत करने के लिए आहार करे।

२. वेयावच्चे (वैयावृत्य) : आचार्य, उपाध्याय, शैक्ष, ग्लान, तपस्वी स्थविर (वृद्ध) आदि की वैयावृत्य के लिए आहार करे।

३. इरिय (ईर्या) : ईर्या शोधकर चलने के लिए आहार करे।

४. संजम (संयम) : सयम निर्वाह के लिए आहार करे।

५. पाण (प्राण) : १० दश प्राणो की रक्षा के लिए आहार करे।

६. धम्मचिंता (धर्मचिन्ता) : स्वाध्याय ध्यान आदि करने के लिए आहार करे।

आहार त्याग के ६ छह कारण की गाथा

आयंके[1] उवसग्गे[2], तितिक्खया बंभचेर गुत्तीसु[3]।
पाणिदया[4] तवहेउ[5], सरीर वोच्छेयणट्ठाए[6] ॥१॥
आतंक[1] उपसर्ग[2] ब्रह्मचर्य-रक्षा[3] तथा।
प्राणिदया[4] तपहेतु[5], तथा अनशन[6] हेतु ॥१॥

१. आयंके (आतंक) : शरीर मे रोगादि उत्पन्न हो जाने से आहार त्यागे।

२. उवसग्गे (उपसर्ग) : उपसर्ग या परीषह उत्पन्न हो जाने से आहार त्यागे।

३. बंभेचरगुत्ती (ब्रह्मचर्य-गुप्ति) : ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए आहार त्यागे।

४. पाण (प्राण) : प्राण भूत जीव सत्व की दया के लिए आहार त्यागे।

५. तव (तप) : उपवासादिक तप करने के लिए आहार त्यागे।

६. सरीर वोच्छेय (शरीर व्यवच्छेद) : सलेखना सथारा सहित समाधि मरण के लिए आहार त्यागे।

चौथी आदान निक्षेपणा समिति का स्वरूप

आदान-भाण्ड-मात्र निक्षेपणा समिति : विवेकपूर्वक **वस्त्रपात्रादि** को **उठाना रखना** अर्थात् किसी जीव की विराधना **न** हो, इसलिए विधि सहित प्रतिलेखना प्रमार्जना का उपयोग रखकर वस्त्र पात्रादि उठाना रखना। **आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति के चार भेद—१. द्रव्य २. क्षेत्र ३. काल ४. भाव।**

१. द्रव्य से—भाण्डादि उपकरण यतना से उठावे और यतना रक्खे। अर्थात् दिन मे पहले उपकरण देखकर और आवश्यकता हो, तो पूज कर फिर शीघ्रता रहित उठावे तथा भूमि को पहले देखकर और आवश्यकता हो, तो पूजकर फिर उपकरण को शीघ्रता रहित, शब्द न हो—इस प्रकार भूमि पर रक्खे तथा रात्रि को उपकरण पूजकर उठावे और भूमि को पूजकर भूमि पर रक्खे। **देखने की आज्ञा** इसलिए है कि—'त्रस स्थावर जीव दिख जाने पर उपकरण उठाते-रखते हुए उन जीवो की पूजकर रक्षा की जा सकती है तथा **पूंजने की आज्ञा** इसलिए है कि उन्हे पूजकर दूर करने से उनकी रक्षा हो जाती है। **शीघ्रता न करने की आज्ञा** इसलिए है कि १. शीघ्रता न करने से सहसा किसी नये जीव की नीचे आकर

मरने की सभावना नही रहती। २ अपने शरीर पर भी अकस्मात् चोट पहुँचने की सभावना नही रहती तथा वायुकाय की अयतना नही होती।

२. क्षेत्र से—भाण्डादि उपकरण इधर उधर बिखरा हुआ न रक्खें तथा गृहस्थी के घर पर भी न रक्खें। उपकरणो को इधर उधर **बिखरा हुआ रखने से** १. उनमे शीघ्र जीव प्रवेश की सम्भावना रहती है, २. पैरो से बार-बार अयतना का प्रसग आता है तथा ३. अधिक स्थान की आवश्यकता पडती है, इत्यादि कई दोषो के वर्जन के लिए तीर्थंकरो ने उपकरणो को बिखरे हुए रखने का निषेध किया है। **गृहस्थ के घर** उपकरण **रखने से** साधुता मे ममता, प्रमाण उपरात परिग्रह और गृहस्थ वृत्ति उत्पन्न होने की आशका रहती है, इत्यादि कई कारणो से तीर्थंकरो ने गृहस्थो के घर पर रखने का निषेध किया है।

३. काल से—सभी उपकरणों की यथा समय उभयकाल प्रतिलेखन करें। रात्रि मे जीवो को हुई विराधना की आलोचना के लिए तथा उपकरण मे प्रविष्ट हुए जीवो की रक्षा के लिए प्रातः काल सूर्योदय होने के पश्चात् प्रतिलेखना करे तथा दिन मे हुई विराधना की आलोचना के लिए तथा प्रविष्ट जीवो की रक्षा के लिए सूर्यास्त होने के पहले प्रतिलेखन करे।

४. भाव से—राग द्वेष उत्पन्न करने वाली उपधि तथा प्रमाण उपरांत उपधि न रक्खे और प्रमाणोपेत उपधि को रागद्वेष रहित तथा उपयोग सहित भोगे। १. बहुमूल्य, २. श्वेत वर्ण को छोडकर अन्य वर्ण वाले, ३. धातु-निर्मित आदि उपकरण रागद्वेष उत्पन्न करने मे निमित्त हैं। अतः इन उपकरणो को रखने का निषेध किया है।

साधु के लिए ७२ हाथ तथा साध्वी के लिए ९६ हाथ वस्त्र का प्रमाण माना है। पात्र का प्रमाण ४ चार माना है। इसके उपरान्त वस्त्र पात्र रखना तीर्थंकरो ने ममता का कारण व परिग्रह कहा है।

उपधि अर्थात् उपकरण के दो भेद।

१. **औघिक :** जिन्हे सामान्यत सभी साधु साध्वियाँ अपने पास सदा ही रखते है, जैसे मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि।

२ **औपग्रहिक :** जिन्हे यतना और वृद्धावस्था आदि कारणों से कुछ ही साधु साध्वियाँ रखते हैं, जैसे दण्ड, पाट आदि।

पाँचवी परिस्थापनिका समिति का स्वरूप

उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति : विवेकपूर्वक उच्चारादि परठ्ठवना ('फिर से ग्रहण न करे' इस प्रकार त्यागना) अर्थात् किसी जीव की विराधना हो, इसलिए स्थंडिल के दश दोष टालने का उपयोग रखकर न उच्चारादि परठ्ठवना।

उच्चारण-प्रश्रवण-खेल-सिघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति के चार भेद—१' द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४. भाव।

१. **द्रव्य से—उच्चारादि परिस्थापन योग्य द्रव्य, त्रस स्थावर जीव देखकर और पूंजकर परिस्थापन करे**- परिस्थापना योग्य आठ द्रव्यो के **नाम—१ उच्चार**=मल, २. **प्रश्रवण**=मूत्र, ३. **खेल**=मूंह से निकलने वाला श्लेष्म, ४. **सिघाण**=नाक से निकलने वाला श्लेष्म, ५. **जल्ल**=शरीर का मल, ६. **आहार**= अप्रासुक अनेषणीय शरीर प्रतिकूला अशनादि ७. **उपधि**=

जीर्ण पात्रादि, ८. देह=निर्जीव शरीर, तथा ऐसे ही अन्य लोच किए हुए केशादि।

२. क्षेत्र से—अनापात आदि दश बोल शुद्ध स्थण्डिल में (परिस्थापना भूमि में) उच्चारादि का परिस्थापन करे।

स्थण्डिल के दश बोल की गाथाएँ

अणावाय[1] मसंलोए परस्सणुवघाइए[2]।
समे[3] अभुसिरे वा वि, अचिर काल[4] कयम्मिय।
विच्छिन्ने[6] दूरमोगाढे[7], णासन्ने[8] बिलवज्जिए[9]।
तसपाण[10] बीय रहिए, उच्चाराइणि वोसिरे।

अनापात[1] असलोक, पर अनुपघातिक[2]।
सम[3] अशुषिर[4] तथा अचिर कालकृत मे[5]।
विस्तीर्ण[6] दूरावगाढ[7], आसन्न-बिल वर्जित[8-9]।
त्रस प्राण[10] बीज रहित, मे मलादि त्याग करे।

१. अणावायमसंलोए (अनापात असंलोक) : जहाँ लोगो का आना जाना न होता हो, तथा लोगो की दृष्टि न पड़ती हो, वहाँ परिस्थापन करे।

२. परस्सणुवघाइए (परानुपघातिक) : जहाँ परिस्थापन करने से १. संयम का उपघात (छह काय विराधना) २. आत्मा का उपघात (शरीर विराधना) तथा ३ प्रवचन उपघात (शासन की निन्दा) न हो, वैसी भूमि मे वहाँ परिस्थापन करे।

३. समे (सम) : जहाँ ऊँची-नीची विषम भूमि न हो, वहाँ परिस्थापन करे।

४. **अभुसिरे (अशुषिर)** : जहाँ कीटजन्य **पोली** भूमि न हो तथा घास पत्ते आदि से ढँका भूमि न हो, वहाँ परिस्थापन करे।

५. **अचिरकाल कयम्मिय (अचिर काल कृत)** : जिसे **अचित्त** हुए इतना **अधिक समय नहीं हुआ** हो कि वह पुन. सचित्त बन जाय, ऐसी भूमि हो; वहाँ परिस्थापन करे।

६. **विच्छिन्ने (विस्तीर्ण)** : जो परिस्थापन योग्य भूमि कम-से-कम एक हाथ **लम्बी-चौड़ी** हो वहाँ, परिस्थापन करे।

७. **दूरमोगाढे (दूरावगाढ़)** : जो भूमि कम-से-कम चार **अँगुल नीचे** तक अचित्त हो, वहाँ परिस्थापन करे।

८. **णासन्ने (अनासन्न)** : जहाँ ग्राम नगर आराम उद्यानादि निकट न हो, वहाँ परिस्थापन करे।

९. **बिलवज्जिए (बिल वर्जित)** : जहाँ चूहे आदि के बिल न हो, वहाँ परिस्थापन करे।

१०. **तसपाण बीय रहिए (त्रसप्राणबीज रहित)** = जहाँ द्वीन्द्रियादि त्रस प्राणी तथा बीज और उपलक्षण से सभी एकेन्द्रिय स्थावर प्राणी न हो, वहाँ परिस्थापन करे।

३. काल से—दिन मे देखकर और रात्रि को पूंजकर परिस्थापन करे। तथा मात्रक (=मल-मूत्र के पात्र) **और परिस्थापन भूमि की सायंकाल दिन रहते प्रतिलेखना करे।**

सायकाल दिन रहते मात्रक और परिस्थापना भूमि की प्रतिलेखना करने से मात्रक मे यदि जीव आ गये हो, तो उन्हे

दूर किया जा सकता है तथा परिस्थापना भूमि मे यदि जीव हो गये हो, तो परिस्थापना भूमि बदली जा सकती है।

प्रतिलेखन न करने पर १. उनमे रहे जीवो की विराधना हो सकती है, २ उन जीवो से आत्म विराधना हो सकती है एव परिस्थापना भूमि की विषमता से तथा काटे आदि से भी आत्म विराधना हो सकती हैं इसलिए तीर्थंकरो ने सायकाल दिन रहते हुए ही दोनो की प्रतिलेखना करने का आदेश दिया है।

४. भाव से—परिस्थापन के लिए जाते समय आवस्सिया २ (=आवश्यकी, मैं आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ) **यो कहकर जावे। परिस्थापन भूमि की शकेन्द्र महाराज की आज्ञा ले। फिर दिन हो, तो परिस्थापन भूमि को देखे और रात्रि हो, तो परिस्थापन भूमि को पूंजे (=प्रमार्जन करे)। फिर चार अँगुल ऊँचे से यतना सहित परिस्थापन करे। परिस्थापन करके 'वोसिरामि वोसिरामि'** (=त्यागता हूँ) **यो कहे। फिर उपाश्रय मे प्रवेश करते समय निसीहिया २** (=नषेधिकी, मैं आवश्यक कार्य करके आ गया हूँ) **यो कहे। अन्त मे परिस्थापना के निमित्त इर्यापथिक का कायोत्सर्ग करे।**

॥ इति समिति स्वरूप समाप्त ॥

अथ गुप्ति का स्वरूप

गुप्ति : प्राणातिपात आदि पापो से बचने के लिए आत्मा के उत्तम परिणामो से मन-वचन-काया की अशुभ प्रवृत्ति रोकना।

'गुप्ति मे अशुभ प्रवृत्ति रोकना मुख्य माना है।' अतएव गुप्ति की यह परिभाषा की है। अन्यथा मन-वचन-काया को

१०. विणय (विनय) : (अभ्युत्थान=बडो के आने उठकर खड़ा होना आदि दश प्रकार की) विनय करता हु जीव ...... करता है।

११. आवस्सए (आवश्यक) : उभय काल उपयोग सहि दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण करता हुआ जीव .... करता

१२ सीलव्वए (शील-व्रत) : लिए हुए (महाव्रत अणुव्रत रूप) मूलगुण प्रत्याख्यान तथा (समिति-गुप्ति गुणव्रत-शिक्षाव्रत अथवा नमस्कार सहित आदि रूप) उत्तरगु प्रत्याख्यान अतिचार रहित शुद्ध (निर्मल) पालता हुआ जीव करता है।

१३. खण लव (क्षण लव) : थोड़ा भी प्रमाद न कर हुआ (अर्थात् प्रतिक्षण वैराग्यभाव रखता हुआ, धर्म-शु ध्यान ध्याता हुआ तथा आर्त-रौद्र ध्यान वर्जता हुआ) जीव करता है।

१४. तव (तप) : एकान्तर, मास-मास क्षमण (तप) अ विकृष्ट (बडी) तपश्चर्या करता हुआ जीव ....करता है।

१५. चियाए (त्याग) : (द्रव्य से गोचरी मे आधाक आदि आये हुए अशुद्ध आहार आदि को परिठ्ठवता हुआ त भाव से क्रोध आदि को त्यागता हुआ और) द्रव्य से प्रा एषणीय आहार आदि तथा भाव से ज्ञान आदि सुपात्र को दे हुआ जीव .... करता है।

१६. वेयावच्चे (वैयावृत्य) : (अरिहन्त वैयावृत्य आ दश प्रकार की) वैयावृत्य करता हुआ जीव .... करता है

१७. समाहि : छह काय जीवो को अभयदान देकर समाधि उत्पन्न करता हुआ जीव ··· ·· ·· करता है।

१८. अपुव्व नाण गहणे (अपूर्व ज्ञानग्रहण) नित्य नया-नया सूत्रज्ञान कण्ठस्थ करता हुआ तथा अर्थज्ञान धारण करता हुआ जीव ·· ······· करता है।

१९. सुयभत्ती (श्रुतभक्ति) : जिनवाणी की (१. हृदय से श्रद्धा आदि बहुमान, २. वचन से गुणकीर्तन तथा, ३ काया से नमस्कार आदि) भक्ति करता हुआ जीव ········· करता है।

२०. पवयण पभावणया (प्रवचन प्रभावना) : धर्मकथा वाद आदि से प्रवचन प्रभावना (ग्राम नगर आदि मे मिथ्यात्व की उत्थापना और सम्यक्त्व की स्थापना) करता हुआ जीव ········· करता है।

॥ इति २ तत्व विभाग समाप्त ॥

शुभ प्रवृत्ति करना और एकाग्रता, मौन, कायोत्सर्ग आदि के द्वारा 'शुभ-अशुभ' दोनो प्रवृत्तियाँ रोकना भी 'गुप्ति' है।

अथ मनोगुप्ति का स्वरूप

मनोगुप्ति : प्राणातिपात आदि पापो से बचने के लिए आत्मा के उत्तम परिणामो से मन की अशुभ प्रवृत्तियो को रोकना।

मनोगुप्ति के चार भेद—१. द्रव्य २. क्षेत्र ३. काल ४. भाव।

१. द्रव्य से—असत्य और मिश्र इन दोनो अशुभ संक्लिष्ट मनोयोगो को रोके और सत्य और व्यवहार इन दो शुभ विशुद्ध मनोयोगो की† प्रवृत्ति करे।

२. क्षेत्र से—सब क्षत्र मे। अशुभ मनोयोग रोके और शुभ मनोयोग मे प्रवृत्ति करे।

३ काल से—यावज्जीवन तक या जिस समय मनोयोग में प्रवृत्ति करे, उस समय अशुभ मनोयोग रोके और शुभ मनोयोग मे प्रवृत्ति करे।

४. भाव से—१. सरम्भ (सारम्भ), २. समारम्भ और ३. आरम्भ वाले मनोयोग को वर्ज (छोड़) कर राग द्वेष रहित तथा उपयोग सहित अनारंभी मनोयोग की प्रवृत्ति करे।

१. सरभ (सारंभ) : किसी प्राणी को परितापना (पीडा) देने या मारने का अध्यवसाय (सकल्प) करना।

---

†चारों मनोयोग की परिभाषा इस पुस्तक के पृष्ट २८८ पर देखिये।

२. समारंभ : किसी प्राणी को **परितापना देना।**

३. आरंभ : किसी प्राणी को **मार देना।**

४: अनारंभ : किसी भी प्राणी को परितापना न पहुँचे तथा मृत्यु न हो, ऐसी विशुद्ध शुभ प्रवृत्ति करना।

१ मन का सरंभ : 'मैं इसे परितापना दूं या मारूँ।' ऐसा मानसिक सक्लिष्ट (अशुभ) ध्यान करना।

२. मन का समारंभ : किसी प्राणी को मानसिक सक्लिष्ट (अशुभ) ध्यान द्वारा परितापना देना।

३. मन का आरंभ : किसी प्राणी को मानसिक सक्लिष्ट (अशुभ) ध्यान द्वारा मार देना।

४. मन का अनारंभ : किसी प्राणी को परितापना न पहुँचे तथा मृत्यु न हो, ऐसी मन की विशुद्ध (शुभ) प्रवृत्ति करना।

दूसरी वचन गुप्ति का स्वरूप

वचन गुप्ति · प्राणातिपात आदि पापो से बचने के लिए, आत्मा के उत्तम परिणामो से, **वचन** की अशुभ प्रवृत्तियाँ **रोकना।**

वचन गुप्ति के चार भेद—१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव।

१ द्रव्य से—असत्य और मिश्र इन दोनो अशुभ वचन योगों को रोके एवं सत्य और व्यवहार इन दो शुभ वचन योगो की प्रवृत्ति करे।†

---

†चारो वचन योगो की परिभाषा, इसी पुस्तक के २३० पृष्ठ पर देखिये।

२. क्षेत्र से—सब क्षेत्र मे (अशुभ वचन योग रोके
शुभ वचन योग मे प्रवृत्ति करे।)

३. काल से—यावज्जीवन तक या जिस समय
योग में प्रवृत्ति करे, उस समय (अशुभ वचन योग रोके
शुभ वचन योग मे प्रवृत्ति करे।)

४. भाव से—१ संरंभ २. समारंभ और ३ आ
वाले वचन योग को वर्ज (छोड़) कर राग-द्वेष रहित
उपयोग सहित अनारंभी वचन योग की प्रवृत्ति करे।

१. वचन का संरंभ 'मैं इसे परितापना दूंगा
मारूँगा।' ऐसा वाणी से सक्लिष्ट (अशुभ) शब्द बोलना।

२. वचन का समारभ: किसी प्राणी को वाणी
सक्लिष्ट (अशुभ) मत्र, जाप आदि के द्वारा परितापना देना

३. वचन का आरंभ: किसी प्राणी को वाणी
संक्लिष्ट (अशुभ) मंत्र, जाप आदि के द्वारा मार देना।

४. वचन का अनारंभ: किसी प्राणी को परितापन
पहुँचे तथा मृत्यु न हो, ऐसी वचन की विशुद्ध (शुभ) प्र
करना।

तीसरी कायगुप्ति का स्वरूप

कायगुप्ति: प्राणातिपात आदि पापो से बचने के लि
आत्मा के उत्तम परिणामो से, काया की अशुभ प्रवृत्ति
रोकना।

कायगुप्ति के चार भेद—१. द्रव्य २. क्षेत्र ३. काल ४. भाव।

१. द्रव्य से—१. गमन (=चलने मे) **२. स्थान** (=खडे रहने मे) **३. निषीदन** (=बैठने मे) **४. त्वग्वर्तन** (=पासा पलटने मे, सोने मे) **५. उल्लघन** (=देहली आदि छोटी ऊँचाई नीचाई लांघने मे) **६. प्रलंघन** (=खाड, शिला, लकडा आदि बडी ऊँचाई नीचाई लाघने मे) **७. सर्व इन्द्रिय काय योग योजन में** (अधिक क्या कहे ? इत्यादि सभी प्रकार के इन्द्रिय और काया के व्यापार मे) **अशुभ काययोग को रोके, शुभ काय योग की प्रवृत्ति करे।**

२. क्षेत्र से - सब क्षेत्र मे (अशुभकाय योग रोके और शुभ काय योग मे प्रवृत्ति करे।

३. काल से—यावज्जीवन तक या जिस समय काय योग मे प्रवृत्ति करे, उस समय (अशुभ काय योग को रोके और शुभ काय योग की प्रवृत्ति करे।)

४. भाव से - **उपयोग सहित आरभ, सरंभ और समारभ वाले काय योग को वर्ज (छोड़) कर** (राग-द्वेष रहित तथा उपयोग सहित) **अनारभी काय योग की प्रवृत्ति करे।**

१. **काया का सरभ :** किसी प्राणी को परिताप देने या मारने के लिए हाथ, शस्त्र आदि उठाना।

२. **काया का समारभ :** किसी प्राणी को हाथ, शस्त्र आदि चलाकर परितापना देना।

३. **काया का आरभ :** किसी प्राणी को हाथ, शस्त्र आदि से मार देना।

१०. विणय (विनय) : (अभ्युत्थान=बडो के आने पर उठकर खडा होना आदि दश प्रकार की) विनय करता हुआ जीव ······ · करता है।

११. आवस्सए (आवश्यक) : उभय काल उपयोग सहित दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण करता हुआ जीव ······ ··· करता है।

१२ सीलव्वए (शील-व्रत) : लिए हुए (महाव्रत या अणुव्रत रूप) मूलगुण प्रत्याख्यान तथा (समिति-गुप्ति या गुणव्रत-शिक्षाव्रत अथवा नमस्कार सहित आदि रूप) उत्तरगुण प्रत्याख्यान अतिचार रहित शुद्ध (निर्मल) पालता हुआ जीव करता है।

१३. खण लव (क्षण लव) : थोडा भी प्रमाद न करता हुआ (अर्थात् प्रतिक्षण वैराग्यभाव रखता हुआ, धर्म-शुक्ल ध्यान ध्याता हुआ तथा आर्त-रौद्र ध्यान वर्जता हुआ) जीव करता है।

१४. तव (तप) : एकान्तर, मास-मासक्षमण (तप) आदि विकृष्ट (बड़ी) तपश्चर्या करता हुआ जीव ······ ····करता है।

१५. चियाए (त्याग) : (द्रव्य से गौचरी मे आधाकर्मी आदि आये हुए अशुद्ध आहार आदि को परिट्ठवता हुआ तथा भाव से क्रोध आदि को त्यागता हुआ और) द्रव्य से प्रासुक एषणीय आहार आदि तथा भाव से ज्ञान आदि सुपात्र को देता हुआ जीव ······ ··· करता है।

१६ वेयावच्चे (वैयावृत्य) : (अरिहन्त वैयावृत्य आदि दश प्रकार की) वैयावृत्य करता हुआ जीव ········· करता है।

१७. **समाहि :** छह काय जीवो को अभयदान देकर समाधि उत्पन्न करता हुआ जीव ...... करता है।

१८. **अपुव्व नाण गहणे (अपूर्व ज्ञानग्रहण) :** नित्य नया-नया सूत्रज्ञान कण्ठस्थ करता हुआ तथा अर्थज्ञान धारण करता हुआ जीव .... करता है।

१९. **सुयभत्ती (श्रुतभक्ति) :** जिनवाणी की (१. हृदय से श्रद्धा आदि बहुमान, २. वचन से गुणकीर्तन तथा, ३ काया से नमस्कार आदि) भक्ति करता हुआ जीव .... करता है।

२०. **पवयण पभावणया (प्रवचन प्रभावना) :** धर्मकथा वाद आदि से प्रवचन प्रभावना (ग्राम नगर आदि मे मिथ्यात्व की उत्थापना और सम्यक्त्व की स्थापना) करता हुआ जीव .... करता है।

॥ इति २ तत्व विभाग समाप्त ॥

४. काया का अनारंभ : किसी प्राणी को परितापना न पहुँचे तथा मृत्यु न हो, ऐसी काया की विशुद्ध (शुभ) प्रवृत्ति करना।

पुर्वोक्त आठ प्रवचन माताओ की जो मुनि पूर्णतया सम्यक् पालना करता है, वह ससार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

अर्थ, भावार्थ और प्रासंगिक जानकारी सहित

॥ इति पाँच समिति तीन गुप्ति का स्तोक समाप्त ॥

'तीर्थङ्कर नाम गोत्र उपार्जन के २० बोल'

अरहंत[१]-सिद्ध[२]-पवयण[३],-गुरु[४]-थेर[५]-बहुस्सुए[६] तवस्सीसु[७]।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख-णाणोवओगे[८] य ॥१॥
दंसण[९]-विणए[१०]-आवस्सए[११] य सीलव्वए[१२] निरइयारो।
खण-लव[१३]-तव[१४]-च्चियाए[१५], वेयावच्चे[१६] समाहि[१७] य ॥२॥
अपुव्व-नाण-गहणे[१८], सुयभीत्ती[१९] पवयणे पभावणया[२०]।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्त लहइ जीवो ॥३॥

ज्ञाता धर्मकथा ८ वाँ अध्ययन।

१. अरिहत वच्छल्लया (अरिहन्त वत्सलता) : अरिहन्त भगवान् का (१. हृदय से, श्रद्धा आदि वहुमान २. वचन से) गुणकीर्तन (तथा ३ काया से नमस्कार आदि भक्ति) करता हुआ जीव करोडो भवो के सचित कर्म वृन्द (राशि) को क्षय करता है तथा यदि उत्कृष्ट रसायन (भाव) आवे, तो तीर्थंकर नाम गोत्र का उपार्जन करता है।

२. सिद्ध वच्छल्लया (सिद्ध वत्सलता) : सिद्ध भगवान का ……… करता है।

३. पवयरण वच्छल्लया (प्रवचन वत्सलता) : प्रवचन का (अर्थात् जैन धर्म या चतुर्विध सघ का)………… करता है।

४. गुरु वच्छल्लया (गुरु वत्सलता) : गुरुजी का (अर्थात् आचार्य श्री जी का तथा उपाध्याय श्री जी का) करता है।

५ थेरवच्छल्लया (स्थविर वत्सलता) : (२० वर्ष से अधिक चारित्र पर्याय वाले) स्थविर मुनिराजो का……… करता है।

६. बहुस्सुय वच्छल्लया (बहुश्रुत वत्सलता) : (आचाराग निशीथ आदि के सूत्र अर्थ तथा दोनो के ज्ञाता) बहुश्रुत मुनिराजो का ……… करता है।

७. तवस्सी वच्छल्लया (तपस्वी वत्सलता) : (एकान्तर, मास-मास क्षमरण (तप) आदि विकृष्ट (बडी) तपश्चर्या करने वाले) तपस्वी मुनिराजो का……… करता है।

८. अभिक्खरणारणोवओगे (अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग) : सीखे हुए पुराने ज्ञान की वार-वार पृच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षा करता हुआ (पूछता, फेरता और सोचता हुआ) जीव ……… करता है।

९ दसरण (दर्शन) : सम्यक्त्व को अतिचार रहित शुद्ध (निर्मल) पालता हुआ जीव ……… करता है।

१०. विणय (विनय) : (अभ्युत्थान=वडो के आने पर उठकर खड़ा होना आदि दश प्रकार की) विनय करता हुआ जीव ……… करता है ।

११. आवस्सए (आवश्यक) : उभय काल उपयोग सहित दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण करता हुआ जीव ……… करता है ।

१२ सीलव्वए (शील-व्रत) : लिए हुए (महाव्रत या अणुव्रत रूप) मूलगुण प्रत्याख्यान तथा (समिति-गुप्ति या गुणव्रत-शिक्षाव्रत अथवा नमस्कार सहित आदि रूप) उत्तरगुण प्रत्याख्यान अतिचार रहित शुद्ध (निर्मल) पालता हुआ जीव करता है ।

१३. खण लव (क्षण लव) : थोडा भी प्रमाद न करता हुआ (अर्थात् प्रतिक्षण वैराग्यभाव रखता हुआ, धर्म-शुक्ल ध्यान ध्याता हुआ तथा आर्त-रौद्र ध्यान वर्जता हुआ) जीव करता है ।

१४. तव (तप) : एकान्तर, मास-मासक्षमण (तप) आदि विकृष्ट (वडी) तपश्चर्या करता हुआ जीव ……… करता है ।

१५. चियाए (त्याग) : (द्रव्य से गौचरी मे आधाकर्मी आदि आये हुए अशुद्ध आहार आदि को परिठ्ठवता हुआ तथा भाव से क्रोध आदि को त्यागता हुआ और) द्रव्य से प्रासुक एषणीय आहार आदि तथा भाव से ज्ञान आदि सुपात्र को देता हुआ जीव ……… करता है ।

१६. वेयावच्चे (वैयावृत्य) : (अरिहन्त वैयावृत्य आदि दश प्रकार की) वैयावृत्य करता हुआ जीव ……… करता है ।

१७. समाहि : छह काय जीवो को अभयदान देकर समाधि उत्पन्न करता हुआ जीव ··· ·· ··· करता है।

१८. अपुव्व नाण गहणे (अपूर्व ज्ञानग्रहण) · नित्य नया-नया सूत्रज्ञान कण्ठस्थ करता हुआ तथा अर्थज्ञान धारण करता हुआ जीव ·· ······ करता है।

१९. सुयभत्ती (श्रुतभक्ति) : जिनवाणी की (१ हृदय से श्रद्धा आदि बहुमान, २. वचन से गुणकीर्तन तथा, ३ काया से नमस्कार आदि) भक्ति करता हुआ जीव ········· करता है।

२०. पवयण पभावणया (प्रवचन प्रभावना) : धर्मकथा वाद आदि से प्रवचन प्रभावना (ग्राम नगर आदि मे मिथ्यात्व की उत्थापना और सम्यक्त्व की स्थापना) करता हुआ जीव ········· करता है।

॥ इति २ तत्व विभाग समाप्त ॥